

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रकाशक

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट (मांडवी-कच्छ)



श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छके कार्य

⇒सेमिनार:

आयोजित:

- १.शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा
- २.कार्यकारणभावविचार ५.वार्तापरिचर्चा
- ३.अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी ६.अधिकारपरिचर्चा
- ४.प्रत्यक्षप्रमाण सङ्गोष्ठी ७.पुष्टिभयित्तमार्गीय साधनाप्रणाली

आयोज्य:

अनुमानप्रमाण (२००४) कथायां वा/गुणगान(डिसेम्बर २००३)

⇒आचार्यवंशजोंकेलिये अध्ययनसत्र

१. तर्कामृतम्-न्यायसिद्धान्तमुयतावली २. वेदान्तसार

⇒ग्रन्थप्रकाशन:

ग्रन्थ

१.प्रवेशिका (अंग्रेजी-गुजराती)

२.प्रमेयरत्नसंग्रह

३.शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा

४.तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणम्

(ब्रजभाषाटीका) साधारणसंस्करण/राजसंस्करण

५.तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत सर्वनिर्णयप्रकरणम्

(ब्रजभाषाटीका)साधारणसंस्करण/राजसंस्करण

६.वार्तापरिचर्चा

७.पुष्टिविधानम्

८.श्रीगोपीनाथप्रभुचरण

९.अधिकारपरिचर्चा

१०.अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी

११.श्रीभागवत महापुराण (गुर्जरभाषानुवाद)शीघ्रप्रकाश्य

१२.पुष्टिविधानम् (व्याकरणम्)

१३.पुष्टिविधानम् (ब्रजभाषाविवृति)

१४.मेन्युअल् ऑफ् ध डिवोशनल् पाथ ऑफ् पुष्टि

१५.सेवा और ब्रजलीला

प्रकाशनसहाय

२००

५०/७०

८०/१००

अनुपलब्ध

निःशुल्क

२५

१००

१५०

अनुपलब्ध

१००

५०

६५

निःशुल्क

प्रकाशक:

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, कंसारा बजार, मांडवी,
जि.कच्छ, गुजरात, ३७० ४६५.

☎ Off.Ho.02834-231463, 224306.

Email: gosharadad1@sancharnet.in

http://www.pushtimarg.net/

सम्पादक : गोस्वामी शरद्

प्रथम संस्करण:वि.सं. २०६० प्रति:५०००

ग्रन्थप्रकाशन सहाय:रु.२५:००

पोस्टेज: अनरजिस्टर्ड प्रिन्टेड बुक्सद्वारा रु. २५+५=३०

रजिस्टर्ड प्रिन्टेड बुक्सद्वारा रु. २५+५+१७=४७

Copyright : 72003

Shri Vallabhacharya Trust, Kansara Bazar,
Mandavi-Kutch, Gujarat,370 465, India.

मुद्रक:श्रीवल्लभ बुक मेन्युफेक्चरिंग् कं.,

सिटिमील कम्पाउंड्, कांकरीया रोड्, अमदावाद, गुजरात.

गुजरात,

प्रकाश्य:

१.कार्यकारणभावमीमांसा



- २.पुष्टिभक्तिमार्गीय साधनाप्रणाली
- ३.प्रत्यक्षप्रमाण सङ्गोष्ठी
- ४.प्रवचन:गोस्वामी श्रीश्याममनोहरजी, किशनगढ-पाला
- ५.प्रभुचरणविरचित पद्यसाहित्यकी अप्रकाशित संस्कृत टीकाएं.
- ६.द्रव्यशुद्धि, ब्रज-गुर्जरभाषानुवाद सहित
- ७.विद्वन्मण्डन, गुर्जरभाषानुवाद
- ८.सर्वनिर्णयनिबन्ध, गुर्जरभाषानुवाद
- ९.भगवद्गीता, व्याकरण-गुजरातीटीका-यावदुपलब्धप्रकीर्णलेखसहित
- १०.८४ वैष्णववार्ता, गुर्जरभाषानुवाद

⇒गोशाला

⇒संस्कृत माध्यमसे अध्ययन करते विद्यार्थीओंकेलिये छात्रालय

संचालन:श्रीवल्लभाचार्य ब्रजसंस्कृति विकास ट्रस्ट समिति, गोकुल

⇒छात्रवृत्ति

⇒हस्तप्रतसंग्रह-संरक्षण; पुस्तकालय

⇒यावत्प्राप्य साम्प्रदायिक श्लोकोंकी पादानुक्रमणिका

⇒पुष्टिमार्गीय वेबसाट: <http://www.pushtimarg.net/>

⇒Catalogus Catalogorum of the manuscripts of Suddhadvaita-Pustibhakti-Sampradaya.

⇒Encyclopedic CD ROM comprising of entire original Sanskrit writings of Acharyas along with Vraj, Hindi, Gujarati & English literature written on the base of such writings.

⇒एन्सायूयलोपीडीया ओफ् इन्डियन् फिलोसोफि (एडिटर इन् जनरल:डॉ. कार्ल पोटर, युनिवर्सिटी ओफ् वोशिङ्गटन, यु.एस्.ए.)अन्तर्गत 'शुद्धाद्वैतब्रह्मवाद' विषयक खण्डके लेखन-सङ्कलन-सम्पादन-प्रकाशनमें सहयोग.

प्राप्तिस्थान

पोस्टद्वारा तथा प्रत्यक्ष(पोस्टेज:रु.५ अतिरिक्ति)

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, कंसारा बजार, मांडवी-कच्छ, गुजरात, ३७० ४६५. फोन:०२८३४-२३१४६३, २२४३०६

(इन स्थानोंसे स्वयं जाकर प्राप्त करें)

राजकोट:

श्रीप्रवीणभा डढाणीया, 'पुष्टि', ब्रजवल्लीके सामने, जलाराम २, युनिवर्सिटी रोड, राजकोट ३६० ००५. फोन:०२८१-२५८४४११

जुनागढ:

-पुष्टिसाहित्य विक्रय केन्द्र, मोटी हवेली, पञ्च हाटडी, जुनागढ.

-श्रीहर्षदभा चांगेला, डी. कान्तिलाल एन्ड कं., हार्डवेर मर्चन्ट, चित्ताखाना चोक, जुनागढ, फोन:घर-(०२८५)२६६०२९७

जामनगर:

श्रीऊषाबेन सोनी, 'कृष्णकुंज' नागर चकला, धोबीवाळी शेरी, फोन:(०२८८) २६७९१४१.

अमदावाद:

श्रीजनकभा शाह, ३५, निकुञ्जविहार, लाड सोसाटी, वस्त्रापुर, अमदावाद ३८० ०५४. फोन:०७९-६८५५७२९

वडोदरा:

डॉ. आशिष कड़कीया, बी-१३, अशोकवाटिका सो., पल्लवपार्क सो.के पास, ब्राइट स्कूल लेन, वी.आ.पी. रोड, वडोदरा-१८, फोन:०२६५-(घर)२४९५०४९, ०२६५-३३३९५९५.

हालोल:

श्रीभानुबेन गोर, २५, आदर्श सोसाटी, हालोल, जि-पंचमहाल, ३८९ ३५०. फोन:०२६७६-२२१३७२, २२१७४३.

सुरत:

श्रीनिलेश महेता, ६, भाग्यनिधि रो हाउसिस्, सहज सुपरस्टोर पाछळ, रान्देर, सुरत. फोन:०२६१-३१२३९०७.

मुम्बई:

कालबादेवी:



श्रीअंशु गोपालभा शाह, १५ 'पुरुषोत्तमनिवास', दादीशेठ अगियारी लेन, कालबादेवी, मुम्ब,
फोन:०२२-२२०८९९२२

विलेपार्ले:

श्रीरसिकभा शाह, ४, 'मथुराभुवन', श.भगतसिंह रोड, बजाज रोड, विलेपार्ले (पश्चिम)
मुम्ब, ४०० ०५६, फोन:०२२-२६७१००३७.

बोरीवली:

श्रीधर्मेन्द्रसिंह झाला, ८ बी, 'कृपाधाम', कार्टर् रोड नं.-२, बोरीवली स्ट, मुम्ब, ४००
०६६. फोन:०२२-२८०६८६२५

कान्दीवली:

श्रीमधुभा शाह, 'शिवकृपा' पहेलामाळे, रामगलीना नाकाउपर, म्युनिसिपल् गार्डन्नी सामे,
कान्दीवली, वेस्ट, मुम्ब, ४०० ०६७, फोन:०२२-२८०७००४३

पुष्टिसाहित्य विक्रय केन्द्र, श्रीवल्लभसुखधाम, ठठाई भाटीया होल, एस्. वी. रोड, कान्दीवली,
वेस्ट.

गोकुल:

पुष्टिसाहित्य विक्रय केन्द्र, नन्दचौक, गोकुल, जि. मथुरा, उत्तरप्रदेश.

॥ प्रकाशकीय ॥

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत्

तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम्

‘पुष्टिविधानम्’ व्याकरणम्के सम्पादनके समय क्रमप्राप्त श्रीगोपीनाथप्रभुचरण (श्रीगोपी.प्रभु.) विरचित ‘साधनदीपिका’के सम्पादनके अवसरपर और तत्पश्चात् पुनः ‘पुष्टिविधानम्’के ब्रजभाषा संस्करणमें ‘साधनदीपिका’का ब्रजभाषा-गुजराती भावानुवाद करते समय श्रीजगदीशभाई कटारीया (मे.ट्रस्टी, श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छ) ने आकर मुझसे कहा कि श्रीगोपी.प्रभु.के विषयमें सम्प्रदायके लोगोंमें जितनी होनी चाहिये उतनी जानकारी देखी नहीं जाती है. इतना ही नहीं, विशेषकर भाषासाहित्यमात्रसे परिचय रखनेवाले पुष्टिमार्गी और सामान्यतया अन्य भी पुष्टिमार्गी श्रीगोपी.प्रभु.का निर्गुण-पुष्टिभक्तिसम्प्रदायमें असाधारण महत्व होने पर भी उनके प्रति अत्यन्त उपेक्षाभाव रखते देखे जाते हैं. सम्प्रदायकेलिये यह दुर्भाग्यका विषय है. अतएव इस सम्बन्धमें कुछ करना चाहिये.

उपर्युक्त सन्दर्भमें साम्प्रदायिक इतिहासको देखा जाय तो श्रीगोवर्धननाथजीकी सेवा-व्यवस्थामें अपने एकाधिकारको चिरस्थायी बनानेके उद्देश्यसे, श्रीगोपी.प्रभु.की अनुपस्थितिमें उनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीको श्रीगुसाईजीके विरुद्ध भड़काकर कृष्णदास अधिकारीने जो पारिवारिक वैमनस्य खड़ा किया था उसका दुष्परिणाम अद्यावधि श्रीगोपी.प्रभु.को भुगतना पड़ रहा है इस तथ्यसे सम्प्रदायके इतिहासविद् अज्ञात नहीं हैं. उक्त दुर्घटनाके पश्चात् कुछ अपवादोंको छोड़कर सम्प्रदायके प्रायः सभी आचार्य, ग्रन्थकार, इतिहासकार और धौल-पद-कीर्तनकार तथ्यकी सर्वथा अवहेलना करते हुवे एक लयमें श्रीगोपी.प्रभु.के प्रति उपेक्षात्मक व्यवहार करते आ रहे हैं. यहां तककी सम्प्रदायके किसी प्राचीन ग्रन्थपर विवृतिकी अनुपलब्धि उस ग्रन्थके श्रीगोपी.प्रभु. विरचित होनेमें एक हेतु बन सकती है. “करे कोई और भरे कोई” यह उक्ति श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंपर चरितार्थ होती है.

वस्तुतः यदि श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणद्वारा अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीगोपी.प्रभु.की स्तुतिमें विरचित “यदनुग्रहतो जन्तुः ... श्रीमद्वल्लभनन्दनम्” इस

मङ्गलश्लोकका एवं उनको लिखे पत्रका अवलोकन किया जाता है तो दोनों भाईयोंके बीच रहे निर्मात्सर स्नेह और सौहार्द का अनुभव हुवे बिना नहीं रहता है.

इसी तरह श्रीब्रजराजचरण विरचित 'श्रीसंवत्सरोत्सवकल्पलता'में निरूपित 'श्रीगोपीनाथजिन्महोत्सव' की आठ कारिका एवं भाष्यप्रकाशके मङ्गलाचरणतया श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित "श्रीवल्लभप्रतिनिधिं ... श्रीगोपीनाथमाश्रये" श्लोकके अवलोकनसे भी पुष्टिभक्तिसम्प्रदायके सेवाप्रकारमें आपका महत्त्व और महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंका सर्वांशमें प्रतिनिधिरूपत्व अनायास हृदय हो जाता है.

अपरञ्च पुष्टिप्रभुकी महाप्रभूपदिष्ट ब्रजलीलाभावात्मिका अष्टयाम भगवत्सेवाको गीत-वादन-शृंगार-भोगके विनियोग सहित इदंप्रथमतया उपनिबद्ध करनेका श्रेय श्रीगोपी.प्रभु.को ही जाता है ऐसा कहनेमें लेशमात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है. इस तथ्यका उद्घाटन आपद्वारा विरचित 'सेवाविधि' और 'साधनदीपिका' ग्रन्थोंके अवलोकनसे स्वतः हो जाता है. और इसीसे सम्प्रदायमें व्यापकरूपसे प्रचलित यह मान्यता भी कि महाप्रभु प्रवर्तित भगवत्सेवाका राग-भोग-शृंगारके विनियोगात्मक विस्तार महाप्रभुके पश्चात् श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणोंने किया था, श्रीगोपी.प्रभु.के सम्प्रदायके अन्तरङ्गतम सेवासाधनापक्षमें अनन्यपूर्व योगदानविषयक अज्ञानसे प्रेरित लगती है.

इसी तरह श्रीगोपी.प्रभु.को मर्यादामार्गी कहनेवालोंको 'साधनदीपिका'ग्रन्थके अधोलिखित

श्रुति-स्मृति-शिरोत्त-नीराजित-पदाम्बुजं,
यशोदोत्सङ्गललितं वन्दे श्रीनन्दनन्दनं,
भक्तिमार्गवितानाय योऽवतीर्णो हुताशनः,
सएव नः परं मानं शेषमस्य प्रमान्तरं,
वेदत्रयी-शिरोभाग-सूत्र-व्याख्यान-सम्मतान्,
भक्तिशास्त्रानुसारेण कुर्वे साधनदीपिकां,

भक्तिशास्त्रानुकूल्येन स्वधर्माचरणं भवेत्”

-इत्यादि पुष्टिभक्तिभावप्रचुर वचनोंका घण्टाघोष क्यों सुनाई नहीं पड़ता है यह परम आश्चर्यका विषय है.

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके गोधरा निवासी सुपठित शिष्य श्रीराणाव्यासने खास श्रीगोपी.प्रभु.केलिये 'सुबोधिनी'की प्रतिलिपि स्वयं तैयार की थी. एतद्विषयक उल्लेख करते हुवे श्रीगोपी.प्रभु.के प्रति अपने परम स्नेह और आदर पूर्ण भावोंको उन्होंने दशमस्कन्ध सुबिधिनीकी प्रतिलिपिके समाप्ति सूचक मङ्गलश्लोकोंमें प्रकट किया है जो नितान्त पठनीय और सदा स्मरणीय हैं:

गोपीनाथमहाराजो भगवान् भगवत्तमः

तदाश्रयेऽस्मद्दृष्ट्या तत्प्रसादात् तदात्मना।।

तदीयानां तदर्थार्थं तदेकशरणार्थिना

व्यासवल्लभशिष्येण व्यासराणेन लेखिता।।

श्रीराणाव्यासके श्रीगोपी.प्रभु.के प्रति रहे परम स्नेह और आदरपूर्ण भावोंको जानकर यह सहजमें ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके कालमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके अन्य भी शिष्योंमें श्रीगोपी.प्रभु.की आदरपूर्ण प्रतिष्ठा थी. (उल्लिखित श्रीराणाव्यास विरचित श्लोकोंके विषयमें अधिक विवेचनकेलिये देखें प्रास्ताविक पृ.१४-१६)

मेरा यह दृढ विश्वास है कि इस ग्रन्थका आद्योपान्त अवलोकन करनेके पश्चात् पाठकाण साम्प्रदायिक साहित्यके द्वारा, विशेषकर भाषासाहित्यके द्वारा, श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंके प्रति फैलाई गयी पक्षपातपूर्ण भ्रान्त मान्यताओंसे मुक्त हो पायेंगे. और अतएव सम्प्रदायके उन-उन साहित्योंका निष्पक्षभावसे पुनः अवलोकन, अन्वेषण एवं संशोधन करनेकी आवश्यकताका भी अनुभव करेंगे.

यह ग्रन्थ विभिन्न स्थानोंसे प्रकाशित इतिहासादिके ग्रन्थ, धौल-पद-कीर्तनसंग्रह, साम्प्रदायिक मासिकपत्रिका एवं परम्परागत संगृहीत हस्ताक्षर-लेख आदिका, कहीं यथावत् तो कहीं किञ्चित् संशोधन-परिवर्धनके साथ किया गया, एक सङ्कलनमात्र है. अतएव जिनके कारण हम श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंके सम्बन्धमें इतनी सब जानकारियोंको एकत्रित कर पाये हैं वे गोलोकवासी श्रीमन्लाल शास्त्री, गोलोकवासी श्रीमूलचन्द्र तेलीवाला, गोलोकवासी श्रीद्वारकादास परीख, गोलोकवासी श्रीप्रेमलाल मेवचा, गोलोकवासी श्रीचिमनलाल शास्त्री, गोलोकवासी श्रीकण्ठमणि शास्त्री, वल्लभ मंदिर (संखेडा), श्रीबालकृष्ण शु. महासभा (सुरत), समादरणीय गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (पार्ला-किशनगढ़), समादरणीय गोस्वामी श्रीरमेशकुमारजी (मुंबई-मुलुंड), श्रीकिरण ठक्कर (मुंबई) आदि सभी धन्यवादार्ह महानुभावोंके प्रति हम हमारी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं.

जिन आकरग्रन्थोंसे यह सङ्कलन किया गया है वे इस प्रकार हैं :

- साधनदीपिका, श्रीगोपीनाथप्रभुचरण
- सेवाश्लोकाः, श्रीगोपीनाथप्रभुचरण
- सौन्दर्यपद्य, श्रीगोपीनाथप्रभुचरण
- सम्प्रदायप्रदीप, पण्डित श्रीगदाधरदास द्विवेदी
- वाधूलवंशावली, श्रीमधुसूदन भट्ट
- सम्प्रदायकल्पद्रुम, श्रीविट्ठलनाथ भट्ट
- मूलपुरुष, गोस्वामी श्रीद्वारकेशजी
- श्रीवल्लभाख्यान, श्रीगोपालदासजी
- ८४-२५२ वैष्णववार्ता
- निजवार्ता-घरुवार्ता
- अष्टसखान्की वार्ता
- श्रीआचार्यजीकी वंशावली, श्रीकेशवकिशोर,
- आचार्यवर्य श्रीवल्लभाचार्यजी तथा आपश्रीके वंशजोंकी श्रीजगदीशकी यात्राएं, श्रीबालकृष्ण शु. महासभा, सुरत, २०२९
- श्रीवल्लभकल्पद्रुम, पण्डित गोपीनाथसुत श्रीसरयूदास

- कांकरोलीका इतिहास, श्रीकण्ठमणि शास्त्री, १९९४
- श्रीद्वारकानाथजीकी प्राकट्य वार्ता और अमरेली घरका इतिहास, श्रीद्वारकादास परीख, २०२३
- जीवनदर्शन, श्रीप्रेमलाल गो. मेवचा, पोरबंदर, २०२९

श्रीवल्लभप्रतिनिधे! गोपीनाथ! तदङ्ग!

पाहि तद्भक्तिदानेन नमस्ते करुणानिधे!

श्रीकृष्णजयन्ती

श्रीवल्लभाब्द ५२६ वि.सं. २०६०

(मांडवी-कच्छ)

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्टद्वारा

गोस्वामी शरद् (मांडवी-कच्छ)

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ		
	प्रास्ताविक	१-२०		प्राकट्योत्सवके श्लोक ४९
१	मङ्गलाचरणम्	१	१७	श्रीवल्लभाभ्यान्, भूलपुरुष तथा धोण-पद ५०
२	शुवनचरित्र (गुजराती)	१	१८	साधनदीपिका : ब्रजभाषा-गुजराती भाषानुवाद सहित ५५
	श्रीपुरुषोत्तमल	७		
	श्रीसत्यभामा भेटील	८	१९	सेवाविधिश्लोक विषयक प्रास्ताविक १४१
	श्रीलक्ष्मी भेटील	९	२०	नित्यसेवाविधि-श्लोक १४८
३	काशीके पुरोहितको वृत्तिपत्र	१३	२१	उत्सवसेवाश्लोक १६७
४	श्रीजगन्नाथपुरीके पुरोहितको वृत्तिपत्र	१४	२२	श्रीगोपीनाथानां पद्यानि १७९
५	जीवनचरित्र (हिन्दी)	१६	२३	सौन्दर्यपद्यकी ब्रजभाषा टीका १८२
६	८४ वैष्णववार्तामें श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	२९	२४	श्रीगोपीनाथानां जन्मपत्रिका १८६
७	घरुवार्तामें श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	३१		
८	निजवार्तामें श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	३२		
९	बैठकचरित्रमें श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	३३		
१०	सम्प्रदायप्रदीपमें श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	३३		
११	श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंकी बधाई	३४		
१२	श्रीपुरुषोत्तमजीकी बधाई	३७		
१३	श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंकी जगन्नाथपुरीकी यात्राका ताड़पत्रोंपर सचित्र वर्णन	३८		
१४	श्रीगोपीनाथात्मज श्रीपुरुषोत्तमचरणोंकी जगन्नाथपुरीकी यात्राका ताड़पत्रमें वर्णन	४१		
१५	श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंको श्रीविठ्ठलनाथ-प्रभुचरणद्वारा लिखित पत्र	४५		
१६	श्रीवजराजजी विरचित "संवत्सरोत्सव-कल्पलता"के अन्तर्गत श्रीगोपीनाथजीके			



॥प्रास्ताविक॥

भूतकालीन व्यक्ति-समुदाय, देश-प्रदेश, घटना आदिको लेकर उनके सुव्यवस्थित क्रमबद्ध वर्णनको 'इतिहास' कहा जाता है. 'इतिहास'की यह परिभाषा अद्यतनीय है. कारण अवश्य ही चिन्तनीय हैं किन्तु यह सत्य है कि जिस भारतीय परम्परामें नित्यप्रति कमसे कम तीन बार तिथि-वार-पक्ष-मास-ऋतु-वर्ष-मन्वन्तर-युग-कल्पका, नक्षत्र-योग-करणका और जिस जगह व्यक्तिकी स्थिति है वहांसे लेकर भूलोक पर्यन्तके भूगोलका उच्चारण नित्यप्रति कमसे कम तीन बार किया जाता है उसी भारतीय परम्परामें इतिहासका लेखन/कथन करते समय कालादिका उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा जाता था. वहां तक कि स्वजनोंको लिखे जानेवाले सन्देशपत्रोंमें मित्यादि लिखना भी बहुत परवर्तिकालमें शुरु हुआ था.

वस्तुतः 'इतिहास'की परिभाषा हमारे यहां आध्यात्मिक रङ्ग ली हुयी होनेसे कुछ विलक्षण ही है. 'इतिहास' शब्दका विग्रह "इतिह पारम्पर्योपदेश आस्ते अस्मिन्" किया जाता है. तदनुसार उपदेशपरम्पराका निरूपण करनेवाले ग्रन्थको 'इतिहास' कहा जाता है. अतएव कोशमें कहा गया है:

धर्मार्थकाममोक्षाणाम् उपदेशसमन्वितं

पुरावृत्तकथायुक्तम् इतिहासं प्रचक्षते

अर्थात्, धर्म अर्थ काम और मोक्ष पुरुषार्थोंके उपदेश सहित पुरातन घटनाओंके कथनको 'इतिहास' कहा जाता है. 'इतिहास'की यह परिभाषा यद्यपि शास्त्रीय नहीं है तथापि पुराण और रामायण-महाभारत की निरूपण पद्धतिको ध्यानमें रखकर बनाई गयी होनेसे उनके उपर भी यह परिभाषा पूर्णरूपसे चरितार्थ होती है. शास्त्रीय परम्परामें तो 'इतिहास'शब्दका प्रयोग केवल रामायण एवं महाभारत केलिये ही होता आया है.

भारतीय इतिहासकारोंके सामने मुगल और अंग्रेजों की शैलिके इतिहास जैसा अन्य कोई प्रतिरूप न होनेके कारण और उनके पुराण-रामायण-महाभारतकी निरूपण पद्धति मात्रसे परिचय रखते होनेके कारण परवर्तिकालमें जो इतिहास

लिखे गये, जिसमें हम ८४, २५२ वैष्णववार्ताको भी गिन सकते हैं, उनमें हमको घटना और चरित्र का क्रमबद्ध निरूपण प्राप्त नहीं होता है. साथ ही साथ उनमें बोध/प्रेरणा, माहात्म वर्णन आदिका प्राधान्य भी देखा जाता है. यही कारण है कि जब हम उनको आधार बनाकर इतिहास निरूपणकी आधुनिक शैलिमें किसी घटनाकी परीक्षा करते हैं तब चाहिये उतनी सङ्गति बैठा नहीं पाते हैं.

हमारे इतिहासग्रन्थोंकी उक्त समस्याओंको ध्यानमें रखते हुये, प्रासङ्गिक होनेसे, यहां कुछ विचार श्रीगोपीनाथप्रभुचरणों (श्रीगोपी.प्रभु.) की अनिश्चयपूर्ण भूतलपर स्थिति एवं तिरोधान के सम्बन्धमें एवं तदानुषङ्गिकतया आपके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीके विषयमें भी करना आवश्यक लगता है. इस सम्बन्धमें सर्वप्रथम तो यह ध्यातव्य है कि सम्प्रदायमें अधिकतम प्रामाणिक माने जाने वाले इतिहासके किसी भी प्राचीन ग्रन्थमें उपर्युक्त दोमेंसे किसी भी आचार्यके तिरोधानकी संवत् इदमित्थन्तया उपलब्ध होती नहीं है. अतएव इस सम्बन्धमें अद्यावधि जो भी मान्यताएं प्रचलित हैं वे अनुमानिक ही हैं.

श्रीगोपी.प्रभु.के तिरोधानके विषयमें सम्प्रदायके प्रमुख दो इतिहासवित् पो. श्रीकण्ठमणी शास्त्री, कांकरोली (श्रीकं. शास्त्री) एवं श्रीद्वारकादास परीख, जतिपुरा (श्रीद्व. परीख) के बीच बड़ा भारी मतभेद दिखलाई पड़ता है.

श्रीकं. शास्त्रीके मतमें श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान वि.सं. १६२० में हुआ था जबकि श्रीद्व. परीखके मतानुसार वि.सं. १५९९/१६०० में.

वि.सं. १५६८ में आपका प्राकट्य मानने पर, जो कि प्रायः सर्वमान्य है, श्रीकं. शास्त्रीके अनुसार श्रीगोपी.प्रभु. भूतलपर ५२ वर्ष पर्यन्त विद्यमान् थे जब कि श्रीद्व. परीखके मतानुसार आपकी भूतलपर स्थिति ३२ वर्ष ही थी. (कवि जगनन्द आपका प्राकट्य वि.सं.१५७०में हुआ लिखते हैं).

इसी सन्दर्भमें उक्त दोनों इतिहासविदोंकी तुलना की जाय तो श्रीकं. शास्त्रीके मतानुसार श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान उनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीके तिरोधानके पश्चात् हुवा था जबकि श्रीद्रा. परीखके मतानुसार तत्पूर्व.

दोनों इतिहास लेखकोंने तत्-तत्कालमें उनको उपलब्ध प्रमाणोंमेंसे किसी प्रमाण/घटना विशेषपर अधिक अवलम्बित होकर तत्तत् संवत्का निर्धारण किया है.

श्रीद्रा. परीख द्वारा लिखित और “श्रीद्वारकानाथजीकी प्राकट्यवार्ता” (वि.सं. २०२३) नामक पुस्तकके पञ्चम प्रकरणतया प्रकाशित श्रीगोपी.प्रभु. और आपके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी के जीवन चरित्र; एवं श्रीकं. शास्त्री द्वारा लिखित और “कांकरोलीका इतिहास” (वि.सं. १९९६) नामक पुस्तकमें प्रकाशित उक्त दोनों आचार्योंके जीवन चरित्र इस ग्रन्थमें प्रायः यथावत् दिये गये हैं. साम्प्रदायिक इतिहासके लेखक श्रीप्रेमलाल गो. मेवचा, पोरबंदर, द्वारा उपर्युक्त दोनों लेखकोंके ग्रन्थोंको आधार बानकर गुजरातीमें लिखित और संवत् २०२९में प्रकाशित उक्त दोनों आचार्योंका जीवनचरित्र भी गुर्जरभाषाभाषी लोगोंकी सुविधामात्रकी दृष्टिसे इस ग्रन्थमें दिया गया है.

श्रीद्रा. परीखका एतद्विषयक अभिप्राय पश्चाद्वर्ती है और श्रीकं. शास्त्री द्वारा परिशीलित प्रमाणोंसे कुछ अधिक प्रमाणों पर आधारित होनेसे उसे भी यहां संक्षेपमें देख लेना उपकारक होगा. श्रीद्रा. परीख लिखते हैं:

वि.सं १५९९ (चैत्री १६००) में आप जगदीशपुरीमें जगदीशके विग्रहमें ही लीन हो गए. इस घटनासे वहांके लोग बड़े प्रभावित हुए थे.

श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंके तिरोधानकालके सम्बन्धमें प्रमाण देते हुवे पादटिप्पणीमें वे लिखते हैं:

“श्रीनाथजीकी प्राकट्य वार्ता” में श्रीगोपीनाथजीका ... (मूल पुस्तकमें ही संवत् नहीं दी गई है. मेरे पास उपलब्ध विद्याविभाग, नाथद्वारासे वि.सं. २०१२ में गुजरातीमें प्रकाशित पुस्तकमें श्रीगोपीनाथजीके स्वधाम पधारनेकी संवत्का कहीं उल्लेख नहीं है) दिया है और ‘सम्प्रदायकल्पद्रुम’में वि.सं. १६२० दिया है. ये दोनों तिथियां अप्रमाणिक हैं. क्योंकि श्रीगुसांईजी और दामोदरदास के संवादसे श्रीगोपीनाथजीके पुत्र

१. “कृष्णदास अधिकारीने श्रीगुसांईजीको श्रीनाथजीके मन्दिरमें बरजे हैं जो तुम श्रीनाथजीके मन्दिरमें मति आओ. श्रीनाथजीकी सेवाको अधिकार श्रीमहाप्रभुजीनें मोकौ सौंप्यो है. और श्रीगोपीनाथजीके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी हैं वे धनी हैं. सो श्रीनाथजीके सेवा-शृंगार तो श्रीपुरुषोत्तमजी करेंगे. यातें तुम मन्दिरमें मति आउ. ऐसे कृष्णदास अधिकारीने बरजे हैं. तब श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजीको सेवक जानि तथा अधिकारी जानकैं आज्ञा प्रमान मानत भये. सो मास छै पर्यन्त श्रीगुसांईजी श्रीजीद्वार पांव न धरे. सो ता

श्रीपुरुषोत्तमजीके अधिकार विषयमें जो गृहकलह हुआ वह वि.सं. १६०५ में हुआ सिद्ध होता है. इससे १६०५ के पूर्व श्रीगोपीनाथजीका तिरोधान निश्चित हो चुका था यह निर्विवाद सिद्ध होता है. श्रीनाथजीके भंडारकी नोंधमें, जिसका अक्षरशः उद्धरण इस लेखकद्वारा

समै परासोलीमें एकान्त स्थलमें श्रीगुसांईजी पधारे. सो वहां श्रीआचार्यजीकी बैठक है सो तहां श्रीआचार्यजीके दरसन करे. पाछे बैठकके सान्निध्य बैठकैं श्रीभागवतको पारायण करे. सो वा समै तहां दामोदरदास हरसानी आये. तब दामोदरदास बैठकको दंडौत करिकैं बैठै. पाछे श्रीभागवतको पारायण सम्पूरन भयो. ता पाछे श्रीगुसांईजीने दामोदरदाससों कह्यो जो ... तब दामोदरदास कहै ... इतनी बात कहि श्रीदामोदरदास श्रीगुसांईजीके चरनारविन्द ऊपर ढरे. तब श्रीहस्तसों पकरिकैं उठाए. अरु कही जो तुम पांयन मति परो. ... तब कही जो संकोच काहेको? ... तुम्हारे घर हम बेटा होइंगे. ... तातें हमको पायन परनो

उचित ही है. तातें श्रीगिरिधर-गोविन्दजू प्रगटे हैं. अरु श्रीबालकृष्णजू अब प्रगटैंगे. ...(*संवाद पृ.२००)

(“अष्टसखानकी वार्ता” बहिःसाक्ष्य सामग्री, पृ.६९, सम्पादकःगो.वा.श्रीद्वारकादास परीख, प्रकाशकःप्रभुदयाल मित्तल, अग्रवाल प्रेस, अग्रवाल भवन, मथुरा, प्रकाशन सं.२००७, वल्लभाब्द४७३)

* कृष्णदास अधिकारीने जब ... श्रीविट्ठलनाथजी (श्रीवि.) को श्रीनाथजीके मन्दिरमें आनेसे रोका था, तब श्रीवि.ने चन्द्रसरोवरपर छः मास पर्यन्त ... श्रीनाथजीके विरहानुभव किया था. उस समय नित्यप्रति दामोदरदास ... श्रीवि.के सम्मुख आकर बैठते थे. तब दामोदरदाससे आप मार्गकी वार्ता, लीलाका प्रकार, आचार्यजीके प्राकट्य आदिके प्रकारको पूछते थे. उस समय दामोदरदास आपसे सब सुनी और देखी हुई बात निवेदन करते थे. उन वृत्तान्तोंको श्रीवि.ने एक सहस्र श्लोकोंमें ग्रन्थबद्ध किया है जो श्रीगुसाईजी और दामोदरदासजी के ‘संवाद’ नामसे सम्प्रदायमें प्रसिद्ध है. यह संस्कृत ग्रन्थ सम्प्रदायमें अप्राप्य है किन्तु उसकी अपूर्ण टीका ब्रजभाषाकी सम्प्रदायके अनेक स्थानोंपर मिलती है. ... इस ग्रन्थमें दामोदरदासद्वारा कहा हुआ आचार्यजीका प्राकट्य और आपका चरित्र भी मिलता है.

(वार्तासाहित्य एक बृहद् अध्ययन, श्रीहरिहरनाथ टंडन, पृ.४२-४३)

मथुरासे प्रकाशित अष्टछापकी वार्तामें दिया गया है, श्रीगोपीनाथजीका तिरोधान वि.सं. १५९९ स्पष्ट लिखा गया है. इसकी पुष्टि

२.नाथद्वारेकी नोंध

श्रीगिरिराजजीमां संवत् १४६५ की सालमां ब्रजवासी लोगो सद्गुण्डे नरोबाई वगेराए गुप्तसेवा कीदी. ते पछे संवत् १५३५ की सालमां प्रसिद्ध हुवा जा पाछें संवत् १५४९ मां श्रीमहाप्रभुजीको श्रीनाथजीए झाडखंडमां जताव्यूं ते वारे आप श्रीजीद्वार गिरिराज उपर पधारे ओर रामदास चौहानकुं सेवा सोंपी पछी श्रीजीनी स्थापनाको विचार श्रीमहाप्रभुजीने कियो. परन्तु ओ विचार संवत् १५३५ ताई पार पड्यो नहीं. ... संवत् १५८७ ताई तो श्रीनाथजी वैष्णवनेके और ब्रजवासियोंके कहलाये. जा पीछे संवत् १५९२ श्रीवल्लभाचार्यजीना

मोटा पुत्र श्रीगोपीनाथजी सेवा करन लागे और सब वहिवट ब्रजवासीओ ओर कृष्णदास अधिकारी करते रहे. सो संवत् १६०० की सालमें श्रीगोपीनाथजी लीलामां पधार गये. जा पीछे इनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी दो-चार बरसमें लीलामें पधार गये. ...

संवत् १९९१ में पं. मोहनलालात्मज रामचन्द्रने वैष्णव छगनलाल नाथाभाईके निमित्त लिख दियो भाद्रपद कृष्ण ७ भृगुवार.

(“अष्टसखानकी वार्ता” अष्टछापसे सम्बन्धित सामग्री पृ.७९, सम्पादक-प्रकाशकादिःपूर्ववत्)

यह नोंध कृष्णभंडार, नाथद्वारेके एलकार मगनलाल ईश्वरदास बहादरपुर वालेने भंडारकी किसी नोंध पोथीसे उतार ली थी. उसे वि.सं.१९९१ में छगनलाल बहादरपुरवालेने उतरवा ली थी. उनसे हमें प्राप्त हुई है. इसकी भाषा गुजराती, मेवाड़ी और ब्रज मिश्रित है. नाथद्वारेका नामा इसी मिश्रित भाषामें आज तक लिखा जा रहा है. इससे इसकी प्रामाणिकता स्पष्ट होती है. इसका प्रत्येक कथन ऐतिहासिक होनेके कारण बड़ा महत्वपूर्ण है. बहिःसाक्ष्योंसे माला प्रसङ्गके संवत्में दो वर्षका अन्तर आता है. इसके अतिरिक्त सब संवत् प्रामाणिक सिद्ध होते हैं. ...

(“अष्टसखानकी वार्ता” अष्टछापसे सम्बन्धित सामग्री पृ.१८, सम्पादक-प्रकाशकादिःपूर्ववत्)

श्रीविट्ठलनाथजीने सर्व प्रथम स्वतन्त्र रूपसे की गई वि.सं १६००की ब्रजयात्रासे होती है. यह स्वतन्त्ररूपसे इसलिये कही गई है कि उस समय श्रीविट्ठलनाथजीने अपने नामका मथुराके पुरोहित उजागर चौबेको वृत्तिपत्रक लिख दिया है. उस समय यदि श्रीगोपीनाथजी विद्यमान होते तो वे उस यात्रामें अवश्य होते और उनके हाथसे ही वृत्तिपत्रक लिखवाया गया होता.

श्रीद्वार. परीखके उल्लिखित निरूपणको देखते हुवे इनका मत श्रीकं.शास्त्रीके मतसे बलवत्तर प्रतीत होता है. क्योंकि श्रीगुसाईजीके तृतीय पुत्र श्रीबालकृष्णजीका प्राकट्य १६०६में हुवा होनेसे, उक्त संवादके अनुसार, श्रीगुसाईजीके साथ श्रीजीके विप्रयोगकी घटना; अर्थात् गृहकलहकी घटना यदि श्रीबालकृष्णजीके प्राकट्यके सन्निकटपूर्व घटी है तो श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान १६०६ के पूर्व होना सिद्ध होता है. ध्यातव्य है कि इस संवत्की सत्यासत्यता उक्त संवादके प्रामाण्यके अधीन है.

उल्लिखित उद्घोषांशमें श्रीद्वा. परीखने श्रीप्रभुचरणोंकी स्वतन्त्र रूपसे की गई यात्राके समय तीर्थपुरोहितको अपने नामसे प्रदत्त वृत्तिपत्रको श्रीगोपीनाथजीकी उस समय भूतलपर अनुपस्थितिमें ज्ञापकहेतु बनाया है. यहां तीन बातें विचारणीय हैं: क.प्रभुचरणोंद्वारा अपने नामसे तीर्थके पुरोहितको वृत्तिपत्र प्रदान करना ख.श्रीगोपी.प्र.का यात्रामें न होना और ग.यात्राकी संवत्.

(क) इस विषयमें श्रीद्वा. परीखका अभिप्राय उचित प्रतीत नहीं होता है. क्योंकि ज्येष्ठकी विद्यमानतामें कनिष्ठ व्यक्ति अपने कुलके तीर्थपुरोहितको वृत्तिपत्र लिख नहीं सकता है ऐसा न तो कोई सिद्धान्त है और न परम्परा ही. हां, यह अवश्य कहा जा सकता है कि यदि परिवारका ज्येष्ठ यात्रामें सम्मिलित हो तब ज्येष्ठ ही वृत्तिपत्र लिखता है.

(ख) इस विषयमें भी यही कथनीय है कि श्रीप्रभुचरणोंकी यात्राके बखत श्रीगोपीनाथजी यदि भूतलपर बिराज रहे होते तो वे भी ब्रजयात्रामें अवश्य सम्मिलित होते ऐसा माननेमें भी कोई हेतु नहीं है. ध्यातव्य है कि श्रीकं. शास्त्री इस यात्राके समय श्रीगोपी.प्र.को भूतलपर विद्यमान् मानते हैं.

(ग) यात्राकी संवत्के बारेमें इतना तो निःसन्देहरूपसे कहा जासकता है कि, यदि प्रभुचरणोंने एक से अधिक बार वृजयात्रा की है तब, वृत्तिपत्र तो आपने विधिपूर्वक की गई अपनी प्रथम ब्रजयात्राके समय ही लिखा होगा. वृत्तिपत्रमें किन्तु मित्यादिका उल्लेख किया न होनेसे उक्त यात्राकी संवत्का निर्धारण करपाना कठिन कार्य है. श्रीकं. शास्त्री और श्रीद्वा. परीख दोनोंने उक्त यात्राकी संवत्का जो निर्धारण (१६००) किया है उसके समर्थनमें कोई प्रमाण नहीं दिये हैं.

प्रभुचरण कृत ब्रजयात्राके संवत् सहित उल्लेख दो जगह प्राप्त होते हैं. एक तो कवि जगतानन्द विरचित “श्रीगुसांईजीकी वनयात्रा”के वर्णनमें जहां यात्रारम्भकी मिति भादों वदि, १२, वि.सं. १६२४ लिखी है. दूसरी यात्रारम्भकी मिति भादों वदि, १२, वि.सं. १६२८ प्राप्त होती है जो कि २५२वै. वार्तामेंके श्रीप्रभुचरणोंके

शिष्य श्रीपीताम्बरदासकी वार्तामें लिखित है. उल्लेखनीय है कि उक्त वार्तामें उपलब्ध ब्रजयात्राका वर्णन कवि जगतानन्द वर्णित यात्राके वर्णनसे अत्यधिक साम्य रखता है. वनयात्राके इन दो वर्णनोंको देखते हुवे यह विश्वासके साथ कहा जा सकता है कि, संवत्के भिन्न होने पर भी, दोनों वर्णन एक ही ब्रजयात्राके हैं. यदि प्रभुचरणोंने विधिपूर्वक/अविधिपूर्वक या ८४कोसी/स्थलविशेषकी एकाधिक ब्रजयात्रा की है तो उनमेंसे यह यात्रा कौनसी होगी यह प्रमाणकी अनुपलब्धिके कारण इदमित्थन्तया कह पाना कठिन है. वार्ताके अवलोकनसे, किन्तु, इतना तो अवश्य स्पष्ट होता है कि उक्त यात्रा आपने गोकुलमें अपना निवास स्थिर करनेके अनन्तर अर्थात् वि.सं.१६२८* के आस-पास की है.

उक्त यात्राके पूर्व यदि श्रीप्रभुचरणोंने कोई ब्रजयात्रा की है तो वह अपने ज्येष्ठ भ्रातृचरण श्रीगोपी.प्र.को सकुशल ब्रज पहुंचनेके अनन्तर जो पत्र लिखा है उस समय की होनी चाहिये ऐसा अनुमान होता है. उपर्युक्त प्रभुचरणोंके पत्रमें मितिका उल्लेख यद्यपि नहीं मिलता है तथापि पत्रकी भाषा और लिखित बातों से लगता है कि वह पत्र आपने अपनी किशोर/युवा अवस्थामें लिखा है. पत्रसे यह भी प्रतीत होता है कि ज्येष्ठ भ्रातृचरणोंकी आज्ञा लेकर स्वतन्त्ररूपसे आप सम्भवतः प्रथम बार ही ब्रजादिकी यात्राकेलिये घर(अडैल)से बाहर पधारे हैं. इस स्थितिमें उक्त यात्राके समय श्रीगोपीनाथ प्रभुचरणकी भूतलपर उपस्थिति उक्त पत्रसे प्रतीत होती है.

श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान १६०६के पूर्व हो जानेके विषयमें श्रीद्वा. परीख एक अन्य प्रमाणतया श्रीपुरुषोत्तमजीके बालिग होजानेके पश्चात्; अर्थात् वि.सं. १६०५-१५८७जन्म सं.३३ = १८ वर्षके होनेके पश्चात् अपने

* आत्मनः सुखवासार्थं महावनसमीपतः
यमुनातीरम् आश्रित्य स्थलं रम्यम् अयाचिषुः
अथ स्वाधिकृतैः भूमेः पत्रं संल्लेख्य भूपतिः
स्वनाममुद्रासहितं दीक्षितेभ्यः तदाऽर्पयत्
ततो मौहूर्तिकादिष्टे मुहूर्ते विधिपूर्वकम्
ग्रामं 'गोकुल'नामानं स्थले तत्र न्यवासयन्

अब्देऽष्टनेत्राङ्गमही(१६२८)प्रमाणे तपस्यमासस्य तमिस्रपक्षे
दिने(७) दिनेशस्य शुभे मुहूर्ते श्रीगोकुलग्रामनिवास आसीत्
वृत्तान्तमिममाकर्ण्य सजातीयाः द्विजोत्तमाः
कुटुम्बसहिताः तत्र वासार्थं समुपागमन्
(वाधूलवंशावली).

अपने अधिकारका प्रश्न उठानेको मानते हैं. इस सम्बन्धमें दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण
बातें ध्यान देनेयोग्य हैं.

१. सर्व प्रथम तो किसी भगवत्स्वरूपकी सेवाके अधिकारकी प्राप्तिका अथवा
भगवत्स्वरूपके बिराजनेके स्थानपर आधिपत्यका और साम्प्रदायिक गुरुत्व/
आचार्यत्वकी प्राप्तिका सिद्धान्ततया और परम्परानुसार भी एक-दूसरेके साथ
अणुमात्र भी सम्बन्ध नहीं है. अन्यथा महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंको
श्रीनाथजीसे सुदूर स्थित अडैल-चरणोट न बिराजकर श्रीनाथजीसे सन्निकट
जतिपुरामें ही बिराजना उचिततम होता. इसी तरह यदि किसी भगवत्स्वरूपके
सेवाधिकार अथवा स्थान विशेषके आधिपत्यके कारण गुरुत्व/आचार्यत्वके
प्राप्त होनेका सिद्धान्त सत्य होता तो कमसे कम गृहकलहके शान्त होनेके
बाद तो श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंको गोकुलमें नहीं बिराजकर जतिपुरामें ही
बिराजना चाहिये था.
२. दूसरे क्रममें, बालिग होनेकेलिये १८ वर्षकी आयुका निर्धारण और उसके बाद
वैधानिकरूपसे किसी अधिकारकी प्राप्तिके प्रति कारवाई कर पानेका सिद्धान्त
अंग्रेजी कानूनके छायामें बनाये गये आधुनिक भारतीय संविधानकी दृष्टिमें तो
सही हो सकता होगा किन्तु ५०० वर्ष पूर्व धर्मशास्त्रीय दायभागके सिद्धान्तके
चलते वयस्कताके इस सिद्धान्तकी वैधानिकता कितनी स्वीकृत होगी यह
शोधका विषय लगता है. वैसे यह जान लेना यहां सम्भवतः उपकारक होगा
कि अकबरने वि.सं.१६४८ में पुरुष बालकका विवाह १६ वर्षकी आयुसे पूर्व
न करनेका कानून बना दिया था*. अतएव, श्रीद्रा. परीखके अनुसार,
श्रीपुरुषोत्तमजीके १२-१३ वर्षकी आयुके समय

* दृष्टव्य “भारतवर्षका सम्पूर्ण इतिहास” ले.श्रीनेत्र पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
पृ.१२६.

श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान हो जाने पर अपने कथित सेवाधिकार
/ज्येष्ठाधिकारको हस्तगत करनेकेलिये श्रीपुरुषोत्तमजीने अथवा उनके
मातृचरणोंने अथवा कृष्णदास अधिकारीने ५-६ वर्षों तक प्रतीक्षा
करनेके बाद कारवाई की होगी ऐसा किसी ठोस ऐतिहासिक प्रमाणके
अभावमें कह पाना अत्यन्त कठिन लगता है.

इससे यह अनुमान होता है कि श्रीद्रा. परीखके द्वारा उत्प्रेक्षित गृहकलहकी
संवत्: १६०५ पुनर्विचारकी अपेक्षा रखती है. हां, श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान
श्रीपुरुषोत्तमजीके तिरोधान, गृहकलह एवं बङ्गालियोंके निष्कासनकी घटना से भी
पूर्व हो चुका था इस बातके समर्थक अनेक प्रमाण उपलब्ध होते होनेसे इस अंशमें
श्रीद्रा. परीखका अनुमान श्रीकं. शास्त्रीके अनुमानसे प्रबल माना जा सकता है.

श्रीकं. शास्त्री श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान आपके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीके तिरोधानके
पश्चात् मानते होनेसे उक्त गृहकलह एवं विप्रयोग की घटनाके समय भी वे
श्रीगोपी.प्रभु.की भूतलपर स्थितिको स्वीकारते हैं. उनके मतानुसार उस समय
श्रीगोपी.प्रभु. गुजरातके लंबे प्रवासपर थे. श्रीकं. शास्त्रीकी यह मान्यता, किन्तु,
८४ वैष्णववार्तासे समर्थित नहीं होती है. बङ्गालियोंको श्रीजीकी सेवामेंसे दूर
करनेके बादका वृत्तान्त वार्तामें इस तरह उपलब्ध होता है:

(१) “बङ्गालीने सुनी जो श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्धन पधारे हैं और सिंगार
करत हैं. सो सगरे बङ्गाली मिलके श्रीगुसांईजीके पास आये. ... तब श्रीगुसांईजी
आपु श्रीगोपीनाथजीके सेव्य श्रीमदनमोहनजीकों देके कहे जो इनकी सेवा तुम करो”.
(८४वै.वार्ता, वा.प्र.२, पृ.२८५).

उपर्युक्त वार्ताशिके अध्ययनसे अनुमान होत है कि बङ्गालियोंके निष्कासनकी
घटनाके समय भी श्रीगोपी.प्रभु. भूतलपर विराजमान नहीं थे. अन्यथा सेवाकर्ताकी

विद्यमानतामें उसके सेव्य भगवत्स्वरूपको किसी ओरको सेवार्थ पधरा देना किसी भी दृष्टिसे उचित नहीं लगता है. अतएव कहा जा सकता है कि जब बङ्गालियोंके निष्कासनके समय ही श्रीगोपी.प्रभु. भूतलपर विद्यमान् नहीं थे तब उसके पश्चात् घटित हुयी श्रीगुसांईजीके विप्रयोगकी घटनाके समय आपके उपस्थित होनेका तो प्रश्न ही खड़ा नहीं होता है.

बङ्गालियोंकी उक्त घटनाके पश्चात् वार्ताप्रसङ्ग ७ में कृष्णदास अधिकारीद्वारा श्रीगोपी.प्रभु.के पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीको माध्यम बनाकर गृहकलह करवानेका वर्णन आता है:

(२) “तब कृष्णदास मनमें विचारे जो श्रीगुसांईजीके दरसन बंद करने. सो या बातको कौन प्रकारसों उपाय करनो? तब श्रीगोपीनाथजी, श्रीगुसांईजीके बड़े भाई, तिनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी हते. सो तिनसों कृष्णदास मिलिके कहे जो तुम श्रीआचार्यजीके बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी हैं तिनके पुत्र हो. सो तुम क्यों चुप बैठि रहे हो? ... टीकेत तो तुम हो!”.

(८४वै.वार्ता, वा.प्र.७, पृ.६०२).

इस वार्ताशका सावधानतया अध्ययन करने पर दो बातें स्पष्ट होती हैं:

१.श्रीगोपी.प्रभु. एवं श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण इन दोनों भाईयोंके बीच रहे अत्यन्त सौहार्दको देखते हुवे श्रीगोपी.प्रभु.की उपस्थितिमें उक्त घटनाका घटित होना सम्भव नहीं लगता है.

२.उक्त वार्ताशमें श्रीपुरुषोत्तमजीकेलिये प्रयुक्त ‘टीकेत’ शब्द श्रीगोपी.प्रभु.की भूतलपर अनुपस्थितिका द्योतक है. अन्यथा ‘टीकेत’ शब्द वहां असङ्गत होता.

इन दो वार्ताशोंका अवलोकन करनेके पश्चात् निष्कर्षतः श्रीगोपी.प्रभु.का तिरोधान श्रीपुरुषोत्तमजीकी विद्यमानतामें ही होजानेकी श्रीद्व. परीखकी मान्यता

अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होती है. इतिहाससिद् श्रीहरिहरनाथ टंडन भी “वार्ता-साहित्य”में लिखते हैं:

“ऐसा लगता है कि (बङ्गालियोंके निष्कासनकी) यह घटना संवत् १६१३ के बादकी है. कांकरौलीके इतिहासमें प्रोफेसर कंठमणि शास्त्रीने भी इसका संवत् १५९० का उल्लेख किया है. जिस समय यह झगड़ा हुआ है, उस समय तिलकायत श्रीगोपीनाथजी थे. कांकरौलीके इतिहासका यह उल्लेख नए शोधके अनुसार अप्रामाणिक हो चुका है क्योंकि श्रीगोपीनाथजीका निधन संवत् १५९९ सिद्ध है.

श्रीद्व. परीख श्रीगोपी.प्रभु.के तिरोधानकालके निर्धारणार्थ, उपर्युक्त हेतुओंके आधारपर, वि.सं. १६०६को सीमारेखा मानते हैं. इस सीमारेखामें ५-६ वर्षकी बढ़ोतरी कर सकनेके कुछ प्रमाण ८४ वैष्णववार्तामें भी उपलब्ध होते हैं. अतः उनको भी यहां देख लेना उपकारक होगा.

श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणोंको हुवे विप्रयोगकी घटनाके वर्णनमें आता है कि उस समय किसी कार्यवश बीरबलके गोकुल जाने पर जब उसने श्रीगिरिधरजीसे श्रीप्रभुचरणोंके सम्बन्धमें पृच्छा की तब श्रीगिरिधरजीके श्रीमुखसे कृष्णदास अधिकारीद्वारा श्रीप्रभुचरणोंपर छे महिनेसे श्रीनाथजीके दर्शन करनेकेलिये रोक लगा देनेकी बात सुनी. तत्पश्चात् जब बीरबलने कृष्णदास अधिकारीको जेलमें डलवाकर उसकी सूचना श्रीगिरिधरजीको अर्धरात्रिके समय गोकुल भिजवाई तब श्रीगिरिधरजी रात्रिमें ही घोड़ेपर सवार होकर परासोली पधारे ऐसा वर्णन ८४वैष्णववार्तामें आता है:

सो रात्रिही कों श्रीगिरिधरजी घोड़ा ऊपर असवार होयके परासोलीकूं पधारे.

सो प्रातःकाल ही आषाढ़ सुदी ६ आई. सो श्रीगिरिधरजी जायके श्रीगुसांईजीकों नमस्कार करिके कही जो आपु श्रीगोवर्धनधरके मन्दिरमें पधारो और सेवा-सिंगार करो. तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगिरिधरजीसों कहे जो कृष्णदासकी आज्ञा होय तो चलें. तब ... श्रीगिरिधरजीने कही जो कृष्णदासकूं तो मथुरामें बंदीखानेमें दियो है. ... तब आपु कहे जो कृष्णदास आवेगो तब ही भोजन करूंगो. सो इतनो सुनत ही श्रीगिरिधरजी तत्काल घोड़ा ऊपर असवार होयके श्रीमथुराजी आये. ... तब श्रीगिरिधरजी कृष्णदासकों लेके परासोलीमें पधारे.

उक्त प्रसङ्गमें वर्णित श्रीगिरिधरजीकी सूझ-बूझ, पिताकी छे मास लंबी अनुपस्थितिमें अकेले ही घर-परिवार-सेवाक्रमको संभालना, राज्याधिकारीके साथ कुशलता पूर्वक वार्तालाप करना और घोड़ेपर सवारी करके रात्रिके समय गोकुलसे परासोली जाना, परासोलीसे मथुरा जाना और पुनः मथुरासे कृष्णदास अधिकारीको लेकर परासोली आना इत्यादि वर्णनसे यह प्रतीत होता है कि उस समय श्रीगिरिधरजीकी वय कमसे कम १४-१५ वर्षकी होनी ही चाहिये. स्मर्तव्य है कि श्रीपुरुषोत्तमजी (जन्म वि.सं. १५८७) वयमें श्रीगिरिधरजी (जन्म वि.सं. १५९७) सें १० वर्ष ज्येष्ठ थे. इससे अनुमान होता है कि श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंको हुवे विप्रयोगके समय श्रीपुरुषोत्तमजी कमसे कम २४-२५ वर्षके रहे होंगे. अतएव कहा जा सकता है कि उक्त घटना वि.सं.१६१२ के आस-पासकी होनी चाहिये. तदनुसार श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंका तिरोधान भी वि.सं. १६०६ के स्थानपर वि.सं. १६१२ के पूर्व हुवा होना चाहिये.

इस चर्चाके उपसंहारतया उक्त सन्दर्भमें भावी इतिहास अन्वेषकोंकेलिये कुछ महत्वपूर्ण विषयोंका यहां उल्लेख कर देना आवश्यक लगता है.

वि.सं. १९९४ में श्रीकण्ठमणि शास्त्रीने एवं वि.सं. २०२३ में श्रीद्वारकादास परीखने उस समय उपलब्ध प्रमाणोंके आधारपर श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीपुरुषोत्तमजी के जीवनचरित्र लिखा था. इन्हीं दो लेखकोंद्वारा लिखित पुस्तकोंको और उन्ही प्रमाणोंको आधार बनाकर वि.सं. २०२९ में श्रीप्रेमलाल गो. मेवचाने गुजरातीमें तद्विषयक जीवनचरित्र लिखा था. इन दो आचार्योंसे सम्बन्धित इतिहासको एक नूतन और निर्णायक दृष्टि प्रदान कर सकनेवाले प्रमाणका प्रकाशन वि.सं. २०२९ में “...श्रीवल्लभाचार्यजी तथा आपश्रीके वंशजोंकी श्रीजगदीशकी यात्राएं” नामक पुस्तकको छपाकर श्रीबालकृष्ण शुद्धाद्वैत महासभा, सुरत, ने किया. प्रकाशकोंके अनुसार इस पुस्तकमें उडिया लिपिमें लिखित ४५० वर्ष प्राचीन उन ताड़पत्रोंका हिन्दी-अंग्रेजी भाषानुवाद सहित प्रकाशन किया गया है कि जिनमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य, श्रीगोपीनाथप्रभुचरण, श्रीपुरुषोत्तमजी एवं श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणों की जगदीश यात्राका वृत्तान्त उद्धृष्टिकृत है. इसे उडिया भाषामें ‘मदलापञ्जि’ कहते हैं. यह पञ्जिका वहांके गजपति राजाके आदेशसे लिखी जाती विज़िटर्स बुक है. इसमें तत्कालीन राजाके राज्यशासनका वर्ष तथा

कहीं-कहीं शकाब्द का भी उल्लेख किया गया है. साथ ही साथ तत्कालीन प्रसिद्ध सन्त-महन्त और आचार्यों का भी उल्लेख उसमें प्राप्त होता है. श्रीगोपी.प्रभु. एवं श्रीपुरुषोत्तमजी की जगदीशयात्राका वर्णन करनेवाले ताड़पत्रोंमें लिखित तत्कालीन गजपति राजाके शासन वर्ष, शकाब्द, शास्त्रार्थ, सन्त-महन्तोंका आगमन, भीषण अकाल आदि उल्लेखों एवं घटनाओं की तुलना सुविनिश्चित ऐतिहासिक तारीखोंको बतलानेवाले तत्स्थानीय किसी इतिहासग्रन्थके साथ एवं स्वसम्प्रदायके भी इतिहास ग्रन्थोंके साथ करके संवत्तोंकी पुनसमीक्षा एवं अनुमानोंको अधिक सटीक बनाना चाहिये. एवञ्च उडिसाके पूर्व शासकोंके, जगन्नाथ मन्दिरके एवं वर्तमान प्रशासनके सङ्ग्रहालयोंमें सङ्ग्रहीत प्राचीन ग्रन्थसाहित्यसे इस विषयके संशोधनमें अच्छी सहायता मिल सकती है.

सम्प्रदायके इतिहासके अन्य भी सभी पक्षों यथा व्यक्ति, स्थान, संवत्, घटना आदिके विषयमें भी भावी इतिहास अन्वेषकोंको उपर्युक्त दृष्टिसे पुनः प्रयास करना चाहिये.

उदाहरणतया श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंको हुवे विप्रयोगसे पूर्व घटित बङ्गालियोंके निष्कासनकी घटनाके सन्दर्भमें ही तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय तो- ८४ वैष्णववार्ता यह कहती है कि अकबरके शासनमें उच्चपदासीन राजा टोडरमल और बीरबल की सहायता लेकर कृष्णदास अधिकारीने बङ्गालियोंको श्रीनाथजीकी सेवामेंसे दूर किया था. श्रीद्वार. परीखके मतानुसार यह घटना वि.सं.१६०७ में घटित हुई थी जब कि श्रीकं. शास्त्रीके मतानुसार वि.सं.१५९० में.

ध्यातव्य है कि मुगल इतिहासके अनुसार अकबर राजा बना था वि.सं.१६१३ (इ.स.१५५६) में. इस स्थितिमें उपर्युक्त घटना वि.सं. १५९० में अथवा वि.सं. १६०७ में कैसे घटित हो सकती है? क्यों कि उक्त दोनों कालमें अकबरका ही राजा होना जब सिद्ध नहीं होता है तब उसके कर्मचारी टोडरमल और बीरबल की कथा तो बहुत दूरकी बात हो जाती है. अतएव उक्त घटनाको वि.सं.१६१३ के पश्चात् ही घटित हुयी मानने पर ही ४८वै.वार्तामें आये अकबर, बीरबल, टोडरमल, आग्रा आदि व्यक्ति तथा स्थान के नामोंकी सङ्गति बैठ सकती है.

वैसे आइनेअकबरीके अनुसार राजा टोडरमल अकबरके शासनके १८वें वर्ष अर्थात् (१६१३+१८=) संवत् १६३१में उसके दरबारमें स्थान प्राप्त करसका था. इस दृष्टिसे देखा जाय तो उक्त घटना

१. दृष्टव्य “श्रीद्वारकानाथजीकी प्राकट्यवार्ता पृ. ८२

२. दृष्टव्य “कांकरोलीका इतिहास” पृ. ९८

संवत् १६३१के आस-पासकी सिद्ध होती है. श्रीहरिहरनाथ टंडन के अनुसार श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंके हितमें गोकुलमें निर्भय निवास करनेके आशयसे वि.सं. १६३४में अकबरद्वारा जारी किये गये प्रथम फरमानके आधारपर यह घटना १६३९में घटित हुयी थी. उक्त दोमेंसे किसी भी संवत्को लेकर यदि चला जाता है- और श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंके विप्रयोगकी घटना, जब श्रीपुरुषोत्तमजी विद्यमान हैं, को उक्त घटनासे उत्तरकालीन माना जाता है -तब उसके आधारपर श्रीपुरुषोत्तमजीकी जो आयु प्राप्त होती है वह अत्यन्त ही विस्मयकारी है. इस स्थितिमें श्रीपुरुषोत्तमजीकी आयु विप्रयोगकी घटनाके समय होगी १६३१/१६३४-१५८७ = ४४/४७ वर्ष !!!

मिति, मास, वार, संवत् आदिके निर्धारणमें भी पर्याप्त सावधानी

अपेक्षित होती है. यथा, जगन्नाथपुरिके कृष्णदास गुच्छिकार को कुलके तीर्थपुरोहितके रूपमें नियुक्त करते हुवे श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंने जो वृत्तिपत्र लिख दिया था उसमें तत्कालीन शकाब्दका उल्लेख “ख-रस-श्रुति-भू” लिखकर किया गया है. इसके अनुसार श्रीकं. शास्त्रीसे लेकर श्रीप्रेमलाल मेवचा पर्यन्त इतिहासविद् १४६० शलिवाहनशक अर्थात् वि.सं. १५९५ मानते हैं. किन्तु ‘रस’ शब्दका अर्थ आस्वाद्य षड्रस न लेकर नाट्यशास्त्रीय “शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः, बीभत्साद्भुतसञ्ज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसा रसाः स्मृताः” के अनुसार अष्टविध रस माना जाय तो इस अर्थान्तरसे श्रीगोपी.प्रभु.की जगदीश यात्रा शक १४८० अर्थात् वि.सं. १६१५ की सिद्ध होती है. अर्थात् आपकी भूतलपर स्थिति २० वर्ष अधिक बढ़ जाती है यदि इसके सामने कोई बाधक

प्रमाण न हों और अन्य साधक प्रबल प्रमाणसे इसका समर्थन किया जा सकता हो तो.

मिति, मास आदिसे सम्बन्धित समस्याओंको सुलझानेकेलिये और निर्धारित मित्यादिकी यथार्थता अथवा अयथार्थता का प्रामाणाधारित स्पष्टिकरण प्राप्त करनेकेलिये तीर्थपुरोहितोंको प्रदत्त वृत्तिपत्र, स्वजनोंको लिखित पत्र, ताम्रपत्र, जन्मकुण्डली, ग्रन्थोंकी इतिश्री आदि और ऐसे ही अन्य भी स्थानोंसे सुनिश्चित मित्यादिका सङ्कलन करना चाहिये. जिन घटनाकी सुनिश्चित मिति साम्प्रदायिक लेखनमें उपलब्ध होती न हो उनकी खोज अन्य इतिहासग्रन्थोंके अवलोकनद्वारा करनी चाहिये. यथा-

श्रीगुसाईजीद्वारा श्रीकृष्णदासादिको लिखित एक पत्रमें श्रीगोपी.प्र.की पुत्री श्रीसत्यभामा बेटीजीके विवाहका उल्लेख प्राप्त होता है.

स्वस्ति श्रीमच्छ्रीगोवर्द्धनोद्धरणधारिचरणसेवकेषु श्रीकृष्णदास ... प्रभृतिषु विट्ठलानां कुशलवार्ताभिज्ञापकोऽयं लेखः. भद्रमिह भावत्कमाशास्महे. गृहोपविष्टं भगवति अहम् आगच्छन् स्थितः तदा सत्यभामायाः विवाहवार्तापस्थिता. तेन आगमनम् अधुनैव नाभूत्. माघे यदि विवाहो भविष्यति तदा तदनन्तरं भाव्यं चेद् भविष्यति मया आगन्तव्यम्. ...

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंमेंसे अचंभित कर देनेवाले ऐतिहासिक तथ्य कभी प्रकट हो जाते हैं. यथा, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके साक्षात् शिष्य गोधरा निवासी श्रीराणाव्यासने श्रीभागवत सुबोधिनीकी प्रतिलिपि श्रीगोपीनाथजीकेलिये करनेका उल्लेख खुदने स्वलिखित सुबोधिनीकी इतिश्रीकी कारिकाओंमें किया है:

गोपीनाथमहाराजो भगवान् भगवत्तमः

तदाश्रयेऽस्मद्दृष्ट्या तत्प्रसादात् तदात्मना।।

तदीयानां तदर्थार्थं तदेकशरणार्थिना

व्यासवल्लभशिष्येण व्यासराणेन लेखिता।।

उपर्युक्त सम्बन्धमें प्रसङ्गवश यहां एक स्पष्टीकरण कर देना अत्यावश्यक

लगता है जिससे कि भावी शोधकर्ता गत कुछ वर्षोंसे चली आती भ्रमकी परम्पराको और अधिक आगे न बढ़ाये. उपर्युक्त दो कारिकाएं जिस हस्तलिखित प्रतिमें हमें उपलब्ध होती हैं वह गुजरातके वडोदरा जिलेके संखेडा गांवमें स्थित 'वल्लभ मंदिर' नामक स्थानमें रखी हुई है ऐसा सुना है. इस प्रतिको सम्प्रदायका एक बहुत बड़ा वर्ग, ऐतिहासिक तथ्योंकी पूर्णरूपसे उपेक्षा करते हुवे, श्रीराणाव्यास लिखित मानता है. वस्तुतः उक्त हस्तलिखित प्रति श्रीराणाव्यासद्वारा श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंकेलिये तैयार की हुई सुबोधिनीकी प्रतिलिपिके कुछ अंशकी प्रतिलिपि मात्र है, उक्त प्रतिके हस्ताक्षर श्रीराणाव्यासके सर्वथा नहीं हैं. इसके कारण इस प्रकार हैं:

१. संखेडा स्थित उक्त हस्तलिखित प्रतिके प्रथमस्कन्धकी समाप्तिमें उसके लिपिकका नाम और लेखन समाप्तिकी संवत् इस प्रकार प्राप्त होते हैं : "लिखितमिदं पुस्तकं ब्रजनाथेन संवत् १७५६ वर्षे फाल्गुनवादि १ प्रतिपदि शुक्रे". इससे सिद्ध होता है कि प्रथम स्कन्धकी सुबोधिनीकी प्रतिलिपि किसी 'ब्रजनाथ' नामक व्यक्तिद्वारा की गई है न कि श्रीराणाव्यासद्वारा.
२. उक्त हस्तलिखित प्रतिके द्वितीयस्कन्धके पञ्चमाध्यायकी इतिश्रीमें लेखन सम्पन्न होनेकी मितिका उल्लेख इस प्रकार मिलता है : "संवत् १७५८ वर्षे ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे प्रतिपदि रविवासरे समाप्तोऽयं द्वितीयस्कन्धः". इस प्रतिमें लिपिकका नामोल्लेख तो प्राप्त नहीं होता है किन्तु लिपिकाल संवत् १७५८ को देखकर कहा जा सकता है कि किसी भी हालतमें वह श्रीराणाव्यास लिखित नहीं हो सकती है. ध्यातव्य है कि इस प्रतिके हस्ताक्षर प्रथमस्कन्धकी प्रतिके हस्ताक्षरोंसे अत्यधिक साम्य रखते हैं. इस स्कन्धके छठे अध्यायसे लेकर समाप्ति पर्यन्तके अध्यायोंके हस्ताक्षर वही हैं कि जो दशमस्कन्धवाली प्रतिके हैं.
३. उक्त हस्तलिखित प्रतिके तृतीयस्कन्धकी समाप्तिमें उसके लिपिकका नाम और संवत् इस प्रकार लिखे हुवे हैं : "लिखितमिदं पुस्तकं बलरामभट्टेन संवत्

१७६२ वर्षे श्रावणशुद्धतृतीयायाम्". उपर्युक्त ही हेतुओंसे इस प्रतिका भी श्रीराणाव्यास लिखित होना सिद्ध नहीं होता है.

४. उक्त हस्तलिखित प्रतिके दशमस्कन्ध पूर्वार्धकी समाप्तिमें उसके लेखन समाप्तिकी संवत् १७०४ लिखी मिलती है. पुनः उपर्युक्त ही हेतुओंसे इस प्रतिका भी श्रीराणाव्यास लिखित होना सिद्ध नहीं होता है. इन्हीं हस्ताक्षरोंमें लिखित दशमस्कन्ध उत्तरार्धकी समाप्तिमें श्रीराणाव्यासविरचित मङ्गलसमापनके वो दो श्लोक उपलब्ध होते हैं जिसमें उन्होंने सुबोधिनीकी प्रतिलिपि श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंकेलिये करनेकी बात लिखी है.

मित्यादिके निर्धारणकी ही तरह ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्व रखनेवाले स्थानोंके विषयमें भी पुनः अन्वेषण करना अपेक्षित लगता है.

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके प्राकट्यस्थानके विषयमें श्रीहरिहरनाथ टंडन "वार्तासाहित्य एक बृहद् अध्ययन" नामक शोधग्रन्थमें लिखते हैं:

भौगोलिक दृष्टिसे सबसे महत्वपूर्ण स्थान जो वार्ताओंमें आता है, वह है श्रीमहाप्रभुजीका जन्म-स्थान 'चम्पारण्य'. इसकी वास्तविक स्थितिके सम्बन्धमें हिन्दीके विद्वानोंमें मतभेद है और भ्रम भी. ... चौड़ा नगर जिसे चम्पारण्यके समीप मध्यप्रदेशमें ही होना चाहिये उसकी स्थितिका आज ठीक पता नहीं लगता है. मध्यप्रदेशके भूगोल विशारदोंसे भी मुझे इसका पता नहीं चल सका है. (पृ. ६०६-६०७)

श्रीटंडनका उक्त कथन गो. श्रीद्वारकेशजी विरचित 'मूलपुरुष'की "कल्लुक दिन रहीके चले सब दक्षिण ... चम्पारण्य महीं जब आये, एल्लमागारु गर्भ स्रवित जताये, स्राव जानि चले तहां ते नगर चौडामें सबे ... चेन हे सुनि चले काशी" इस पंक्तिमें महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके जन्मस्थान चम्पारण्यके समीप चौडानगरके होनेका जो वर्णन आया है उसका कुछ भी अता-पता वर्तमानमें रायपुर निकट स्थित महाप्रभुके कथित जन्मस्थान चापाझर/चम्पारण्यके आस-पास कहीं मिलता नहीं है उस विषयमें है.

इसी सन्दर्भमें सम्प्रदायके एक और इतिहास ग्रन्थ 'सम्प्रदायकल्पद्रुम'के :

“जात सु चम्पारण्य मधि भीमारथीतट पास,
गर्भ गिरयो मुनि मासको पूरण मुनिथल आस”

इस वचनमें महाप्रभुके जन्मस्थल चम्पारण्यको भीमारथी नदीके तटपर बताया गया है. यह भीमारथी नदी वर्तमानमें छत्तीसगढ राज्यके रायपुर निकट स्थित महाप्रभुके कथित जन्मस्थान चांपाझर/चम्पारण्यसे लगभग १०००कि.मी. दूर पूणे जिलेके ‘भीमशङ्कर’ नामक स्थानसे बहती है. वहांसे निकलकर, पंढरपुर होकर अन्तमें कर्णाटककी कृष्णा नदीके साथ उसका सङ्गम होता है.

‘मूलपुरुष’ और ‘सम्प्रदायकल्पद्रुम’ के उर्युक्त दो वचनोंमें निरूपित भौगोलिक वर्णनकी तुलना वर्तमानमें छत्तीसगढ राज्यके रायपुर निकट स्थित महाप्रभुके कथित जन्मस्थान चांपाझर/चम्पारण्यकी भौगोलिक स्थितिके साथ करने पर दो भौगोलिक विसङ्गितियां उभरकर सामने आती हैं. सम्प्रदायके शोधकर्ताओंको बहुजन-समाजकी “आगेसे चलि आती है” वाली गतानुगतिक मनोवृत्तिका परित्याग करके कोरी श्रद्धा, कल्पना, स्वरुचि, स्थापित हित आदिको एक ओर रखकर इस दिशामें प्रमाणमूलक सघन शोधकार्य करना चाहिये. एतदर्थ पुराने नकशे, सरकारी गेझेटियर्स, प्रादेशिक इतिहास ग्रन्थ, जमीन सम्बन्धि दस्तावेज, शिलालेख आदिका अध्ययन भी करना चाहिये.

इसी तरह श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंके प्राकट्यस्थलके विषयमें भी सम्प्रदायमें वैमत्य दिखलाई देता है. “१२० वचनामृत”कार श्रीगिरिधरलालजी ६७वें वचनामृतमें आज्ञा करते हैं:

और आश्विन वदी १२ को बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजीको प्रागट्य श्रीआचार्यजी महाप्रभुनकें भयो. सो श्रीगोपीनाथजीको प्रागट्य गुजरात सिकन्दरपुरमें भयो. तासों उत्सव उहांही प्रसिद्ध है.

वार्ता साहित्य, किन्तु, उक्त अभिप्रायसे सम्मत नहीं है. वार्ता साहित्यके अनुसार श्रीगोपीनाथजीका प्राकट्य अडेलमें हुवा था. यही उचित भी लगता है.

उल्लिखित विवेचनसे यह स्पष्ट होता है कि सम्प्रदायके इतिहासका निरूपण करनेवाले ग्रन्थ, उनमें वर्णित घटनाएं, घटनाओंका समय, उनका स्थान, घटनाओंसे सम्बन्धित व्यक्ति आदि अनेक ऐसे क्षेत्र हैं कि जो सुव्यवस्थित अध्ययन, परीक्षण एवं संशोधन की भी अपेक्षा रखते हैं. उचित तो यह है कि इस और ऐसे ही अन्य भी साम्प्रदायिक कार्यकैलिये सर्वविध आधुनिक सुविधाओंसे परिपूर्ण संशोधन केन्द्र हो. जैसे अपने घरकी सफाई, मरम्मत, सुशोभन, सुविधाओंका विस्तार आदि कार्य गृहस्वामी स्वयं ही करता है, कोई दूसरा नहीं, उसी तरह सम्प्रदायके सन्दर्भमें भी सोचा जाय तो उसकी परम्परा, साधनापद्धति, संस्था, सिद्धान्त, मार्गदर्शक, अनुगामी आदि अङ्गोंमें प्रविष्ट दूषणोंकी सफाई; सम्प्रदायके जर्जरित पूर्वोक्त अङ्गोंका जीर्णोद्धार; सम्प्रदायके सिद्धान्त और सत्परम्परा से प्रतिकूल न हो और जिससे सम्प्रदायके गौरवमें अभिवृद्धि होती हो ऐसे उपायोंसे सम्प्रदायका सुशोभन; और इसी रीति-नीतिको ध्यानमें रखकर जिसकी सहायतासे सम्प्रदायके अनुगामी और अधिक सुविधापूर्ण रूपसे सम्प्रदायका अनुसरण कर ऐसी सुविधाओंका विस्तार जैसे कार्य भी सम्प्रदायके अपने ही लोगोंका ही कर्तव्य है, किसी अन्यका नहीं. उनका यही एकमेव धर्म है, अन्य सब धर्माभासमात्र हैं.

गोस्वामी शरद्

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

॥ श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण विरचित मङ्गलाचरण ॥

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखा-तिगो भवेत्॥

तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभ-नन्दनम्॥२॥

यदनुग्रहतो=जिनकी कृपासों	श्रीमद्वल्लभनन्दनम्=
जन्तुः=जीव	श्रीमहाप्रभुजीके पुत्र
सर्वदुःखातिगो=सर्व	श्रीगोपीनाथजीकों
दुःखन्कों पार करवेवारे	अहं=में
भवेत्=होय हैं	सर्वदा=सदा
तं=विन्	वन्दे=वन्दन करत हों

भावार्थ : जन्म लेयके सांसारिक दुःखन्के सागरमें डूबवे जाय रह्यो जीव जिनके अनुग्रहते सर्व दुःखन्ते बचि जात हे एसे श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुके आत्मजकों मैं सर्वदा वन्दन करत हों॥२॥

टीका : ये श्लोक श्रीविठ्ठलनाथ प्रभुचरणने अपने ज्येष्ठ बन्धु श्रीगोपीनाथ प्रभुचरणकों वन्दन करिवेकों लिख्यो हे, परन्तु आधुनिक पुष्टिजीवन्कों दोनों बन्धून्में अभेदभाव राखिके श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीविठ्ठलनाथजी एसे दोन्योन्को स्मरण करिके वन्दन करनों॥२॥

गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित मङ्गलाचरण ॥

श्रीवल्लभ-प्रतिनिधिं तेजो-राशीं दयार्णवम्।

गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथम् आश्रये॥१०॥

तेजोराशीं=तेजके भंडार

श्रीवल्लभके प्रतिनिधि

दयार्णवं=दयाके सागर

श्रीगोपीनाथम्=

गुणातीतं=गुणन्सों अतीत

श्रीगोपीनाथजीकों

गुणनिधिं=गुणन्के निधि

(अहं=में)

श्रीवल्लभप्रतिनिधिं=

आश्रये=आश्रय करुं हुं

भावार्थ : अलौकिक पुष्टिभक्तिके कमलको खिलायवेकों श्रीमहाप्रभूकी नाई श्रीगोपीनाथजीहु तेजोराशी भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड हैं. आप दयाके समुद्रहु होयवेतें भक्तिकमलकों खिलायवेकों प्रकट होयवेमेंहु आधार बनत हैं. प्राकृत गुणन्सों अतीत-अस्पृष्ट अरु अलौकिक पुष्टिभक्तिमार्गीय गुणन्के निधिरूपहु हैं. एसे विरुद्धधर्मन्के आश्रय हैं सो काहेते? तहां कहत हैं जो श्रीवल्लभके प्रतिनिधि “आत्मा वै जायते पुत्रः” होयवेतें एसे हैं. एसे श्रीगोपीनाथजीको मैं आश्रय लेत हुं॥१०॥

टीका : प्राचीन भाषासाहित्यमें कहुं-कहुं श्रीगोपीनाथजीके मर्यादामार्गीय होयवेको उल्लेख मिलत हे. परि श्रीमहाप्रभुहु तो “अङ्गीकृतौ समर्याद” हैं तातें या मर्यादाकों पुष्टिबाह्य मर्यादा न जानिके पुष्टिमार्गान्तर्भूता मर्यादा जाननी. तासों श्रीपुरुषोत्तमजीने यह स्तुतिश्लोक प्रकट कियो हे. श्रीगोपीनाथजीके विरचित ‘सेवाश्लोक’ तथा ‘साधनदीपिका’ ग्रन्थन्में पुष्टिभक्तिको निरूपण मिलत हे, कछु मर्यादाभक्तिको नाहिं. तातें अन्यथाभाव न लावनो. (श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्य‘प्रकाश’को मङ्गलाचरण श्लोक५)॥११॥

॥ एसे गोस्वामी श्रीदीक्षितात्मज श्याम मनोहर द्वारा विरचित
मङ्गलाचरणकी व्याख्या सम्पूर्ण भई ॥

॥ श्रीगोपीनाथप्रभुयश ॥

(सं. १५६७-१५६८)

गो.वा.श्रीपेमलाल गो. भेवया, पोरबंदर

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभुना ज्येष्ठ पुत्रं नाम 'श्रीगोपीनाथ'. सम्प्रदायमां ऐओश्री श्रीवल्लभना अवतार मनाय छे. ऐओश्रीनुं प्राकट्य वि.सं. १५६७ ना भादरवा वदि १२^१ ना दिवसे अडेलमां थयुं हुंतुं. ऐओश्री परम सात्त्विक, निःस्पृही अने धर्मप्राण हुता. नवलक्ष श्लोकप्रज्ञेता दशादिगन्तविजयी श्रीपुरुषोत्तम ऐओश्रीना विशे लभे छे के

श्रीवल्लभप्रतिनिधि तेजोराशि दयावाम्।

गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथमाश्रये॥

अर्थ : श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुना प्रतिनिधि तेजना भंडार, दयाना सागर, सत्त्वादिगुणो जेभने अधीन छे तेवा अने सद्गुणोना भंडार श्रीगोपीनाथनो हुं आश्रय करुं छुं.

पुष्टिमार्गना अद्वितीय प्रचारक कलानिधि श्रीविठ्ठलनाथ आपश्रीना लघु बन्धु थाय.

ऐओश्रीनो यज्ञोपवीतसंस्कार आठमे वर्षे वि.सं. १५७५ मां काशीमां सम्पन्न थयो हुतो. श्रीमहाप्रभुने आपने वैदिक विधि प्रमाणे गायत्रीमन्त्र, गोपालमन्त्र अने ब्रह्मसम्बन्ध नी दीक्षा आपी हुती. तयार पछी पितृयश श्रीमहाप्रभुना तत्त्वावधानमां ज आपश्रीनुं विद्याध्ययन थयुं हुंतुं.

नित्य ब्रह्मभूर्तमां उठी, शौच-स्नानादिथी परवारी भगवत्स्मरण करवानो श्रीगोपीनाथनो नियम हुतो. शीतकालमां ऐक दिवसे प्रातःकृत्य करीने पितृयश श्रीमहाप्रभु पासे आप पधार्या अने नमस्कार करी, हाथ जोडीने ऐओश्रीनी सम्भुषण ओभा रह्या. श्रीमहाप्रभुने ऐओश्रीने आज्ञा करी के "श्रीठाकोरने

जगाडो". आज्ञानुसार श्रीगोपीनाथने मन्दिरमां पधारी शय्यामन्दिरनां द्वार धीमेथी ओल्यां तो श्रीठाकोरने भरनिद्रामां पोढ़्या हुता. श्रीठाकोरने जगाडवा के नलि? शास्त्रानुसार श्रीठाकोरने ब्राह्मभूर्तमां जगाडवा जेठे, केमके सूर्योदय पछी निद्रा शास्त्रसम्मत नथी. आ सम्बन्धमां विचार करतां ऐओश्री पुनः पिताश्री पासे पधार्या अने "श्रीठाकोरने भरनिद्रामां छे" ऐम निवेदन कर्युं. तयारे श्रीमहाप्रभुने आज्ञा करी के "ताणी पाडीने श्रीठाकोरने जगाडो". श्रीगोपीनाथने पुनः भीतर पधारी, मानसिक प्रार्थना करी, ताणी पाडीने श्रीठाकोरने जगाड्या. पिताश्रीना वयनामृतानुसार शास्त्रभर्यादा साथे स्नेहमार्गनुं पाण सेवामां सम्पूर्णा पालन थयेलुं अनुभववी श्रीगोपीनाथने अत्यन्त प्रसन्न थया.

आचार्यने महाप्रभुना सेवक दामोदरदास सम्भरवाणाना गोलोकवास पछी ऐमनां पत्नी वीरबाईने पोताना निधिस्वप्न श्रीद्वारकाधीशने सम्पत्ति साथे कनोजथी अडेल श्रीमहाप्रभुने त्यां नावमां पधराव्या. ऐक वैष्णवे श्रीमहाप्रभुनी सम्भुषण जेठ विनती करी:"कृपानाथ! श्रीद्वारकानाथने कनोजथी वैभवसहित पधार्या छे".

ऐ वभते श्रीगोपीनाथने निकटमां ज ओभा हुता. उपरनी वधाई सांभणीने ऐओश्री हर्षविशामां ओली उठ्या:"लक्ष्मीसहित नारायण पधार्या!"

श्रीमहाप्रभुने ज्येष्ठ पुत्रना हृदयनो आशय ज्ञाणवामाटे पूछ्युं:"श्रीठाकोरने वैभव जेठने तमारुं मन प्रसन्न थयुं छे?"

पितृयशना वाक्यनो भर्म समने जतां श्रीगोपीनाथने स्पष्टता करी:"आपनो थर्धने श्रीठाकोरने वस्तुमां जे मन करशे तेनो निर्मूल नाश थशे".^३

"वाह! आपणु मार्गनो सिद्धान्त ऐवो ज छे. जे भारो वंशज अथवा वैष्णव भगवद्द्रव्यमां आसक्ति राभशे ते ज्यारेय पाण अलौकिक सुभ प्राप्त करी शकवानो नथी" श्रीआचार्ययशे कह्युं.

શ્રીગોપીનાથજીએ જ્યારે પંદર વર્ષ અડ્ડીકાર કર્યા હતાં ત્યારનો એક પ્રસંગ છે. એક દિવસે ગ્રન્થપાઠ અને ભગવચ્ચિન્તન કરતાં આપશ્રીને વિશેષ મનન-નિદ્ધ્યાસન કરવાની ઇચ્છા થઈ. આસપાસમાં જોયું તો ચોકી ઉપર પધરાવેલ શ્રીમહાપ્રભુજીના નિત્યપાઠની શ્રીમદ્ભાગવતની પોથીઉપર એઓશ્રીની દષ્ટિ સ્થિર થઈ. તરત જ એઓશ્રીએ શ્રીમદ્ભાગવતનો પાઠ કરવાનો પ્રારંભ કર્યો ત્યારથી એઓશ્રીએ એવો નિયમ રાખ્યો કે શ્રીમદ્ભાગવતનો સમ્પૂર્ણ પાઠ કર્યા પછી જ ભોજન કરવું. આ નિયમને કારણે ક્યારેક-ક્યારેક તો આપશ્રી બપોળે દિવસે પાઠ પૂર્ણ થયા પછી જ ભોજન કરતા. થોડા સમયમાં તો આપને શ્રીમદ્ભાગવત અક્ષરશઃ કણઠાગ્ર થઈ ગયું. શ્રીભાગવતપાઠના નિયમને લીધે આપને સેવામાં અવકાશ મળતો નહિ. લઘુ બન્ધુ શ્રીવિટ્ઠલનાથજી પણ જ્યેષ્ઠ બન્ધુનું અનુકરણ કરવા લાગ્યા. એક દિવસે શ્રીમહાલક્ષ્મીજી (શ્રીઅક્કાજી)એ બન્ને પુત્રોના શ્રીભાગવતના પાઠનિયમ સમ્બન્ધમાં શ્રીમહાપ્રભુજીને નિવેદન કરતાં બન્ને પુત્રોના અલૌકિક નિયમથી એઓશ્રી પ્રસન્ન થયા, પરન્તુ પુત્રોને ભોજન કરવામાં થતા વિલમ્બને કારણે શ્રીઅક્કાજીના મનોદુઃખનું નિવારણ કરવાનો વિચાર કરીને શ્રીમહાપ્રભુજીએ બન્ને પુત્રો પાસે જઈને, એઓશ્રીના પાઠનિયમને પ્રોત્સાહન આપતાં આજ્ઞા કરી:

“ભૈયા! શ્રીભાગવતપાઠના તમારા નિયમથી હું અત્યન્ત આનન્દિત થયો છું. પરન્તુ તમારા ભોજનવિલમ્બને કારણે તમારાં માતૃશ્રીને દુઃખ થાય છે તો શ્રીમદ્ભાગવતના સારસમુચ્ચયરૂપે મેં આ ‘શ્રીપુરુષોત્તમસહસ્રનામસ્તોત્ર’ ની રચના કરી છે તેનો પાઠ કરશો તો તમને સમગ્ર શ્રીભાગવતપાઠનું ફળ પ્રાપ્ત થશે. અને વિટ્ઠલમાટે આ ‘ત્રિવિધલીલાનામાવલી’ છે. તેનો પાઠ કરવાથી સમ્પૂર્ણ દશમસ્કન્ધના પાઠનું ફળ પ્રાપ્ત થશે”.

ત્યારથી શ્રીગોપીનાથજીએ પિતૃચરણની આજ્ઞાનું અનુસરણ કર્યું.

વિ.સં. ૧૫૮૨ માં કાકાશ્રી જનાર્દન ભટ્ટની આજ્ઞાનુસાર દક્ષિણના સગ્ગતીય ભટ્ટજીની કન્યા પાયમ્માગુરુજી (પ્રિયાજી)ની સાથે શ્રીગોપીનાથજીનો લગ્નપ્રસ્તાવ કાશીમાં બહુ જ ધામધૂમથી કર્યો. ત્યાર પછી સર્વ કુટુંબીજનોને સાથે લઈને શ્રીમહાપ્રભુજી વ્રજમાં પધાર્યા અને નવવધૂ પાયમ્માગુરુજીને શ્રીનાથજી સમ્મુખ બ્રહ્મસમ્બન્ધ દીક્ષા આપી.

લગ્ન પછી તરત જ વિ.સં. ૧૫૮૨ માં શ્રીગોપીનાથજી દ્વારકા યાત્રા કરવા પધાર્યા. તે વખતે એઓશ્રીએ અસારવા-અમદાવાદમાં જયકૃષ્ણ ભટ્ટ સાઠોદરા નાગરની ગૃહવાટિકામાં મુકામ કર્યો હતો. આ સમયે શ્રીહરિવંશજી આપની સાથે જ હતા. આપના પધારવાની વધાઈ સાંભળીને ભાઈલા કોઠારી, વિકુબાઈ આદિ વૈષ્ણવો દર્શનાર્થ આવ્યાં હતાં. રાત્રિના આપશ્રી પોદ્ધયા ત્યારે શ્રીમદનમોહનજી કાઠોરજીએ સ્વાખ્નદર્શન આપીને આજ્ઞા કરી કે “આ વાડીના ફૂવામાં હું છું. મને બહાર પધરાવીને મારી સેવા ચાલુ કરાવો”. સવારે ઊઠીને શ્રીગોપીનાથજીએ શ્રીમદનમોહનજીને ‘ફૂવામાંથી બહાર પધરાવી, મોટો ઉત્સવ મનાવ્યો. પછી રામદાસ સાંચોરાની વિનન્તીથી એમની ઉપર શ્રીમદનમોહનજી ઠાકોરજી અને પોતાનાં પાદુકાજી સેવામાટે પધરાવી ‘પાટોત્સવ’ મનાવ્યો. અહીંથી આપશ્રી દ્વારકા પધાર્યા અને એક માસપર્યન્ત ત્યાં બિરાજ્યા.

આચાર્યશ્રી મહાપ્રભુજી વિ.સં. ૧૫૮૭ના અષાઠ સુદિ ૨ ઉપરાન્ત ૩ ના દિવસે નિત્યલીલામાં પધાર્યા પછી આપશ્રી સમ્પ્રદાયના આચાર્યસ્થાને બિરાજ્યા.

પિતૃચરણના નિત્યલીલાપ્રવેશ પછી વિ.સં. ૧૫૮૮ ના વૈશાખ વદિ ૧ ના મહુલમય દિવસે લઘુ બન્ધુ શ્રીવિટ્ઠલનાથજીનો લગ્નપ્રસ્તાવ કાશીમાં અત્યન્ત આનન્દસમારોહથી કર્યો હતો.

શ્રીગોપીનાથજીએ વિ.સં. ૧૫૯૦ માં પૂર્વપ્રદેશની યાત્રા કરી ઘણા સેવકોને શરણે લીધા હતા. આ યાત્રામાંથી આપશ્રીને એક લાખ રૂપિયા ગુરુભેટ તરીકે આવ્યા હતા. પ્રથમ પ્રદેશની આ સેવા કુલદેવતા શ્રીનાથજીને અડ્ડીકાર કરાવવામાટે કુટુંબ સહિત આપશ્રી અડેલથી ગોપાલપુર પધાર્યા અને શ્રીનાથજીના મૂલ્યવાન અલડકારો તેમજ સોના-ચાંદીનાં પાત્રો સિદ્ધ કરાવીને સમગ્ર દ્રવ્ય નિકુન્જનાયક શ્રીનાથજીને અડ્ડીકાર કરાવ્યું. આ સમયે આપશ્રીની આજ્ઞાથી સાચોરા બ્રાહ્મણોનો શ્રીનાથજીની સેવામાં પ્રવેશ થયો હતો. અત્રે બિરાજીને આપશ્રીએ ગોપાલમન્ત્રનું પુરશ્ચરણ કર્યું હતું.

વિ.સં. ૧૫૯૫ ના વૈશાખ માસમાં શ્રીગોપીનાથજી કાશી પધાર્યા. કાશીમાં એઓશ્રીનાં બે ઘરો હતાં: ૧. હનુમાનઘાટ ઉપર અને ૨. પચ્ચગડ્ગાઘાટ ઉપર બિન્દુમાધવની પાસે. પચ્ચગડ્ગાઘાટ ઉપરનું ઘર એઓશ્રીના માતામહ (નાના) શ્રીદેવન ભટ્ટનું હતું અને હનુમાનઘાટ ઉપરનું ઘર એઓશ્રીના પિતામહ શ્રીલક્ષ્મણ ભટ્ટજીનું હતું. અહીં પધારીને એઓશ્રીએ ભક્તિનો પ્રચાર કરવા માંડ્યો. શ્રીમહાપ્રભુજીના નિકટ પરિચયમાં આવેલા સાધુ-માહાત્માઓનો નિત્ય સમાગમ કરતા અને એમની સાથે ભગવચ્ચર્યા કરતા. અહીં આપશ્રીએ ‘દેવીદાસ’ નામના ઉપાધ્યાયને વિ.સં. ૧૫૯૫ ના વૈશાખ સુદિ ૫ ને રવિવારે પોતાના કુળના તીર્થપુરોહિતરૂપે સ્વીકારી એમને પત્ર લખી આપ્યો.

કાશીથી શ્રીગોપીનાથજી પોતાના પ્રિય સ્થાન શ્રીજગન્નાથપુરી પધાર્યા. પિતૃચરણ શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્ય મહાપ્રભુજીએ અહીંના બ્રાહ્મણ કૃષ્ણસેવક ગુચ્છિકારને વિ.સં. ૧૫૪૫ માં તીર્થપુરોહિતપદે સ્થાપ્યા હતા એનું અનુકરણ કરીને વિ.સં. ૧૫૯૫ ના વૈશાખ વદિ ૩૦ ના દિને શ્રીગોપીનાથજીએ પણ એક વૃત્તિપત્ર તેમને લખી આપ્યું. આ વર્ષમાં જ આપશ્રીએ લઘુબન્ધુ શ્રીવિટ્ઠલનાથજીને સાથે લઈને જ્ઞાપત્ર કરી હતી.

અડેલથી એક વાર શ્રીગોપીનાથજી આગરા પધાર્યા હતા. તે વખતે એક વૈષ્ણવે શ્રીગુસાંઈજીની ભેટની સો સોનામહોર આપશ્રીને આપી. એવામાં સિંહનદથી શ્રીમહાપ્રભુજીના સેવક વાસુદેવદાસ છકડા ત્યાં આવી પહોંચ્યા, ત્યારે શ્રીગોપીનાથજીએ બધા વૈષ્ણવોને ઉદ્દેશીને કહ્યું: “તમારામાંથી એવા કોઈ વૈષ્ણવ છે કે આ ભેટ આવેલી સો સોનામહોર અડેલમાં શ્રીવિટ્ઠલનાથજીને પહોંચાડે?”

આ સાંભળીને વાસુદેવદાસ છકડાએ સમ્મુખ આવી, હાથ જોડીને વિનવતી કરી: “મહારાજ! આપ આજ્ઞા કરો તો એ સેવા આ દાસ કરી આપશે”.

એટલે શ્રીગોપીનાથજીએ પ્રસન્ન થઈને લઘુબન્ધુ શ્રીગુસાંઈજી ઉપર એક પત્ર લખી આપ્યો, તે સાથે સો સોનામહોર પણ વાસુદેવદાસ છકડાને આપતાં આજ્ઞા કરી: “સાવધાનતાથી પહોંચાડજો”.

વાસુદેવદાસે લાખના ગોળામાં સોનામહોર મૂકીને એને ચન્દન ચડાવી, શાલિગ્રામ સ્વરૂપ બનાવી, પોતે વૈરાગીનો વેશ લઈને અડેલને માર્ગે ચાલતા થયા. ત્રીજે દિવસે અડેલ જઈ લાખમાંથી મહોરો કાઢીને શ્રીગુસાંઈજીની સમ્મુખ જઈ શ્રીગોપીનાથજીનો પત્ર તથા સો મહોર એઓશ્રીની આગળ ધરી દીધી. શ્રીગુસાંઈજીએ પત્ર વાંચી, મહોર સંભાળી લઈ, વાસુદેવદાસને મહાપ્રસાદ લેવડાવ્યો. પછી બીજે દિવસે પહોંચનો પત્ર લખીને શ્રીગુસાંઈજીએ એમને આપ્યો. પત્ર લઈને ત્રીજે દિવસે વાસુદેવદાસ અડેલથી આગરા આવી પહોંચ્યા. શ્રીગોપીનાથજીને શ્રીગુસાંઈજીનો પત્ર આપ્યો. પત્ર વાંચીને આપશ્રી વાસુદેવદાસ ઉપર અત્યન્ત પ્રસન્ન થયા અને પૂછ્યું: “વાસુદેવદાસ! એવા વિકટ માર્ગે સોનામહોરો તમે કેવી રીતે પહોંચાડી શક્યા?”

એટલે એમણે, શાલિગ્રામ જેવો લાખનો ગોળો બનાવી, એમાં સોનામહોરો ભરીને, વૈરાગીના વેષે એનું પૂજન કરતાં-કરતાં અડેલ સોનામહોરો પહોંચાડી આવવાની વાત વિગતવાર કહી. આથી શ્રીગોપીનાથજીએ દુ:ખ અનુભવતાં વાસુદેવદાસને કહ્યું: “વાસુદેવદાસ! તમે અડેલ સોનામહોર પહોંચાડી તેથી મને તમારી સેવામાટે પ્રસન્નતા થઈ છે; પરન્તુ તમે જે પ્રકારે સોનામહોર લઈ ગયા, તે આપણા ભક્તિમાર્ગની રીત નથી. એક વસ્તુમાં ભગવત્સ્વરૂપની ભાવના કર્યા પછી એને ભાંગી નાખવું એ ઇષ્ટ નથી, એમાં વૈષ્ણવતા નથી”.

“પણ મહારાજ! મેં એ સ્વરૂપની પ્રતિષ્ઠા નહોતી કરાવી” વાસુદેવદાસે કહ્યું.

“તેથી શું થયું? એમાં સ્વરૂપભાવ તો કર્યો હતો ને? ભગવત્સ્વરૂપને વ્યાજે લૌકિકકાર્ય કરવું યોગ્ય ન ગણાય”. શ્રીગોપીનાથજીએ ભગવન્માર્ગની મર્યાદા સમજાવતાં આજ્ઞા કરી.

શ્રીગોપીનાથજીને શ્રીમહાપ્રભુજીદ્વારા સ્થાપિત પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રણાલિકાની શ્રીકૃષ્ણભક્તિમાં પૂર્ણ શ્રદ્ધા હતી. આ સાથે એઓશ્રીનું જીવન વેદાદિ શાસ્ત્રોની આજ્ઞાનુસાર ઘડાયું હોવાથી એઓશ્રીને અગ્નિહોત્રાદિક વૈદિક ક્રિયાઓમાં પણ વિશેષ

આગ્રહ રહેતો. સેવા પછીનો એઓશ્રીનો સમય ગોપાલમન્ત્રાદિના અનુષ્ઠાનમાં, જપ-પાઠમાં તેમજ શાસ્ત્રોના વાચન-મનન-નિદિધ્યાસનમાં જતો.

બન્ને બન્ધુઓ, શ્રીગોપીનાથજી તથા અનુજ શ્રીવિટ્ઠલનાથજી, વચ્ચે ભ્રાતૃભાવના તેમજ કુટુંબ ભાવના ઉત્તમ હતી. શ્રીગોપીનાથજી ગોપાલપુર, શ્રીજગન્નાથજી કે તીર્થયાત્રા માં પધાર્યા હોય તો શ્રીવિટ્ઠલનાથજી અડેલ બિરાજી ગૃહ-કુટુંબની સંભાળ રાખતા અને શ્રીવિટ્ઠલનાથજી બહાર પધારે તો શ્રીગોપીનાથજી અડેલ બિરાજતા.

શ્રીગોપીનાથજીએ પણ પોતાના વન્દનીય પૂર્વજોની વૈદિક પરમ્પરાનું અનુસરણ કરતાં વિ.સં. ૧૫૯૫ ની જગદીશયાત્રા પછી એક સોમયજ્ઞ અને ત્યાર પછી વિષ્ણુયજ્ઞઃઘટ્ઠઃઞ કર્યો હતો.

વિ.સં. ૧૫૯૯ માં શ્રીગોપીનાથજી જગદીશપુરી પધાર્યા. માતૃશ્રીની આજ્ઞાથી એઓશ્રીની સાથે રાઘવદાસઃઘ૧૦ઃઞ નામના વૈષ્ણવ ગયા હતા. એક દિવસે મન્દિરનાં દ્વાર ખૂલ્યાં અને શ્રીગોપીનાથજી દર્શન કરતાં-કરતાં “જગન્નાથ! જગન્નાથ!” એમ બોલતાં બોલતાં શ્રીજગન્નાથરાયજીના શ્રીવિગ્રહમાં લીન થઈ ગયા.ઃઘ૧૧ઃઞ

બત્રીશ વર્ષ સુધી આપ ભૂતલ ઉપર બિરાજ્યા.

આપશ્રીને એક પુત્ર અને બે પુત્રીઓ મળીને ત્રણ સન્તાનો થયાં હતાં:૧.શ્રીપુરુષોત્તમજી (પ્રાકટ્ય વિ.સં. ૧૫૮૭ ના ભાદરવા વદિ ૮) ૨.સત્યભામા બેટીજી અને ૩.શ્રીલક્ષ્મી બેટીજી.

શ્રીપુરુષોત્તમજી

(પ્રાકટ્ય: વિ.સં.૧૫૮૭ તિરોધાન:વિ.સં.૧૬૦૫)

શ્રીગોપીનાથજી નિત્યલીલામાં પધાર્યા ત્યારે એઓશ્રીના પુત્ર શ્રીપુરુષોત્તમજી બાર વર્ષના હતા. એઓશ્રી પણ પિતૃચરણ શ્રીગોપીનાથજીની જેમ સૌમ્ય અને સાત્વિક પ્રકૃતિના હતા. આપ ખુબ અલ્પ કાલ પર્યન્ત ભૂતલ ઉપર પ્રકટ બિરાજ્યા.

શ્રીગોપીનાથજીના નિત્યલીલસ્થ તથા પછી શ્રીગુસાંઈજીએ શ્રીગોપીનાથજીના બન્ને પુત્રીઓનું પોતાનાં સન્તાનથી પણ અધિક લાલન-પાલન કર્યું.

આ બન્ને બેટીજી બાલવિધવા હતાં. કાકાજીના ગૃહની પ્રણાલિકા પ્રમાણે એઓશ્રી અહર્નિશ ગુણગાન અને ભગવત્સેવાપરાયણ રહેતાં.

શ્રીસત્યભામા બેટીજી

શ્રીસત્યભામા બેટીજી બહેનોમાં મોટાં હતાં. બન્ને બહેનો નિત્ય શ્રીનવનીતપ્રિયજીની સેવામાં સંલગ્ન રહેતાં. સત્યભામા બેટીજી એક વખત શ્રીજગદીશના દર્શનાર્થ પુરી પધાર્યાં હતાં. યાત્રા કરીને પાછાં આવતી વખત ગૌડ દેશના નારાયણદાસ નામના ભગવદીયના ભક્તિભાવભર્યા આગ્રહથી એમને ઘેર મુકામ કર્યો. નારાયણદાસના ઘર આગળ જ બન્દીખાનું હતું. જે લોકો બાદશાહના ફરમાન મુજબ કર ન ભરે તેમને આ કેદખાનામાં પૂરી ફટકા મારવામાં આવતા. ફટકાનો માર અસહ્ય લાગતાં કેદીઓ ત્રાસ પામી પોકારો કરતા. આ પોકાર સાંભળીને સત્યભામા બેટીજી કરુણાર્દ્ર થઈ ગયાં! એઓશ્રીએ વૈષ્ણવોને પૂછ્યું: “આ શું થાય છે?” વૈષ્ણવોએ કારણ બતાવતાં દયાસાગર બેટીજીએ નારાયણદાસને કહ્યું: “જ્યાં સુધી આ લોકોનું દુ:ખ દૂર નહીં થાય ત્યાં સુધી અમે ભોજન નહીં કરીએ”.

સત્યભામા બેટીજીના ઉપવાસની વાત બાદશાહ પાસે પહોંચતાં એમને એઓશ્રીની ટેકથી આશ્ચર્ય થયું! એમણે સન્દેશો મોકલ્યો કે “જો આપ ઉપવાસ છોડી દેશો તો અમે પચીસ હજાર રૂપિયા ભેટ કરીશું”. બેટીજીએ પ્રત્યુત્તરમાં કહેવડાવ્યું કે “અમારે રૂપિયાને શું કરવા છે? મનુષ્યના દુ:ખનું નિવારણ થાય એ જ અમારી ભાવના છે”.

આ ઓજસ્વી શબ્દોથી બાદશાહનું હૃદયપરિવર્તન થયું. એણે નારાયણદાસને કહ્યું:

“આવાં ત્યાગી અને દયાળુ બેટીજીનાં વચનો ન માનું તો મારું બૂરું થાય”. આમ કહીને એણે બધા કેદીઓને મુક્ત કર્યાં. આ શુભ સમાચાર મળ્યા પછીજ સત્યભામા બેટીજીએ ભોજન કર્યું.

શ્રીલક્ષ્મી બેટીજી

શ્રીલક્ષ્મી બેટીજી જેવાં ભગવત્સેવાપરાયણ હતાં તેવાં જ ભગવદ્ભક્તો પ્રત્યે મમતાવાળાં હતાં. નરવરગઢના રાજા આશકરણને વ્યસનદશા સિદ્ધ થતાં એઓ રાજપાટનો ત્યાગ કરીને વ્રજમાં વિચરતા અને ભગવચ્ચિન્તન કરતા અને ભગવલ્લીલાદર્શનમાટે વિરહભાવમાં મગ્ન રહેતા. રાજા આશકરણની આ ઉચ્ચ વ્યસનદશા જોઈ શ્રીવિટ્ઠલેશપ્રભુચરણે ધરનાં બધાને આજ્ઞા કરી હતી કે “આશકરણજી જ્યારે આવે ત્યારે ધરમાં જે પ્રસાદ હોય તે એમને લેવડાવી દેવો”.

એક દિવસે ભગવલ્લીલા ધ્યાનમાંથી જાગ્રત થઈને રાજા આશકરણજી શ્રીગોકુલમાં શ્રીગુસાંઈજીને ઘેર આવ્યા. શ્રીલક્ષ્મી બેટીજીએ જોયું તો એ વખતે ધરમાં પ્રસાદી વસ્તુ નહોતી. એઓશ્રીએ વિચાર્યું કે જો આજે આશકરણજી પ્રસાદ લીધા વિના ચાલ્યા જશે તો પાછા પાંચ-સાત દિવસે અન્ન પામશે. એઓશ્રીના હૃદયમાં ભગવત્પ્રેરણા થતાં શ્રીનવનીતપ્રિયજીના રાજભોગની જે સામગ્રી સિદ્ધ થઈ હતી તે અસમર્પિત સામગ્રીજ આશકરણજીને ધરી દીધી અને મોટાં બહેન સત્યભામાજીને બીજી સામગ્રી ત્વરાથી સિદ્ધ કરવાની વિનવતી કરી. આશકરણજી તો ભોજન કરીને ચાલતા થયા. ત્યાર પછી ફરી વાર સિદ્ધ થયેલી સામગ્રીનો શ્રીનવનીતપ્રિયજીને રાજભોગ સમર્પ્યો. શ્રીગુસાંઈજી આરતી કરતા હતા ત્યારે શ્રીનવનીતપ્રિયજીના મુખારવિન્દ ઉપર સ્મિતયુક્ત આનન્દલહરીનાં દર્શન થતાં વિનવતી કરી કે “આજે આપ આટલા બધા કેમ પ્રસન્ન છો?”

શ્રીનવનીતપ્રિયજીએ કહ્યું: “આજે હું બમણો રાજભોગ આરોગ્યો છું”. આમ કહીને રાજા આશકરણજીને શ્રીલક્ષ્મી બેટીજીએ રાજભોગની સામગ્રી ધરી દીધી એ વાત પ્રસન્નતાથી કરતાં સ્પષ્ટતા કરી કે “આશકરણજીના હૃદયમાં બિરાજીને એક વાર અને બીજી વાર પ્રત્યક્ષ ધરેલ એમ બે વાર હું આરોગ્યો છું”.

‘ધન્ય!’ શ્રીગુસાંઈજીના મુખારવિન્દથી સહસા ધન્યતાનો ઉદ્ગાર સરી પડ્યો અને નેત્રોમાં આનન્દાશ્રુની ઝલક દેખાઈ! પછી ઠાકોરજીને અનોસર કરીને શ્રીગુસાંઈજીએ શ્રીલક્ષ્મી બેટીજીને રાજભોગ સમ્બન્ધમાં પૂછતાં બેટીજીએ સંકોચપૂર્વક

સર્વ વાત કાકાજીને નિવેદિત કરતાં એઓશ્રી રોમરોમ પ્રસન્ન થયા અને કહ્યું: “બેટી! આજની તારી બમણી સેવાથી શ્રીનવનીતપ્રિયજી*૭૧૩* અત્યન્ત પ્રસન્ન થયા છે. તું ધન્ય છે”.

૬૦-૭૦ સદસ્યોવાળા વિશાળ કુટુંબમાં શ્રીલક્ષ્મી બેટીજીએ શ્રીનવનીતપ્રિયજીની આવી ભાવાત્મક સેવા દ્વારા જે દિવ્ય પ્રસન્નતા પ્રાપ્ત કરી તે અનન્ય છે. એઓશ્રીના સેવાચાતુર્યભાવની જેટલી સરાહના કરીએ તેટલી ઓછી!

શ્રીગોપીનાથજી પ્રકાણ્ડ વિદ્વાન હતા. એઓશ્રીએ અનેક ગ્રન્થોની રચના કરી હોવાનું વિદ્વાનો માને છે પરન્તુ અત્યારે એઓશ્રીના સાહિત્યમાં ૧.સાધનદીપિકા”, ૨.સેવાશ્લોકા:” ઉપલબ્ધ થાય છે. ‘સૌન્દર્યપદ્યમ્’ પણ એઓશ્રી વિરચિત “શ્રીમદ્ગોપીનાથનાં પદ્યાનિ” ની વચ્ચે આવેલો હોવાથી કેટલાક વિદ્વાનો શ્રીગોપીનાથજી વિરચિત માને છે. “શ્રીગોપીનાથજીકી નિજવાર્તા” નામક ગદ્યગ્રન્થ પણ પ્રાપ્ત થાય છે. એઓશ્રીના ગ્રન્થોનું ગુર્જર અનુવાદ સાથે પુનર્મુદ્રણ કરવાની આવશ્યકતા છે. ૧૨૭ શ્લોકોની ‘સાધનદીપિકા’ નું મડ્ગલાચરણ કેટલું ભાવવાહી છે!

તા ન: શ્રીતાતપત્પદ્મરેણવ: કામધેનવ:।

નાકસ્ય તરવોડન્યેષાં સ્યુ: કલ્પતરવો યથા।।૧।।

અર્થ: જેમ બીજાઓને સ્વર્ગના તરુઓ કલ્પવૃક્ષસમાન છે તેમ અમને તો શ્રીપિતાજીના ચરણકમલની રજ કામધેનુ સમાન થાયો.

શ્રીવિટ્ઠલનાથ ભટ્ટ” ‘મનરંજન’ કવિ એઓશ્રીની ગ્રન્થસંખ્યા ૪ બતાવે છે.

એઓશ્રીના સેવ્ય શ્રીમદ્દનમોહનલાલજી અને પાદુકાજી, અમદાવાદમાં રાજા મહેતાની પોળમાં તોડાની પોળમાં મુખિયાજી રણછોડલાલ વ્યાસની ઉપર અત્યારે બિરાજે છે.

પુન: આપશ્રીએ શ્રીપુરુષોત્તમજીસ્વરૂપે પ્રકટ થઈને સ્વમાર્ગીય સાહિત્યની વિપુલ પ્રમાણમાં રચના કરી છે. ત્યારથી સુરતમાં શ્રીબાલકૃષ્ણજીના ઘરમાં શ્રીગોપીનાથજીનો ઉત્સવ શ્રીગુસાંઈજીના ઉત્સવવત્ મનાય છે.

૧. સંવત પન્દ્રહા અહસઠ આયો આસો વદિ દ્વાદસી સુભ ગાયોઃ
ગાયો શ્રીગોપીનાથજી, જબ જન્મ લીનો આયકે” (મૂલપુરુષ)
૨. “ગુણનિધિ ગોપીનાથજી, નિર્ગુન તેજનિધાન”. (ધમાર) (માણિક્યન્દ)
૩. “ચૌરાસી વૈષ્ણવનકી વાર્તા” (પ્ર. વિદ્યાવિભાગ, કાંકરોડી)
૪. શ્રી દ્વા. કી પ્રા. વાર્તા (અમરેલી) ના સમ્પાદક શ્રીદ્વારકાદાસ પરીખ આ યાત્રા સં.
૧૫૮૫માં થઈ હોવાનું લખે છે.

૫. આ સ્વરૂપ અમદાવાદ-રાજામહેતાની પોળમાં બિરાજે છે.
૬. સંવત્ ૧૫૮૨ વર્ષે શ્રીગોપીનાથજી દ્વારિકાયાત્રાર્થે રાજનગરે સમાગતાઃ શકંદરપુરે
ભટ્ટ-જયકૃષ્ણ-સાઠોદરા-નાગરસ્ય ગુહે વાટિકા વર્તતે તત્રૈવ સ્થિતિઃ કૃતા. તદૈવ
શ્રીમદનમોહનસ્ય પ્રાકટ્યં કૃતમ્. પટ્ટાભિષેકીપિ કૃતઃ. હરિવંશઃ સુડગેસ્તિ. કોઠારી
ભાઈલા ભાઈ વીકૂ ભાઈ સોના પ્રભૂતિસેવકાનાં સભાયાં દર્શનં દત્તમ્. તતઃ
દ્વારિકાપ્રવેશઃ કૃતઃ. માસ ૧ દ્વારિકાસ્થિતિઃ કૃતા.

-મનુજવ્યાજપ્રકટપુરુષોત્તમવલ્લભવિટ્ઠલયોઃ પૂર્વચરિતલીલા (હસ્તપ્રત)

૭. શ્રીહરિઃ
સંવત્ ૧૫૯૫ વૈશાખ સુદિ પચ્ચમી વાર રવિઃ લિખિતં શ્રીગોપીનાથ-
શ્રીવલ્લભાચાર્યપુત્રૈઃ શ્રીલક્ષ્મણાચાર્યપૌત્રૈઃ તૈલડગ-કાંકરવાલ્લુ-સંજ્ઞૈઃ વારાણસીમ્
આગતૈઃ તીર્થપુરોહિતત્વેન ઉપાધ્યાય-દેવીદાસઃ સમ્માનિતો અસ્માભિર્
અસ્મદીયૈઃ સર્વૈસ્ તથા સમ્માનનીયઃ સમ્માનનીયઃ||છ||

શ્રીગોપીજનવલ્લભો જયતિ

એકં શાસ્ત્રં દેવકીપુત્રગીતમ્ એકો દેવો દેવકીપુત્રએવા
મન્ત્રોડપ્યેકસ્તસ્ય નામાનિ યાનિ, કર્મોડ્યેકસ્તસ્ય દેવસ્ય સેવા||૧||

ઇતિ શ્રીજગદીશેન મહાપ્રભુકૃતે સ્વયમ્
લિખિતં પદ્યમેતદ્ધિ માયાવાદનિવૃત્તયે||૨||
અહિંમુખો યદા નૈવમેને વિદ્વજ્જનાતિગઃ|
પત્રં નિરૂપ્યતાં ભૂયઃ પ્રાહૈનં કૃષ્ણસેવકઃ||
તદા શ્રીવલ્લભાઃ પ્રોચુઃ વયં નાગ્રહવાદિનઃ|
ત્વન્નઃ પુરોહિતઃ સાક્ષી યથેચ્છસિ તથા કુરુ||૪||
ગુચ્છિકારસ્તદા તસ્ય પ્રત્યયાર્થં હરેઃ પુરઃ|
પત્રં સંસ્થાપયામાસમસીપાત્રં ચ લેખનીમ્||૫||
યઃ પુમાન્ પિતરં દ્વેષ્ટિ તં વિદ્યાદ્ અન્યરેતસમ્|
યઃ પુમાનીશ્વરં દ્વેષ્ટિ તં વિદ્યાદ્ અન્યજ્ઞોદ્ધવમ્|
ભૂયોપિ જગદીશેન પત્રે વિલિખિતં ત્વિદમ્|
તદા અહિંમુખો ધ્વસ્તઃ તથા જ્ઞાતશ્ચ સજ્જનૈઃ||૭||
ઇતિ શ્રુત્વૈવ સદ્વાર્તાં કૃષ્ણસેવકપણ્ડિતમ્|
શ્રીવલ્લભાત્મજ્ઞો ગોપીનાથો મન્યે તથા હ્યમુમ્||૮||

ખ રસ શ્રુતિ ભૂ (૧૪૮૦) સડખ્યે માસમાને શકેશ્વરાત્|
લિખિતં માધવામાયાં પૂર્વેષાં સમ્મતં દલમ્||૯||

“આન્દ્રદેશીયદીક્ષિતવલ્લભાચાર્યેણે સ્વપૂર્વપુરુષ-સોમયાજિ-ગડ્ગાધરદીક્ષિતાનાં
સમ્માનિતઃ શ્રીમત્પુરુષોત્તમક્ષેત્રે શ્રીજગન્નાથ-સપર્યા-કુશલઃ ગુચ્છિકાર-
કૃષ્ણસેવકાખ્ય-સેવાપણ્ડિતઃ, સોમયાજિ-ગડ્ગાધર-દીક્ષિતાનાં સ્વપૂર્વપુરુષાણાં
સમ્માનિતઇતિ સ્વકીયૈર્ અવધાર્ય વિષ્ણુપદ્મેન્દુશ્રુતિધરાશકે (૧૪૧૦) સમાગતેન
વલ્લભદીક્ષિતેન વૃત્તિદલં નિરૂપિતં, શ્રીવલ્લભાચાર્ય-મહાપ્રભુવંશસમ્ભૂતૈઃ
કૃષ્ણસેવકવંશીયાઃ સમ્માન્યાઃ. લિખિતં દલમિદં ખ-રસ-શ્રુતિ-ભૂમિતે (૧૪૬૦)
શાલિવાહનશકે વૈશાખકૃષ્ણમાદિને”. (કાંકરોડીકા ઇતિહાસ પૃ. ૨૬)

૮. “વાર્તા સાહિત્ય” (પૃ. ૬૧૧)
૯. સોમયજ્ઞ વિધિવત કરે, ગોપીનાથ પ્રવીના
બહુર આય ગોપાલપુર, વિષ્ણુયજ્ઞ નૃપ કીના||૪૭||
(સમ્પ્રદાયકલ્પદ્રુમ (પૃ. ૫૯)
૧૦. “રાધવદાસ જગન્નાથ ગયા, ગોપીનાથજીને સડગઃ
શોક કારણ ફરીયન આવ્યા, શ્રીઅક્કાજીને પ્રસડગ” (૨૭)
(પ્રાકટ્યસિદ્ધાન્ત (માડગલ્ય ચોથું)
૧૧. “તતઃ ક્રિયતા કાલેન જ્ઞપ્થેષ્ઠપુત્રો ગોપીનાથઃ પુરુષોત્તમમાઘ સ્વરૂપમવાપ”.
(સમ્પ્રદાયપ્રદીપઃ)

૧૨. શ્રી. દ્વા. કી પ્રા. વાર્તા (અમરેલી) (શ્રી. દ્વા. પરીખ)
૧૩. લક્ષ્મી સત્યભામા બેઉ, અગ્રજની અનુહર રે,
શ્રીનવનીતપ્રિયજીને રીઝવ્યા, સેવ્યા વિવિધ પ્રકાર રે...રસના
(શ્રીવલ્લભાખ્યાન)
૧૪. ‘પુષ્ટિભક્તસુધા’ માસિક, વર્ષ ૬, અંક ૭-૮)
૧૫. ‘પુષ્ટિમાર્ગનાં ૫૦૦ વર્ષ’ (ભાગ-૨, પૃ. ૨)
૧૬. લેખકના પ્રાચીન હસ્તસડગ્રહમાં છે.
૧૭. બડેજી ગોપીનાથ કૃત, ચાર ગ્રન્થ નૃપ માના
પ્રથમ જી ‘સાધનદીપિકા’, ‘સેવાવિધિ’ સુખદાના||૩૭||
‘સજ્ઞાનામનિરૂપણ’ અરુ, “ગોપીજન સુખદાન”|
‘વલ્લભાષ્ટક’ ગ્રન્થ ક્રિયે, ગોપીનાથ સુજ્ઞના||૩૮||

(સમ્પ્રદાયકલ્પદ્રુમ પૃ. ૧૪૨)

श्रीगोपीजनवल्लभो जयति

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम् एको देवो देवकीपुत्रएव।

मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि, कर्मोप्येकस्तस्य देवस्य सेवा॥१॥

इति श्रीजगदीशेन महाप्रभुकृते स्वयम्।

लिखितं पद्यमेतद्धि मायावादनवृत्तये॥२॥

बर्हिमुखो यदा नैवमेने विद्वज्जनातिगः।

पत्रं निरूप्यतां भूयः प्राहेनं कृष्णसेवकः॥

तदा श्रीवल्लभाः प्रोचुः वयं नाग्रहवादिनः।

त्वन्नः पुरोहितः साक्षी यथेच्छसि तथा कुरु॥४॥

गुच्छिकारस्तदा तस्य प्रत्ययार्थं हरेः पुरः।

पत्रं संस्थापयामासमसीपात्रं च लेखनीम्॥५॥

यः पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्याद् अन्त्यरेतसम्।

यः पुमानीश्वरं द्वेष्टि तं विद्याद् अन्त्यजोद्धवम्।

भूयोपि जगदीशेन पत्रे विलिखितं त्विदम्।

तदा बर्हिमुखो ध्वस्तः तथा ज्ञातश्च सज्जनैः॥७॥

इति श्रुत्वैव सद्गतां कृष्णसेवकपण्डितम्।

श्रीवल्लभात्मजो गोपीनाथो मन्ये तथा ह्यमुम्॥८॥

ख रस श्रुति भू (१४६०) सङ्ख्ये मासमाने शकेश्वरात्।

लिखितं माधवामायां पूर्वेषां सम्मतं दलम्॥९॥

“आन्ध्रदेशीयदीक्षितवल्लभाचार्येण स्वपूर्वपुरुष-सोमयाजि-गङ्गाधरदीक्षितानां सम्मानितः श्रीमत्पुरुषोत्तमक्षेत्रे श्रीजगन्नाथ-सपर्या-कुशलः गुच्छिकार-कृष्णसेवकाख्य-सेवापण्डितः, सोमयाजि-गङ्गाधर-दीक्षितानां स्वपूर्वपुरुषाणां सम्मानितइति स्वकीयैर् अवधार्य विष्णुपदेन्दु-श्रुति-धराशके (१४१०) समागतेन वल्लभदीक्षितेन वृत्तिदलं निरूपितं, श्रीवल्लभाचार्य-महाप्रभुवंशसम्भूतैः कृष्णसेवकवंशीयाः सम्मान्याः लिखितं दलमिदं ख-रस-श्रुति-भूमिते (१४६०) शालिवाहनशके वैशाखकृष्णामादिने”.

*हस्तलिखित दोनों वृत्तिपत्रोंकी पोझिटिव् गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (पार्लार-किशनगढ) द्वारा प्रदत्त हैं.

श्रीगोपीनाथजी और तत्पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी

सम्पादक : गो.वा. श्रीद्वारकादास परीख

सामान्य परिचय :

श्रीगोपीनाथजी महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीके ज्येष्ठ पुत्र थे. आपका आविर्भाव वि.सं. १५६८ के आश्विन कृष्ण १२ की अडेलमें हुआ था. आपके एक कनिष्ठ भ्राता थे जिनका नाम श्रीविट्ठलनाथजी था. आप परम सात्विक, निस्पृही और धर्मप्राण थे. सम्प्रदायमें आप बलदेवजीके अवताररूपसे प्रसिद्ध हैं.

दीक्षाएं तथा अध्ययन :

आपको वि.सं. १५७५ में काशीमें आठवें वर्ष श्रीमहाप्रभुजीने उपनयन दिया था. उस समय आचार्यजीने आपको वैदिक विधिके अनुसार गायत्री मन्त्रके उपदेशके पश्चात् गोपाल मन्त्र तथा ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षाएं भी दी थीं. सम्भवतः आपका अध्ययन श्रीमहाप्रभुजीके तत्वावधानमें ही हुआ था. आपको श्रीमद्भागवत इष्ट था. बालपनसे ही आप उसीका पठन - पाठन और पूजा आदि करते थे. इससे ही आपको शास्त्रज्ञता प्राप्त हुई थी. आपने छोटी वयमें ही श्रीभागवतको अक्षरशः कण्ठाग्र कर लिया था और उसके सम्पूर्ण पाठ किये बिना भोजन नहीं ग्रहण करते थे. इस नियममें कभी - कभी दो - दो दिन भोजन किये बिना व्यतीत हो जाते थे. यह बात आचार्यचरणको नहीं रुची. क्योंकि उससे भगवत्सेवाका भी अवकाश प्राप्त नहीं होता था. तब आपने श्रीभागवतके सारसमुच्चयरूप स्वरचित 'पुरुषोत्तमसहस्रनाम' का पाठ करनेकी आज्ञा दी और उससे समग्र भागवतके पाठका फल प्राप्त होगा ऐसा वचन दिया. तब श्रीगोपीनाथजीने अपने पूर्व नियमका परित्याग कर "पुरुषोत्तमसहस्रनाम" का नित्य-नियमसे पाठ करना शुरु किया. इससे भगवत्सेवाका भी आपको अवकाश मिलने लगा.

विवाह और सन्तति :

वि.सं १५८२ में जब आप पन्द्रह वर्षके हुए तब आचार्यचरणने आपका विवाह एक सजातीय कन्या 'पायम्मागारू' से काशीमें वैदिक - विधिके अनुसार किया. वि.सं. १५८७ में आपको 'श्रीपुरुषोत्तमजी' नामके पुत्र हुए. तत्पश्चात्

‘लक्ष्मी’ और ‘सत्यभामा’ नामकी दो कन्याएं यथा समय हुईं. कांकरौलीके इतिहासके अनुसार इनका जन्म क्रमशः है. इस प्रकार आपको कुल तीन सन्तति थीं.

आचार्यत्वकी प्राप्ति :

वि.सं. १५८७ में जब आचार्यचरणने तिरोधानलीला की तब पुष्टिसम्प्रदायका आचार्यत्व आपने ग्रहण किया. बादमें आपने पूरवका परदेश किया. उसमें एक लक्ष मुद्रा भेंटमें आई और अनेक दैवीजीव शरण आए. यह प्रथम प्रदेश होनेके कारण आपने इन मुद्राओंका अपने कुलके देव श्रीनाथजीको समर्पण किया और उनसे श्रीनाथजीके सोना-चांदीके पात्र कृष्णदास अधिकारीद्वारा बनवाये.

आप विशेषतः त्याग - वैराग्य वृत्तिसे रहते थे इसलिए गृहकार्य और श्रीनाथजीके अधिकारमें विशेष ध्यान नहीं देते थे. फलतः गृहकार्यका भार आपके छोटे भाई श्रीविठ्ठलनाथजीने सम्हाल लिया था और श्रीनाथजीके अधिकारका कार्य कृष्णदास अधिकारीके सुपुर्द था. कृष्णदास अधिकारी महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजीद्वारा प्रथम भंडारीके रूपमें और पीछे अधिकारीके रूपमें नियत हुए थे इसलिए उनका मन्दिरमें वर्चस्व था. ऐसा होते हुए भी आचार्यजीद्वारा प्रारम्भसे नियुक्त बंगाली सेवक कृष्णदास अधिकारीका इतना भय नहीं रखते थे और समय-समय पर अवसर देखकर श्रीनाथजीके चांदी-सोनाके पात्र चुरा जाते थे. आचार्यजीके रखे होनेसे न तो कृष्णदास अधिकारी उनको कुछ कह सकते थे न श्रीगोपीनाथजी और न श्रीविठ्ठलनाथजी ही. इस लंछाचारके कारण ही कदाचित् वि.सं. १५६५ से प्रति वर्ष श्रीगोपीनाथजी विशेष करके जगदीशपुरीमें छह-छह मास पर्यन्त जाकर रहते थे और श्रीविठ्ठलनाथजी अडैलमें. श्रीनाथजीके द्रव्यको देवद्रव्य समझ कर ही न तो उसपर ममत्व रखते थे न अधिकार. “देवद्रव्य जो खायगा वह स्वतः भ्रष्ट हो जायगा” इस भावनासे ये दोनों भाई उस ओर सम्पूर्ण उपेक्षा वृत्ति रखते थे. दोनों भ्राताओंके इस प्रकारके सात्विकभावके कारण कृष्णदास अधिकारी भी कुछ नहीं कर पाते थे. और इस प्रश्नको श्रीनाथजीकी इच्छा पर ही छोड़ दिया गया था. परिणामतः सभी पात्र चुरा लिये गये. तब श्रीनाथजीने अडींगके ‘अवधुतदास’ वैष्णवको इस बातकी शिकायत करते हुए अपने वैभव बढानेकी इच्छाको जताया. तब अवधुतदासने इस इच्छाको कृष्णदास अधिकारीके समक्ष प्रकट की और

कृष्णदास अधिकारीने श्रीविठ्ठलनाथजीकी आज्ञा प्राप्त कर बंगालीओंको निकालकर श्रीनाथजीका वैभव बढाया. उस समय श्रीगोपीनाथजी भूतलपर विद्यमान नहीं थे और श्रीविठ्ठलनाथजीने भी श्रीनाथजीकी इच्छाके कारण बंगालीओंको निकालनेकी आज्ञा प्रदान की थी. दोनों भ्राता पितृभक्त थे.

जगदीश यात्रा :

आप वि.सं. १५९५ में सर्व प्रथम जगदीश पधारे थे. उस समय आपने आचार्यचरणके वृत्तिपत्रको देखकर वहांके पुरोहित श्रीकृष्ण गुच्छिकारको एक वृत्तिपत्र लिख दिया था. उससे शाके १४६०(वि.सं. १९९५) से आपकी जगदीशपुरीकी उपस्थिति स्पष्ट होती है. इसके पश्चात् आप प्रतिवर्ष जगदीशपुरी पधारते थे और छह-छह मास पर्यन्त रहते थे.

द्वारिका यात्रा :

आप वि.सं. १५८५ में द्वारिका यात्राको पधारे थे.

तिरोधान :

वि.सं १५९९ (चैत्री १६००) में आप जगदीशपुरीमें जगदीशके विग्रहमें ही लीन होगए. इस घटना से वहां के लोग बड़े प्रभावित हुए थे.

रचनाएं :

श्रीगोपीनाथजी संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान् थे. आपने साम्प्रदायिक अनेक ग्रन्थ लिखे हैं. किन्तु आज वे उपलब्ध नहीं होते हैं. उसका प्रधान कारण उनकी बहूजीका अपने देवर श्रीविठ्ठलनाथजीसे अपने पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीके अधिकारके विषयमें रुष्ट होकर ग्रन्थादिको लेकर दक्षिण चला जाना (हो सकता) है. वहां पर वे सब ग्रन्थ नष्ट हुए (हों) यह पूर्ण सम्भावना है. ‘सम्प्रदायकल्पद्रुम’ में श्रीगोपीनाथजीके किये हुए तीन ग्रन्थोंके नाम मिलते हैं. वे इस प्रकार हैं:

१. सेवाविधि

२. नामनिरूपणसंज्ञा

३. वल्लभाष्टक.

‘साधनदीपिका’ नामका एक और ग्रन्थ बम्बईसे प्रकाशित ‘पुष्टिभक्तिसुधा’ मासिकके वर्ष ६ अम ५-६ में प्रसिद्ध हुआ है. यह ग्रन्थ ‘सेवाविधि’ से भिन्न है तो उनके चार ग्रन्थके नाम उपलब्ध हैं यों कहा जा सकता है.

श्रीपुरुषोत्तमजी :

श्रीपुरुषोत्तमजीका आविर्भाव वि.सं. १५८७ में आश्विन शुक्ल ८ को अडेलमें हुआ था. आप भी प्रकृतिके सौम्य और सात्त्विक वृत्तिके थे. श्रीगोपीनाथजीने जब तिरोधानलीला की तब आप १२-१३ वर्षके थे. ... भगवदिच्छासे इन्हीं दिनोंमें मथुराकी क्षत्राणी गङ्गाबाईको अनुचित अधिकार देनेके कारण श्रीगुसांईजीका कृष्णदाससे कुछ अनबन हो गई. ... श्रीगुसांईजी जब उत्थापनकी खबर आई तब श्रीनाथजीके मन्दिरमें जाने लगे तब दंडवती शिलाके आगे ही कृष्णदासने उनको रोका और कहा कि श्रीनाथजीके मन्दिरपर तो श्रीपुरुषोत्तमजीका अधिकार है. उनकी आज्ञाके बिना आप मन्दिरमें नहीं जा सकते हैं. ... इन वचनोंको सुनकर श्रीविठ्ठलनाथजी चुप हो गए. ... इसे भगवदिच्छा समझकर आप वहांसे सीधे ही चन्द्रसरोवर पर जा बिराजे. ... आपने श्रीनाथजीके विरहमें खान-पान सब छोड़ दिया था. आपके इस तापको श्रीनाथजी ज्यादा दिन तक सहन नहीं कर सके और छठे महिने श्रीपुरुषोत्तमजीको सदेह अपने स्वरूपमें अन्तर्हित कर लिया. ... श्रीपुरुषोत्तमजीके तिरोधानका समय वि.सं. १६०५ के अषाढ शुक्ल ५ का स्पष्ट होता है.

(“श्रीद्वारकानाथजी की प्राकट्य वार्ता”, पंचम प्रकरण: “ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी और तत्पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी”)

(१. “श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता” में श्रीगोपीनाथजीका ... दिया है और ‘सम्प्रदायकल्पद्रुम’ में वि.सं १६२० दिया है. ये दोनों तिथियां अप्रमाणिक हैं. क्योंकि श्रीगुसांईजी और दामोदरदास के संवादसे श्रीगोपीनाथजीके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीके अधिकार विषयमें जो गृहकलह हुआ वह वि.सं. १६०५ में हुआ सिद्ध होता है. इससे १६०५ के पूर्व श्रीगोपीनाथजीका तिरोधान निश्चित हो चुका था यह निर्विवाद सिद्ध होता था. श्रीनाथजीके भंडारकी नोंधमें, जिसका अक्षरशः उद्धरण

इस लेखकद्वारा मथुरासे प्रकाशित अष्टछापकी वार्तामें दिया गया है, श्रीगोपीनाथजीका तिरोधान वि.सं. १५९९ स्पष्ट लिखा गया है. इसकी पुष्टि श्रीविठ्ठलनाथजीने सर्व प्रथम स्वतन्त्र रूपसे की गई वि.सं १६०० की ब्रजयात्रासे होती है. यह स्वतन्त्र रूपसे इस लिये कही गई है कि उस समय श्रीविठ्ठलनाथजीने अपने नामका मथुराके पुरोहित उजागर चौबेको वृत्तिपत्रक लिख दिया है. उस समय यदि श्रीगोपीनाथजी विद्यमान होते तो वे उस यात्रामें अवश्य होते और उनके हाथसे ही वृत्तिपत्रक लिखवाया गया होता.)

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण

(प्राकट्य : वि.सं. १५६८ तिरोधान : १६२०)

गो. वा. श्रीकण्ठमणि शास्त्री, कांकरोली

प्रकाशनवर्ष : वि.सं. १९९६

जन्म शिक्षा और संस्कार :

श्रीगोपीनाथजीका प्राकट्य सं. १५६८ (चैत्रादि)^१ के आश्विन कृष्ण १२ के दिन हुआ था. इनके पितृचरण श्रीवल्लभाचार्य उस समय सोमयज्ञका अनुष्ठान समाप्त कर प्रयागके पास अडेल नामक ग्राममें निवास करते थे. इनके जन्मके बाद श्रीवल्लभाचार्यने तीन सोमयज्ञ और किये तथा चरणाटको अपना निवासस्थल बनाया.

श्रीगोपीनाथजी एक संस्कारी बालक थे और इनके चरित्रपर श्रीवल्लभाचार्य जैसे महापुरुषके जीवनका प्रभाव पड़ा था, अतः इनकी शिक्षा- दीक्षा तथाच विद्याभ्यासके विषयमें विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं है.

सं. १५७२ पौष कृष्ण ९ के दिन इनके भ्राता श्रीविट्ठलनाथजीका प्राकट्य हुआ. उनके जात-कर्मादि संस्कार हो जाने पर श्रीवल्लभाचार्य गिरिराज पधारे और वहां दोनों बालकोको श्रीनाथजीके चरणस्पर्श कराकर गोकुलमें श्रीविट्ठलनाथजीका कनछेदन किया. गोकुलसे आचार्यचरण पुनः अडेल आकार रहे और यहां उन्होंने पुनः सोमयज्ञ किया. ऐसा प्रसिद्ध है कि उन्होंने कुल छह सोमयज्ञ किये थे. इस सोमयज्ञके समय उनके भाई सक्क्यासी केशवपुरी भी आये थे.

सं. १५७३ के चातुर्मास्य बाद श्रीवल्लभाचार्य काशी पधारे और वहां उन्होंने श्रीगोपीनाथजीका विधिवत् यज्ञोपवीत - संस्कार कराया. उपनयन हो जानेके बाद उन्होंने वेद, वेदान्त और शास्त्रों का अध्ययन किया. तथा आचार्यचरणोंके

पास साम्प्रदायिक सुबोधिनी अणुभाष्य आदि ग्रन्थोंका परिशीलन कर योग्य वय होने तक अच्छा पाण्डित्य प्राप्त कर लिया.

यहां इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि श्रीवल्लभाचार्यके सरल, सात्विक और वैदुष्यमय जीवन तथाच त्यागवृत्तिके साथ अनुपम अपरिग्रह भावका असाधारण प्रभाव श्रीगोपीनाथजीपर पड़ा था.

श्रीवल्लभाचार्यने श्रीगोपीनाथजीका द्विरागमन अपनी इहलीलाका संवरण करने (सं. १५८७) के प्रथम कर दिया था. इस हिसाबसे इनका विवाह सं. १५८१ से ८४के बीच दक्षिण देशमें इनके पितृव्य जनार्दन भट्टने किया था^२ जिससे समयानुसार इनके निम्नलिखित सन्तति हुई:

१. पुरुषोत्तमजी प्राकट्य सं. १५८८/८९ आश्विन कृ. ८ गोकुल(?)
२. सत्यभामा बेटीजी प्रा. सं. १५९८ कार्तिक शु. ७. अडेल
३. लक्ष्मी बेटीजी प्रा. सं. १६०१

साम्प्रदायिक उत्तरदायित्व :

सं. १५८७ में श्रीवल्लभाचार्यने अपने अपने भगवद्धाममें वापस पधारनेका समीप आया जानकर श्रीगोपीनाथजीको आवश्यक उपदेश दिया और शुद्धाद्वैत-पुष्टिभक्ति सम्प्रदायका उत्तरदायित्व सौंपा.^३

प्रयागमें सक्क्यासकी दीक्षा लेकर आचार्यचरण जब काशीमें गङ्गाजीकी धारमें अन्तर्धान होनेकेलिये पधारे तब उनके दर्शनार्थ श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीविट्ठलनाथजी काशी पधारे. उस समय आचार्यचरण वाक्सक्क्यास ले चुके थे, अतः पुत्रोंके विनय करने पर उन्होंने जो अन्तिम शिक्षा उन्हें लिखकर दी वह सम्प्रदायमें 'शिक्षाश्लोक' नामसे प्रख्यात है. वल्लभाचार्यके नित्यलीलाप्रवेशके अनन्तर श्रीगोपीनाथजी उनकी आवश्यक उत्तर क्रियासे निवृत्त होकर अपने छोटे भाई और माता के साथ काशीसे अडेल आकर रहने लगे.

श्रीनाथजीकी सेवाका प्रबन्ध :

जब वे अडेलमें निवास करते थे तब उनके पास कृष्णदास अधिकारीके द्वारा इस प्रकारकी शिकायत आई कि - श्रीनाथजीकी सेवा करनेवाले बंगाली वैष्णव श्रीजीके द्रव्यका दुरुपयोग करते हैं और उन्होंने श्रीजीके पास 'वृन्दा' नामक किसी देवीको पधरा दिया है. इसकी जांचकेलिये श्रीगोपीनाथजी और श्रीविठ्ठलनाथजी गिरिराज गये और वहां सेवाका बिगड़ा हुआ क्रम देखकर दोनोंने बंगालियोंको सेवासे हटाने का विचार किया.

सं. १५९० में श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीविठ्ठलनाथजी ने नारायण भट्टसे लेकर श्रीमदनमोहनजीका स्वरूप कार्तिक शु. ९ के दिन बंगालियोंको सेवार्थ प्रदान कर दिया और उनसे श्रीनाथजीकी सेवा छोड़ देनेका आग्रह किया^५. कहते हैं कि बंगालियोंने जब सेवा छोड़ना स्वीकार न किया तो कृष्णदास अधिकारी इसकेलिये कोई तरकीब सोचने लगे. सहसा एक दिन गिरिराजके नीचे झोंपड़ियोंमें आग लग जानेके कारण जब बंगाली लोग श्रीनाथजीकी सेवा छोड़कर अपने-अपने घरोंकी ओर दौड़ पड़े, तब इधर कृष्णदासके सिपाहियोंने मन्दिर पर अपना कब्जा कर लिया और तबसे श्रीजीकी सेवामें वैष्णव घुस गये.

श्रीनाथजीकी सेवाका नया प्रबन्ध बांधते हुए श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीविठ्ठलनाथजी ने अपने सजातीय व्यक्तियोंको श्रीजीकी पाकादि - सेवा करनेका आदेश दिया पर उन लोगोंके स्वीकार न करने पर उन्हें साञ्चीहर ब्राह्मणोंको वह सेवा सौंपनी पड़ी. कृष्णदास आदिको मन्दिरकी व्यवस्था करनेकी जिम्मेदारी सौंप कर श्रीगोपीनाथजी गोकुल होकर सं. १५९० के अन्तमें अडेल वापिस आ गये. इन दोनों भाइयोंने अधिकांश ऐसा क्रम बांध लिया था कि एक भाई श्रीनाथजीकी सेवार्थ गोपालपुरा (जतीपुरा)में रहता तो दूसरा अपनी माताकी सेवार्थ अडेल आकर रहता था.

यात्रा और प्रचार :

श्रीगोपीनाथजीने सम्प्रदाय सिद्धान्तके प्रचारार्थ गुजरात, सिन्ध और द्वारका प्रान्तोंकी यात्रासे प्राप्त गुरुभेंटके प्रायः एक लाखके द्रव्यको आचार्यकुलकी परम्परानुसार कुलदेव श्रीनाथजीकी सेवामें समर्पित किया था. उस द्रव्यसे आपने चांदी - सोनेके पात्र, आभरण आदि सिद्ध करवाये थे.

सं. १५९५ के प्रारम्भमें श्रीगोपीनाथजीने जगदीशपुरीकी यात्रा की. वहां उन्होंने सजातीय व्यक्तियोंके कथनानुसार श्रीवल्लभाचार्यके समकालीन वृद्ध पुरोहित कृष्णदास गुच्छिकार को अपना वंश - परम्पराका पुरोहित स्वीकार किया और उसे वैशाखकी अमावास्याके दिन वृत्तिपत्र लिख दिया. उनके मुखसे श्रीगोपीनाथजीने श्रीवल्लभाचार्यके सं. १५४५ में जगदीश पधारने और मन्दिरमें शास्त्रार्थ होनेका पूर्व वृत्तान्त भी सुना, जिसका उल्लेख वृत्तिपत्रमें किया गया है^६.

जगदीशकी यात्रा कर अन्य स्थलोंका परिभ्रमण और धर्मप्रचार करते हुए ब्रज होकर श्रीगोपीनाथजी अडेल आये. वहां उन्होंने सं. १६०१ में सोमयज्ञ और तदनन्तर विष्णुयज्ञ किया. सं. १६०५ चैत्र शु. ५ के दिन काशीमें श्रीविठ्ठलनाथजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीका यज्ञोपवीत हुआ, उस समय वे आपने भ्राताके आग्रहसे काशी पधारे. वहांसे जाकर गिरिराजमें श्रीनाथजीकी सेवा की और ८४ कोसकी ब्रजपरिक्रमा सविधि सम्पन्न की.

सं. १६१८ के लगभग श्रीगोपीनाथजीने पुनः गुजरात, सिन्ध, द्वारका आदि प्रान्तका परिभ्रमण किया जिसमें उनको प्रायः दो वर्षका समय लगा.

ज्येष्ठ भ्राताके पर्यटनको चले जाने पर श्रीविठ्ठलनाथजीके साथ एक घटना घटी. बात यह हुई कि कृष्णदास अधिकारीके और गङ्गाबाई नामक श्रीनाथजीकी एक सेविकाके बीच अनुचित सम्बन्धकी शिकायत पहुंचने पर श्रीविठ्ठलनाथजीने गङ्गाबाईका मन्दिरमें आना - जाना बन्द करवा दिया. यह बात कृष्णदासजीको ठीक न लगी और उन्होंने इसे अनुचित हस्तक्षेप समझा.

एक दिन श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकी सेवा करनेकेलिये जब गिरिराज मन्दिरमें पधारने लगे तो कृष्णदास अधिकारीने उचित - अनुचितका कुछ भी विचार किये बिना अपने आदमियोंके द्वारा उनको रोक दिया. उस दिनसे श्रीगुसांईजी चन्द्रसरोवर पर रहने लगे.

श्रीविठ्ठलनाथजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीके पत्र द्वारा प्रदेशमें जब श्रीगोपीनाथजीको यह वृत्तान्त मालूम हुआ तो उन्होंने पत्र लिखकर इस अव्यवस्थाको दूर करने का आदेश दिया. जिसके फलस्वरूप श्रीगिरिधरजीने मथुराके हाकिमसे सैनिक प्रबन्ध लेकर कृष्णदासको कैद करा दिया और अपने पितृचरणकेलिये श्रीनाथजीकी सेवाका अन्तराय दूर किया.

सन्तति :

यह प्रथम ही कहा जा चुका है कि श्रीगोपीनाथजीका विवाह श्रीवल्लभाचार्यकी विद्यमानतामें ही हो चुका था. समयानुसार उनके निम्नलिखित सन्तति हुई.

१. श्रीपुरुषोत्तमजी प्रा. सं. १५८९^६ गोकुल.
२. श्रीसत्यभामा बेटीजी प्रा. सं. १५९८ कार्तिक शु. ७. अडेल
३. श्रीलक्ष्मी बेटीजी प्रा. सं. १६०१

श्रीपुरुषोत्तमजीके विषयमें कुछ विशेष वृत्त नहीं मिलता है, क्योंकि इनका देहान्त छोटी अवस्थामें पिताके सामने ही हो गया था. हां, इतना अवश्य विदित होता है कि - जब कभी श्रीगोपीनाथजी इनको अपने भाई श्रीविठ्ठलनाथजीके पास गिरिराजमें छोड़ जाया करते थे तब वे इनको श्रीनाथजीकी सेवा सिखाया करते थे. श्रीगोपीनाथजी जब प्रदेश करने द्वारका (गुजरात) गये तब भी श्रीपुरुषोत्तमजी श्रीविठ्ठलनाथजीके पास ही रहे थे और पिताके आनेके पूर्व ही सं. १६२० के लगभग वे नित्यलीलमें प्रविष्ट हो गये थे. इस प्रसङ्गसे श्रीविठ्ठलनाथजीको बड़ा दुःख और पश्चात्ताप हुआ.

व्यवहार और व्यक्तित्व :

श्रीगोपीनाथजी और श्रीविठ्ठलनाथजी दोनों भाइयोंमें परस्पर अच्छा सौहार्द था. यह इनके पत्र और पारस्परिक व्यवहारसे विदित होता है. कहते हैं, उनके पत्र नाथद्वारामें रखे हुए हैं. वे दोनों महानुभाव संस्कृत - भाषामें पत्र लिखा करते थे, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इनकी लिखा-पढ़ी संस्कृत परम्परासे ही हुई थी^०. श्रीविठ्ठलनाथजी भी ज्येष्ठ भ्राताको बड़ी आदरकी दृष्टिसे देखते थे, जैसा उनके रचित “यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखा तिगो भवेत्, तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम्” इत्यादि मङ्गलाचरणसे प्रतीत होता है.

यद्यपि श्रीगोपीनाथजीकी विद्वत्तामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है, क्योंकि उनका अध्ययन वल्लभाचार्यके निरीक्षणमें हुआ था, फिर भी सम्प्रदायमें इनके रचित ‘साधनदीपिका’ नामक ग्रन्थको छोड़कर अन्य कोई ग्रन्थ नहीं मिलता है यह बड़े आश्चर्यकी बात है. इनकी पत्नी श्रीगोपीनाथजीके नित्यलीलप्रविष्ट होनेके पश्चात् अपने पिताके घर दक्षिण पधार गई थी ऐसा परम्परासे प्रख्यात है^०. सम्भव है, उनके साथ श्रीगोपीनाथजी विरचित अन्य ग्रन्थ भी दक्षिण चले गये हों.

जहां तक अनुमान किया जा सकता है, श्रीगोपीनाथजी सरल और सात्त्विक जीवनके आग्रही व्यक्ति थे. इन पर श्रीवल्लभाचार्यके त्यागमय जीवन और तपस्या का प्रभाव अधिक पड़ा था. वे अधिकांश अडेल, चरणाट अथवा गोकुल में एकान्त निवास किया करते थे.

नित्यलीला - प्रवेश :

पुत्रके नित्यलीलास्थ होनेके पश्चात् आपने सम्प्रदायका उत्तरदायित्व श्रीविठ्ठलनाथजीको सौंप और सं. १६२० में यात्रार्थ चले गये. जगदीशपुरीमें जाने पर आप श्रीजगदीशके मुखारविन्दमें लीन हो गये. सं. १५९५ में भी इनका नित्यलीला - प्रवेश माना जाता है, जो उक्त ग्रन्थसे विरुद्ध पड़ता है.

१. एक जगह जन्म - संवत् इस प्रकार दिया है -
तिनके जेठे पुत्र हैं दीक्षित गोपीनाथ ।

संवत पन्द्रह सत्तरा आसो दसमी साथ ॥६॥ (सं. १५७० आश्विन १०)
तिनके पुरुषोत्तम भये सत्या कन्या जानि ।
पुनि आगे पूरन भयो अब दूजे को मानि ॥७॥

(कवि जगनन्दकृत वंशावली सं. १७८१)

२. यदु. दि. ५३

३. यदु. दि. पत्र ५५ में इस विषयमें जो लिखा है उसका अभिप्राय यह है :

“श्रीवल्लभाचार्यके अनन्तर श्रीगोपीनाथजी उनकी मर्यादाका पालन करते हुए आचार्य सिंहासन पर बिराजमान और वैष्णवों द्वारा पूजित होकर भागवत धर्मका प्रचार करने लगे. श्रीगोपालमन्त्रका पुरश्चरण करते हुए आपने श्रीनाथजीकी सेवा की. इसके बाद अपने पुत्रको पितृव्यके पास छोड़कर जगन्नाथजीमें जाकर उनके मुखमें प्रविष्ट हो गये. उनके पुत्र पुरुषोत्तमजीको बालक जानकर वैष्णवोंने श्रीविठ्ठलनाथजीको आचार्य बनाया. इससे गोपीनाथजीके बहुजी अपने आचार्यचरणके पुस्तक, धन आदि लेकर दक्षिणमें चली गई”.

इसमें पुत्रसे पहले पिताके गत हो जानेकी बात कहां तक प्रामाणिक मानी जा सकती है, कहा नहीं जा सकता.

४. सं. क. ५३

५. एक प्राचीन वंशावलीमें इनका जन्म सं. १५९७ भाद्र वदी ८ मिलता है.

६. सं. क. (पत्र ६२ और ६५) में पुरुषोत्तमजीका जन्म सं. १६०८ और यज्ञोपवित सं. १६१५ (यदुनाथजीके जन्म बाद) दिया है. इस विषयमें सम्प्रदाय कल्पद्रुमको प्रामाणिक मानने पर यह स्वीकार करना पड़ता है कि श्रीपुरुषोत्तमजीका देहान्त १२ वें वर्ष हुआ. वि.सं. १५८९ में जन्म माननेसे अन्तिम समय (१६२०) में इनकी अवस्था ३१ वर्षकी होती है. ...

७. विठ्ठलनाथजीने जो पत्र स्वकीय ज्येष्ठ भ्राताको लिखे थे, उनमेंसे एक इस प्रकार है.

स्वस्ति श्रीमज्ज्येष्ठभ्रातृचरणकमलेषु यवीयसो विट्ठलस्य प्रणामकोटिनिवेदको अयं पत्रदूतः. अहं भगवदाज्ञया रासोत्सवपर्यन्तं श्रीगोवर्द्धनचरणारविन्दनिकटे स्थितो अस्मि. हरिद्वारं प्रत्याज्ञा न जातेति न गतम्. अत्र ममा अस्वास्थ्यं बहु जातम् आसीत्. उपवासदशकं कृतम्. अधुना भगवत्कृपया च नैरुज्यं जातम् अस्ति, कापि चिन्ता न कार्या. अक्का-अम्मा-अत्ताचरणेषु नतयः. अक्का यथा दुःखं न करोति मम अस्वास्थ्यं श्रुत्वा तादृक् कर्तव्यम्. भवतापि कापि चिन्ता न कार्या मम भगवति सर्वत्र. यादवेन्द्रपुरिषु

ब्रह्मानन्देषु दीक्षितेषु हरिहर-नागनाथ-चूड़ादिषु नमस्काराः. द. विष्णुदासादिषु आशिषः. अत्रत्य वैष्णवानां नतयः.

('शुद्धाद्वैत' वर्ष २ अम ६)

८. यदु. दि. पत्र ५५

९. स. प्र. ८६

१०. सं. १८६२ की लिखित वार्ताकी पुस्तकमें श्रीगोपीनाथजीके मुखवचनकी ८ वार्ताएं उपलब्ध होती हैं.

११. सं. प्र. मङ्गलाचरण श्लोक ३)

॥ वार्तासाहित्यमें श्रीगोपीनाथजी ॥

॥ ८४ वैष्णवन्की वार्ता ॥

वार्ता : ३८ प्रसङ्ग १

और एक समे श्रीआचार्यजी अडेलमें बिराजत हते. सो एक दिन भण्डारीने श्रीआचार्यजीसों कही महाराज ! आज भण्डारमें सीधो-सामान कछू नहीं है. तब श्रीआचार्यजी एक सोनेकी कटोरी श्रीठाकुरजीके मन्दिरमेंते लाइ दिये. और कहे, आजुके लायक राजभोग पर्यन्तकी सामग्री ले आवो, अधिक मति लाइयो. यह बनियाके यहां कटोरी गहनें (गिरवी) धरि आइयो. तब भण्डारी सेनेकी कटोरी ले बनियाके इहां धरि, राजभोगकी सामग्री सब लायो. पाछें सामग्री करि श्रीठाकुरजीकों भोग धरि समयानुसार भोग सराय आरती करि अनोसर कराये. महाप्रसाद श्रीयमुनाजीमें पधराई दियो और बाकी गायन्कों खवाइ दियो. आप, परिकर, सगरे सेवक सहित भूखे ही बैठ रहे.

भावप्रकाश : सो यह वैष्णवकों शिक्षा दिये, जो श्रीठाकुरजीकी वस्तु होई सो वैष्णवकों लेनो नहीं, ठाकुर अरोगें. यह रीति सबकों सिखाये.

और यहां सिंहनन्दके सगरे वैष्णव मिलिके श्रीआचार्यजीकी भेटकी मोहौर तीस हती सो वासुदेवदास छकड़ाकों दीनी. जो ये श्रीआचार्यजीकों पहोंचती होइ तो आछो. तब वासुदेवदास वैरागीको भेष धरि, सगरी मोहौरकों लाखके गोला, सालिग्राम जैसे, करि चन्दन चढ़ावत चले. ... मार्गमें चोर, ठग मिले सो जाने जो बैरागी है, सालिग्राम पूजत जात है. तीसरे दिन, तीसरे प्रहर, जा दिन श्रीआचार्यजी भूखे बैठे रहे, ता दिन अडेल आये. सो गाम बाहिर आई लाखको गोला फोरि, मोहौर काढ़ि आये. श्रीआचार्यजी महाप्रभूनों दियो, मोहौर तीस आगे धरी. महाप्रभुनों बिनती किये, महाराज ! सिंहनन्दके वैष्णवन्की भेट हैं. तब श्रीआचार्यजी कहे, वासुदेवदास ! इतनी मोहौर तू कैसे लायो ? मार्गमें चोर-ठग बहोत हैं ? तब वासुदेवदासने कही, महाराज ! यह बात तो मैं न कहूंगो, आपु खीजोगे सुनिके. तब

श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहै, हम तेरे उपर प्रसन्न होंगे, न खीजेंगे. जैसे लायो सो कहि दे. तब वासुदेवदासने सब प्रकार कछो जो लाखको गोला करि, चन्दन चढ़ावत आयो. तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहे, ऐसे न करिये. भगवत्स्वरूपको आकार करि पाछें अन्यथा करना पड़े. तब वासुदेवदासने कही, महाराज ! कछू प्रतिष्ठा करी न हती. लाखको गोला बांध्यो हतो. तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें, तऊ ऐसे न करिये. पाछें भण्डारिकों बुलाय तीस मोहौर श्रीआचार्यजी महाप्रभु दिये. और कहें मङ्गलातें ले शयन पर्यन्तकी सामग्री ले कटोरी छुड़ाइ ले आवो. पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभु शयन पर्यन्त पहोंचि श्रीठाकुरजीकों अनोसर कराय आप भोजन किये. ता पाछें श्रीअक्काजी आदि सगरे परिकर भोजन किये. तब वासुदेवदासकों महाप्रसादकी पातर धरी, सगरे सेवक वैष्णव महाप्रसाद लिये. ...

वार्ता : ३८ प्रसङ्ग २

और एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभून्के बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी आगरे पधारे. सो श्रीगुसांइजीकी भेट सौ मोहौर हती सो वैष्णव श्रीगोपीनाथजीकों दीनी. इतनेहीमें सिंहनन्दसों वासुदेवदास छकड़ा आगरे आये. ता समय श्रीगोपीनाथजीने कही जो ऐसो कोई वैष्णव है जो ये सौ मोहौर अडेल पहोंचावे ? तब वासुदेवदासने कही जो महाराज ! मोकों देउ, मैं पहोंचाऊंगो. तब श्रीगोपीनाथजी श्रीगुसांइजीकों पत्र लिखि दियो. और सौ मोहौर वासुदेवदास छकड़ाकों दीनी. तब वासुदेवदास वैसे ही लाखको गोला करि चन्दन चढ़ावत वैरागी भेषसों चले. सो तीसरे दिन अडेल आई, लाखमेंते मोहौर निकासी, श्रीगुसांइजीकों आई दण्डवत करि, श्रीगोपीनाथजीको पत्र देके सौ मोहौर आगे धरी. तब श्रीगुसांइजी पत्रकों बांचि मोहौर संभारि भण्डारिकों दिये. पाछें वासुदेवदासकों महाप्रसाद लिवाये. ता पाछें दूसरे दिन मोहौरन्की पहोंच आप श्रीगुसांइजी लिखि वासुदेवदासकों दिये. तब वासुदेवदास श्रीगुसांइजीको दण्डवत् करि अडेल तें चले. सो तीसरे दिन आगरे आय श्रीगुसांइजीको पत्र श्रीगोपीनाथजीकों वासुदेवदास दिये. तब श्रीगोपीनाथजी वह पत्र बांचिके वासुदेवदास ऊपर बहोत प्रसन्न भये. पाछें पूछे, जो इतनी मोहौर मार्गमें अकेले कैसे तुम ले गये वासुदेवदास ! सो प्रकार तो हमसों कहो ? तब वासुदेवदास सब प्रकार श्रीगोपीनाथजी सों कहें. तब श्रीगोपीनाथजी वासुदेवदास सों कहे, जो ऐसे कबहू न करिये.

॥ घरुवार्ता ॥

एक समय श्रीमहाप्रभुजी शीतकालके दिनमें पिछली रात्रकूं ऊठिके देहकृत्य करिके तेल लगावत हते. तब श्रीगोपीनाथजी स्नान करिके अपरसमें आपके पास आयके ठाढे भए. तब आप श्रीमहाप्रभूनों विनसों कह्यो जो तुम मन्दिरमें जायके श्रीठाकुरजीकों जगावो. तब श्रीगोपीनाथजी किंवाड़ खोलिके आगे गए. सो तहां ठाढे रहिके देखे तो श्रीनाथजी भरनिद्रामें पौढे हैं. तब श्रीगोपीनाथजीने आयके आपसों कह्यो जो श्रीठाकुरजी तो भरनिद्रामें पौढे हैं, केसें करूं ? तब आपने श्रीगोपीनाथजीसों कही जो तुम एक छिन भर ठाढे रहो. पाछें मन्दिरमें जायके हाथकी तारी बजायके श्रीकुं जगावो. कारण जो ब्रह्ममुहूर्त भए पाछें श्रीठाकुरजीकों जगावें या भांतिकी मर्यादा हे. तातें अवश्य जगावें. श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी तो निजस्वरूपको प्रकार सब जाने हैं. तासों श्रीनाथजीकों तारी बजायके जगायवेकी आज्ञा दिये.

(घरुवार्ता ६)

एक समय श्रीगोपीनाथजीने श्रीआचार्यजी महाप्रभूनों विनती करी जो महाराज श्रीद्वारिकानाथजीकों अपने घर पधरावें ?

तब आप श्रीगोपीनाथजीसों कहें जो तुमको बहुत पात्र - सामग्री - गहेना देखिके लोभ भयो होयगो !

तब श्रीगोपीनाथजीने कही जो महाराज आपके वंशमें प्रगट होयगो सो तो लोभ न करेगो, परि हमकों तो सेवाहीकी इच्छा होत हे, तातें आपसों यह बिनती करी हे. तब सब वैष्णवकों सुनायवेकों श्रीआचार्यजी श्रीमुखसों यह बात श्रीगोपीनाथजीसों कहें जो :

मेरे वंशमें अथवा मेरो कहायके जो कोई भगवद्द्रव्य खायगो
ताको वंश निर्मूल होयगो, यह मेरी आज्ञा है.

(घरुवार्ता ७)

पाछें जब श्रीआचार्यजीकों श्रीठाकुरजीने तीसरी आज्ञा दीनी जो अब पधारो, तब आप बिराच किये जो अब कोन प्रकारसों पधारनों. तब मनमें बिचारें जो अब

संन्यास ग्रहण करनों. काहेतें, जो ब्राह्मणको स्वरूप धर्यो हे तातें ब्राह्मणकों चार्यों आश्रमन्को अङ्गीकार करनो. प्रथम तो आपने ब्रह्मचर्याश्रमको अङ्गीकार कियो हतो. जब श्रीगोपीनाथजीको तथा श्रीगुसांईजीको प्रागट्य भयो तबलों गृहस्थाश्रमी रहे; सो वल्लभाख्यानमें गोपालदासजी गोये हैं “पूरण ब्रह्म श्रीलक्ष्मणसुत पुरुषोत्तम श्रीविठ्ठलनाथ; श्रीगोकुलमां प्रगट पधार्या स्वजन कीधा सनाथ”. फेरि वानप्रस्थाश्रम किये. सो तो साक्षात् ईश्वरहीसों बने जो सब पदार्थ विद्यमान हे ओर तिनसों वैराग्य होय. पाछें बिचारिके आप संन्यास ग्रहणकी आज्ञा आपकी धर्मपत्नी श्रीमहालक्ष्मीजीके पास मांगी. ... आप संन्यास ग्रहण करिके काशी पधारे. वहां जायके आपने अन्न, जल ओर सम्भाषण ये तीनों वस्तुको त्याग किये. पाछें मौनव्रत धारण किये और ध्यानमुद्रासों रहे. सो संवत् १५८७ के अषाढ कृष्ण २ उरान्त ३ के दिन आपने बिचारी जो आज मध्याह्नकालमें श्रीगङ्गाजीमें जाय श्रीभगवान्के धामकों जानो. एसेमें विनके पुत्र श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीविठ्ठलनाथजी सहकुटुम्ब-परिवार तथा सब सेवकजननों संग लेकें श्रीआचार्यजीकी खोज करत-करत काशीजीमें मध्याह्नकालमें आय पहुंचे. ... तब आपके पुत्रनों प्रणाम पूर्वक विनती करी जो महाराज ! अब हमकों कहा आज्ञा हे ? ता समे आपकूं तो मौन व्रत हतो, तातें सज्जा करिके धूलमें अंगुलीसों शिक्षाके साडे तीन श्लोक आपने अपने श्रीहस्तसों लिखे.

(घरुवार्ता १०)

चार स्वरूप भगवत्स्वरूपमें लीन भये सो या रीतिसों जो १. श्रीआचार्यजी महाप्रभु श्रीगङ्गाजीके प्रवाहमें; २. (श्रीगोपीनाथजीके पुत्र) श्रीपुरुषोत्तमजीकों श्रीनाथजीने हाथ पकरिके अपनी लीलामें पधराय; ३. श्रीगोपीनाथजी आप श्रीजगदीश पधारे हते तहां श्रीबलदेवजीके स्वरूपमें लीन भये तथा ४. श्रीगिरिधरजी श्रीमथुरानाथजीके मुखारविन्दमें समाय गये-या रीतिसों सब लीलामें पधारे.

(घरुवार्ता १२)

॥ निजवार्ता ॥

आपके बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी श्रीचरणाद्रिमें आय रहे हैं जहां श्रीगङ्गाजी बहत हैं. तहां चरणपहाडीमें श्रीभगवान्के चरणचिह्न बिराजत हैं वाहीसूं ‘रणाद्रि’ नाम विख्यात भयो. वाके श्रीगोपीनाथजीने दर्शन करके कछूक वा गामतें दूरि

सुन्दर स्थान बांधिके आपने निवास कियो. श्रीगुसांईजीके प्रागट्यके पीछे आप श्रीचरणाद्रिमें थोडे ही दिन बिराजे. फेरि पाछें अडेलके समीप देवर्षिगाम, आप अपने पिता श्रीआचार्यजी महाप्रभून्के पास प्राचीन गृहमें बिराजे. वहां श्रीगोपीनाथजीको उपनयन करे. पीछें श्रीमधुसूदन सरस्वती स्वामीके पास विद्या पढाई.

(निजवार्ताप्रसङ्ग ३६)

॥ बैठकचरित्र ॥

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभून्की बैठक अडेलमें हे. तहां आप वास करिके बिराजे. सो श्रीनवनीतप्रियजीकी सेवा करते. तहां नित्य मायावादी आवते सो श्रीआचार्यजी महाप्रभून्सों चर्चा करते. तब आप विनकों निरुत्तर करि देते. पाछें आप मनमें बिचारे जो माता इल्लमागारुजीको मन सेवामें बहुत हे परन्तु ब्रह्मसम्बन्ध विना सेवाको अधिकार नाहीं हे तातें माताकों ब्रह्मसम्बन्ध कैसें करायो जाय ! तब श्रीआचार्यजी आपने श्रीनवनीतप्रियजीसों विनती करी जो आप हमारी माताजीकों ब्रह्मसम्बन्ध कराय दीजो. ... तब श्रीनवनीतप्रियजीनें विनके हस्तमें तुलसी दई सो दूसरे स्वरूपके चरणारविन्दमें निवेदन करवायकें समर्पे. पाछें श्रीनवनीतप्रियजी माता इल्लमागारुजीसों भेंट मांगी. ता समय विनके कण्ठमें जो मोतीन्की माला हती सो श्रीनवनीतप्रियजीकों भेट कीनी. ... तब श्रीआचार्यजीने माता इल्लमागारुजीसों कही जो अब तुम सुखेन सेवा कियो करो. ता दिनसों माता इल्लमागारुजी श्रीनवनीतप्रियजीकी सेवामें न्हाते. केतेक दिन पाछें श्रीआचार्यजीके इहां श्रीगोपीनाथजीको प्रादुर्भाव भयो. तब बडो अनिर्वचनीय सुख भयो.

(अडैलकी बैठक ८३ को चरित्र)

॥ सम्प्रदायप्रदीप ॥

एकदा गङ्गातीरे वसतः श्रीवल्लभस्य ज्येष्ठसुतश्रीगोपीनाथस्य जन्मनि जाते, भगवत्सेवां कुर्वाणस्य पृष्ठे रिङ्गमाणशिशोः स्पर्शः समजनि, सेवायां चेतो व्यग्रमभूत्. तदा स्वभार्यायै क्रुद्धः - “त्वया कस्माच्छिशुर्न रक्षयते” ? पत्क्याह - शिशुः सुप्तोऽस्ति. तच्चरितमपि भगवदीयं मत्वा तूष्णीमासीत्. ...ततः कियता कालेन ज्येष्ठपुत्रो गोपीनाथः पुरुषोत्तममासाद्य स्वरूपमवाप तत्पुत्रः पुरुषोत्तमाख्यश्च.

भावार्थ :

प्रथम पुत्र श्रीगोपीनाथजीके जन्म हो जानेके कुछ दिनों बाद जब श्रीवल्लभाचार्य यात्रा करते हुए ब्रजमण्डलकी ओर आ रहे थे, तब मार्गमें विश्रामकेलिये गङ्गा - तट पर स्थित होकर एक दिन वे भगवत्सेवा कर रहे थे. उस समय उन्हें ऐसा ज्ञात हुआ कि बालक मेरी पीठका सहारा लेकर खड़ा हो रहा है. सेवामें व्यग्रचित्तता हो जानेसे वे अपनी पत्नीको बालककी देख-रेख न करते होनेका उपालम्भ देने लगे, पर प्रत्युत्तरमें यह सुनकर कि “बालक तो कभी का सोया हुआ है, वह आपके पास कहां से आयगा !” उन्हें बड़ा कौतुक हुआ. अन्तमें इसे भगवान् बालकृष्णकी लीला समझकर वे पूर्ववत् तल्लीनतासे अर्चना करने लगे. ... आचार्यचरणोंके अनन्तर कुछ समय तक उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी सम्प्रदायकी रक्षा करते रहे. अन्तमें वे जगन्नाथधाममें जाकर भगवद्विग्रहमें लीन हो गये. उनके युवापुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीके भी गोलोकवास हो जाने पर पुष्टिसम्प्रदायका भार श्रीविट्ठलनाथजी पर आया.

(पं. गदाधरदास द्विवेदी विरचित सानुवाद ‘सम्प्रदायप्रदीप’ चतुर्थ प्रकरण)

॥ श्रीगोपीनाथजीकी बधाई ॥

राग सारङ्ग

आश्विन वदि द्वादशी सुभग दिन श्रीलक्ष्मन सुतके सुत जायो ॥

हलधररूप देखि श्रीवल्लभ महागणिक बुलवायो ॥१॥

लग्न सुधाय सबे ग्रह सुन्दर मन-ही-मन अति हरख बढायो ॥

कुल प्रोहित बुलवाय हरखसों स्वस्ति वाचन पढवायो ॥२॥

जात कर्म अरु नाम करण करि 'श्रीगोपीनाथ' नाम धरवायो ॥
 देत असीस विप्र मन्त्रन पढि श्रीवल्लभ दीनो मन भायो ॥३॥
 किये अजाचक गुणिकों मनवाञ्छित पूरन करवायो ॥
 अति उदार श्रीलक्ष्मणनन्दन देत सबन मन भायो ॥४॥
 श्रीअडेलपुरमें अति आनन्द उमग्यो नाहिं समायो ॥
 वरख्यो आप चरण अद्रिपर अनत न काहू पायो ॥५॥
 घर - घर तोरण बन्दनमाला जय - जय धुनि उपजायो ॥
 रसिकदास अति दीन-हीनमति कहा जाने जस गायो ॥६॥

राग नट

श्रीलक्ष्मणसुत ग्रह बजत बधाइ ॥
 प्रगटे श्रीगोपीनाथ प्रथम सुत समर्षणवपु माइ ॥१॥
 छन्दरूप नररूप मनोहर कीनी जग दरसाइ ॥
 कोटि अनङ्ग रोम-रोमन प्रति महिमा वेदन गाइ ॥२॥
 अति उदार करुणामय अक्षण उग्र प्रताप सहाइ ॥
 ऐसे जानि शरण आयो यह रसिकदास सिर नाइ ॥३॥

घर - घर आनन्द होत बधाइ ॥
 श्रीवल्लभगृह प्रगट भये हैं गोपीनाथ कुंवर सुखदाइ ॥१॥
 धन्य-धन्य आसो वद दिन द्वादसी धन्य-धन्य वार नक्षत्र कहाइ ॥
 धनि-धनि भाग्य खुले भक्तनके धन्य-धन्य कुंख अक्काजू माइ ॥२॥
 मङ्गल कलश बिराजत द्वारे बन्दनवार बंधाइ ॥
 कुंकुम अक्षत थार हाथ ले गावत वधूअन आइ ॥
 टीको करत निहारत श्रीमुख वारत आरती लोन कराइ ॥
 जुग - जुग राज करो यह ढोटा देत असीस सबें मन भाइ ॥
 जे जेकार भयो त्रिभुवनमें देव दुन्दुभि नाद बजाइ ॥

श्रीवल्लभसुत चरनकमलरज कृष्णदास नोछावर पाइ ॥५॥

श्रीवल्लभसुत प्रथम प्रगटे,
 लीलारसभाव गुप्त जे-जे श्रीगोपीनाथ भक्तन सुखदाइ ॥
 गावत हैं वेद चार तोउ न आवे पार
 महिमाको कही न सके द्विजवंश राइ ॥१॥
 पुष्टिपथ करन काज प्रगटे हैं भूमि आज
 गावत सब ब्रजजन मिल मङ्गल बधाइ ॥
 हरिदास बंस गावे बहुत बधाइ पावे
 देखत त्रिलोक सब बल - बल जाइ ॥३॥

॥ श्रीपुरुषोत्तमजीकी बधाई ॥

राग सारंग

श्रीवल्लभसुतके सुत प्रगटे परिपूरन पुरुषोत्तम नाम ॥
श्रीगोपीनाथ निरखि मन फूले मङ्गल गावत चहुंदिश वाम ॥१॥
अति आनन्द बढ्यो पुर सबही जे-जे धुनि चहुंदिश उपजाई ॥
विप्र वेदधुनि पढत सुरन ते देत असीस जीयो चिर माई ॥२॥
श्रीगोपीनाथ देत सबहिनकों पट-भूषन-गो-भू-धन-धाम ॥
पूरत सकल मनोरथ जनके रसिकदास कीनो परणाम ॥३॥

राग नायकी

प्रगटे श्रीवल्लभ सुतके पुरुषोत्तम यह नाम ॥
आश्विनकृष्ण अष्टमी शुभदिन प्रमान श्रीपाय किये शुभ काम ॥१॥
बाजत ढोल दुन्दुभी मुरली बीन मृदङ्ग समाज ॥
नृत्य करत नर-नारी मुदित मन कहत रहो धरनीपर गाज ॥२॥
देव कुसुम बरखावत चहुंदिश जे-जे बोलत करे शिर नाम ॥
रसिकदास कहा बरनी सके गुन सबहिनके परिपूरण काम ॥३॥

श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंकी श्रीजगन्नाथपुरिकी यात्राका

अतिप्राचीन ताड़पत्रमें उड़िया भाषामें

उपलब्ध होते वर्णनका हिन्दी अनुवाद

परम भागवत परम वैष्णव श्री श्री श्री वल्लभाचार्यकु लोद्भव श्रीमद्गोपीनाथाचार्य गोस्वामी, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे गजपति महाराजाके सामने धर्मव्याख्यान देते हुवे (शिरोपा) शिरस्त्राण लेकर सम्मानित हो रहे हैं.

पुरुषोत्तममें अकाल पडा. धान न हुई, पानी न मिले, बहुत अनर्थ होने लगे. मनुष्यका मांस मनुष्य खाने लगे. कोई किसीकी न मानता. जो पहले कभी नहीं हुआ था ऐसा रोग बडि (हैजाकी तरह एक रोग) फैल गया. उस समय वडसन्थ मठमें गुरु रामदास गुरु थे. बीडानसीके महाश्रम रामदासजीको कहा आप गुरु हैं. आपके रहते समय क्या बदलेगा नहीं इसी समय श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य गोपीनाथ आचार्य आये. वह परम भाग्यशाली पुरुष थे. प्रतिदिन शरीरपर कस्तूरीका लेप लगाते थे. परम सुन्दर आचार्य गोपीनाथजी आये हैं यह जानकर राजा बहुत सन्तुष्ट हुए. फलाहारी मठमें निवासका प्रबन्ध किया. भूमिदान किया. अकालके बारेमें कहा. सबने कहा वह उद्धार कर लेंगे. गोपीनाथजीके कहते ही बरसात होने लगी. जन-मानव सन्तुष्ट हुए. हैजा गया. राजा परम सन्तोषसे उन्हें जुलूसके साथ पुरुषोत्तम मन्दिर (जगन्नाथजीका मन्दिर) ले गये. उनसे वेदान्त सुना. इस धर्मग्रन्थको श्रवण कर सब मुग्ध हुए. राजाको सन्तोष हुआ. अकाल गया. सुकाल आया. ऐसे दस दिन रहनेके बाद वे बाहुला मठ गये. वहां योगमार्ग प्रदर्शन किया. सन्त-महन्त आये. राजाने कहा आप गुरु हैं.

उन्होंने कहा हम वैष्णव हैं. हम क्षत्रियको शिष्य कैसे बनायें. राजाने कहा कुछ भूमि ग्रहण कर यहां मठ स्थापित करें. उन्होंने जवाब दिया “हम कहीं ओर जायेंगे. हमें वित्तसे क्या प्रयोजन है. हमें गोकुलचन्द्रने सब कुछ दिया है. हम यहां भूमि लेकर क्या करेंगे. इसे ब्राह्मणको दे दीजिये” ऐसा कहा. राजाने उन्हें वस्त्रशाठी (एक तरहका वस्त्र) देकर जुलूस निकलवाया और नगरका भ्रमण कराया. फिर वे उत्तरको चले गये. इसके बाद सुखमयदास सन्तने प्रवेश किया.

श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजीकी
श्रीजगन्नाथपुरिकी यात्राका अतिप्राचीन ताड़पत्रमें
उड़िया भाषामें उपलब्ध होते वर्णनका हिन्दी अनुवाद

... शिलालिपि करवाया. इस देवमठमें कुछ दिन बाद अपने सम्प्रदायको श्रेष्ठ किया. फलाहारी मठमें रहकर श्रेष्ठत्वकेलिये विष्णुस्वामी सम्प्रदायके जैसे सेवाधिकार थे वैसे ही सेवाधिकार प्राप्त करनेकेलिये नाना विभूतियां दिखाई, यौगिक विभूतियां दिखाई. राजकर्मचारीयोंने कहा, यहां अन्य विभूतियोंका कोई मतलब नहीं है. भोग ही मूल है.

उन्होंने जब कहा कि ब्रह्मरन्ध्र या दोनों भ्रुहोंके बीचमें कपालान्त तक जो रक्तवर्णकी ज्योति है वहीं राधा-माधव क्रीडा करते हैं. इसलिये हमारे सम्प्रदायने रक्तवर्णका ऊर्ध्वपुण्ड्र ग्रहण किया. तो सब लोगोंने कहा, यह ठीक है.

ऐसे वल्लभाचार्यके शिष्य पुरुषोत्तमाचार्य आये. वे श्रेष्ठ हैं ऐसा दूतोंने राजाको कहा. राजाने कहा इनके कुलगुरुओंको हम जानते हैं. इसी सम्प्रदायके गोपीनाथ आचार्य आये थे, अब ये आये हैं. इनका मठ 'फलाहारी' मठके नामसे पहलेसे ही निर्धारित है. उस स्थानमें उनके निवासका ससम्मान प्रबन्धकर राजगुरुओंने कहा, आप आचार्यविभूति दिखाइये.

वे (आचार्य पुरुषोत्तम) बोले : हम गोकुलचन्द्रकी उपासना करते हैं और गीतगोविन्द ग्रन्थको श्रेष्ठत्व देते हैं. हमारे पास सब है. दूसरोंने कहा : गीतगोविन्दकी तरह शृंगाररसात्मक ग्रन्थ कैसे श्रेष्ठ हो सकता है? आचार्यने कहा : परमेश्वर सिंहासन पर बिराजमान है. ऐसी बात सुनकर राजा चुप हो गये. इसी समय वैशाखकी त्रयोदशीमें चन्दनयात्राकी चाप (भगवानको नावमें बैठाकर चन्दनके तालाबमें घुमाया जाता है उसे 'चाप' कहते हैं) हो रही थी. तभी आचार्य दुःखित हो वापस चले गये. वे जब मुक्तेश्वरमें थे तब राजाको स्वप्नादेश हुआ. राजाने स्वप्न देखा कि परमेश्वर जगन्नाथ दोनों हाथोंमें शंख, चक्र और दूसरे हाथोंमें वेणु

धारण किये हुवे हैं. चिन्तामणि कृष्णका रूप देखकर राजा आनन्दित हो उठे. यही आचार्यद्वारा प्रतिपादित विग्रह था.

इसी रूपमें कृष्णके चिन्तामणिरूप स्वप्नमें दर्शन हुआ. इसलिये चन्दनयात्रामें सर्वदा प्रभुका वेश यही होता रहेगा. यह वेश या शृंगार श्रेष्ठ था. राजाके ४१वें वर्षमें जगन्नाथ वल्लभमठमें जहां जगन्नाथ इष्टरूपमें थे, वहां पुरुषोत्तम आचार्यके विधान अनुसार कृष्ण चिन्तामणि मूर्ति मुगनि पत्थरमें (एक तरहका काला चिकना पत्थर) गढकर हमेंशाकेलिये स्थापित किया गया. यहा आचार्य श्रेष्ठत्व लाभकर गोकुलकी यात्रापर निकल पडे. कुछ दिनों बाद वृद्धाचार्य नामक आचार्य आये.

શ્રીગોપીનાથપ્રભુચરણોંકે પ્રતિ શ્રીવિટ્ઠલેશપ્રભુચરણ લિખિત પત્ર

શ્રીનવનીતપ્રિય-મથુરાનાથ-દ્વારકાનાથ-ગોવર્દ્ધનધર-
વિટ્ઠલેશ્વર-મદનમોહન-ગોવર્દ્ધનધર-નવનીતપ્રિય-ચરણાવિન્દેષુ
અનુચરસ્ય પ્રણતયો નિવેદનીયઃ.

સ્વસ્તિ શ્રીમજ્જ્યેષ્ઠભ્રાતૃચરણકમલેષુ યવીયસો વિટ્ઠલસ્ય
પ્રણામકોટિ-નિવેદકોડયં પત્રદૂતઃ. શમ્ ઇહ, ભાવત્કમ્ આશાસે.
અહં ભગવદાજ્ઞયા રાસોત્સવપર્યન્તં શ્રીગોવર્દ્ધનચરણારવિન્દનિકટે
સ્થિતોડસ્મિ. હરિદ્વારં પ્રતિ આજ્ઞા ન જાતેતિ ન ગતમ્. અત્ર મમ અસ્વાસ્થ્યં
બહુ જાતમ્ આસીત્. ઉપવાસદશકં કૃતમ્. અધુના ભગવત્કૃપયા
શ્રીમત્કૃપયા ચ નૈરુજ્યં જાતમ્ અસ્તિ, કાપિ ચિન્તા ન કાર્યા.
અક્કા-અમ્મા-અત્તાચરણોષુ નતયઃ. અક્કા યથા ન દુઃખં કરોતિ
મમાસ્વાસ્થ્યં શ્રુત્વા તાદૃક્ કર્તવ્યમ્. ભવતાપિ કાપિ ચિન્તા ન કાર્યા.
મમ ભગવતિ સર્વત્ર. યાદવેન્દ્રપુરિષુ બ્રહ્માનન્દેષુ દીક્ષિતેષુ હરિહર-
નાગનાથ-ચૂડાદિષુ નમસ્કારાઃ. દ. વિષ્ણુદાસાદિષુ આશિષઃ. અત્રત્ય
વૈષ્ણવાનાં નતયઃ.

નિર્ભરં ક્રીડતોરાલિ મુદા કુઞ્જે વિવાસસોઃ।

અન્યોન્યસ્ય પ્રભૈવાસીદ્ અન્યોન્યમુચિતાંશુકમ્।।

અર્થ : સ્વસ્તિ શ્રીનવનીતપ્રિયજી શ્રીમથુરાનાથજી શ્રીદ્વારકાનાથજી 'શ્રીગોવર્દનધર
શ્રીવિલેશ્વર શ્રીમદનમોહન 'શ્રીગોવર્દનધર 'શ્રીનવનીતપ્રિયજી ના ચરણકમળમાં
અનુચરના-સેવકના પ્રણામો નિવેદન કરશો.

સ્વસ્તિ શ્રીમજ્જ્યેષ્ઠભ્રાતાના (શ્રીગોપીનાથજીના) ચરણકમલોમાં નાના
વિટ્ઠલના કોટિપ્રણામોને આ પત્રદૂત નિવેદન કરે છે. અત્ર કુશલ છે. આપના કુશલની
હું અભિલાષા રાખું છું.

હું ભગવદાજ્ઞાથી રાસોત્સવપર્યન્ત શ્રીગોવર્દનધરના^૪ ચરણારવિન્દ નિકટ રહ્યો
છું. હરિદ્વાર પ્રતિ જવાની આજ્ઞા ન થઈ તેથી જવાયું નથી. અહીં મને બહુ અસ્વાસ્થ્ય
થયું. દશ ઉપવાસ કર્યા, હવે ભગવત્કૃપાથી અને આપની કૃપાથી નીરોગિતા થઈ
છે. કાંઈ પણ ચિન્તા કરશો નહિ. અક્કાજી^૫ અમ્માજી^૬ અને અત્તાજીને^૭ પ્રણામ.
મારું અસ્વાસ્થ્ય સાંભળીને અક્કાજીને દુઃખ ન થાય તેમ કરશો. ભગવાનું સર્વત્ર (
રક્ષક) છે તેથી આપ મારી કંઈ પણ ચિન્તા કરશો નહિ. યાદવેન્દ્રપુરી. બ્રહ્માનન્દ
દીક્ષિત, હરિહર, નાગનાથ, ચૂડા આદિ સર્વને નમસ્કાર; વિષ્ણુદાસાદિ સર્વને
આશીર્વાદ. અત્રના વૈષ્ણવોના પ્રણામ.

હે સખિ ! જ્યારે વિવાસ પ્રભુ નિકુન્જમાં સ્વપ્રિયાજી સહ પ્રમોદવડે નિર્ભર
ક્રીડા કરે છે ત્યારે એક - એકથી પ્રભા જ અન્યોન્ય વચ્ચારછાદન થઈ રહી છે.

(અત્ર પત્ર પૂર્ણ થાય છે)

વિવેચન : આરમ્ભમાં શ્રીગોસ્વામીજી શ્રીનવનીતપ્રિયજીથી આરમ્ભી શ્રીદ્વિતીય
નવનીત પ્રિયજી (શ્રીબાલકૃષ્ણલાલ) પર્યન્ત સર્વ સેવ્ય સ્વરૂપને જ્યેષ્ઠભ્રાતા
શ્રીગોપીનાથજીદ્વારા પ્રણામ નિવેદન કરે છે આથી શ્રીગોસ્વામીજીનું અલૌકિક દેન્ય
અને શ્રીમજ્જ્યેષ્ઠભ્રાતા પ્રતિ એઓશ્રીનો અલૌકિક માનભાવ કેવો હતો તેનો આપણને
બોધ થાય છે.

શ્રીનવનીતપ્રિયાદિ સેવ્ય સ્વરૂપને પ્રણામ નિવેદન કરી એવા જ માનપૂર્વક
શ્રીગોસ્વામીજીપ્રભુચરણ શ્રીગોપીનાથજીને પણ અનેકશઃ પ્રણામ કરે છે. વળી
શ્રીગોપીનાથજીને 'શ્રીમજ્જ્યેષ્ઠભ્રાતૃચરણ' અને પોતાને માટે "યવીયસઃવિલસ્ય"
એ પદ લખે છે આથી આપણને દૈવોદ્ધારક શ્રીગોસ્વામીજીના દીનતાપૂર્ણ હૃદયનું
દર્શન થાય છે અને આ ઉપરથી અનુમાન થાય છે કે જ્યારે શ્રીગોસ્વામીજી
શ્રીગોપીનાથજી પ્રતિ આવો અનુપમ સ્નેહ દર્શાવે છે તો તેઓશ્રીએ (
શ્રીગોપીનાથજીએ) પણ ઘણા ગ્રન્થો રચ્યા હશે પણ હાલ તે ગ્રન્થો પણ અન્ય
સામ્પ્રદાયિક ગ્રન્થોની પેઠે ઉપલબ્ધ નથી. એઓશ્રીના રચેલા ગ્રન્થોમાં અમારા
જાણવા પ્રમાણે સાધનદીપક અને કેટલાંક સંસ્કૃત પદ્યો મુખ્યભાગમાં ભા. મા. પં.

ગઢુલાલજના ધર્મપુસ્તકાલયમાં સામ્પ્રદાયિક સાહિત્ય અઢ્યાપિ બહાર ન આવવાનાં બે મુખ્ય કારણ દષ્ટિગોચર થાય છે. દેવોદ્ધારપ્રયત્નાત્મા શ્રીમહાપ્રભુજના સમયથી હાલ સુધીમાં સામ્પ્રદાયિક સંસ્કૃત ગ્રન્થો કેટલા રચાયેલા છે તેમાંથી કેટલા હાલ બિરાજે છે અને તે ક્યાં-ક્યાં વિરાજે છે એ પણ સમ્પૂર્ણશઃ કોઈને વિદિત નથી ! અવ્યવસ્થાને સમય બહુ થઈ ગયો છે તેથી ગ્રન્થોનાં નામ-ઠામ જાણવાને જોઈતાં સાધનો પણ ઉપલબ્ધ નથી અને તેથી આ દિશામાં પ્રયત્નની વિશેષ આવશ્યકતા છે. વળી ગ્રન્થો હાલ વિરાજે છે તેમાંના પણ કેટલાક એવા સ્થાનમાં છે કે જેના રક્ષક સજ્જનોની વૃત્તિથી તેનાં દર્શન થવાં પણ દુર્લભ થઈ પડ્યાં છે. ઉપર્યુક્ત મુમ્બાપુરીસ્થ ભા. મા. પં. ગઢુલાલજના ધર્મપુસ્તકાલયનો પરિચય મને ચાર - પાંચ વખત થયો છે અને ત્યાંના સામ્પ્રદાયિક ગ્રન્થસાહિત્યનાં દર્શન કરવામાં ત્યાંના પણ રાજસ - તામસ પ્રકૃતિના વ્યવસ્થાપકોને લીધે હું નિષ્ફલ થયો છું એમ અહીં મારે સખેદ પ્રકટ કરવું પડે છે સામ્પ્રદાયિક સાહિત્ય જે-જે સ્થળે હોય તે-તે સ્થળના નેતા પુરુષોએ તે સાહિત્યના જાણનાર જ્ઞાસુ હરકોઈ વૈષ્ણવને અનુકૂલતા કરી આપવી એ પોતાની ફરજ છે એવી સમજ તેમને પ્રભુ આપે એમ પ્રાર્થના કરું છું. આવા વિપરીત સંયોગોમાં માત્ર શ્રીમહાપ્રભુકૃણાનું પ્રમેયબલ જ વિજય પ્રાપ્તિ કરાવે એમ છે. એવા પ્રમેયબલને જ અવલમ્બીને સામ્પ્રદાયિક ધીમાન્ અને શ્રીમાન્ વૈષ્ણવોની પરિષદ્ને સામ્પ્રદાયિક ઉન્નતિને અર્થે યોગ્ય સહાય થાય તો જ વૈષ્ણવહૃદય સમ્પ્રદાયસ્વરૂપને જાણી અવલોકી કૃતકૃત્ય થાય.

શ્રીગોસ્વામીજ જેમ અન્ય પત્રમાં “શ્રીગોકુલનાથ સ્વયં આપણું ઐહિક અને પારલૌકિક થયા છે” એમ આજ્ઞા કરે છે તેમ આ પત્રથી પણ અત્ર ફલિત થાય છે કે શ્રીગોસ્વામીજ ઐહિક-પારલૌકિક સર્વ સાક્ષાત્ ભગવદાજ્ઞા પ્રમાણે જ કરતા. ભગવદાજ્ઞા નહિ હોવાથી એઓશ્રી હરિદ્વાર નહિ જતાં શ્રીગોવર્ધનધરણની સમીપમાં જ રહ્યા. ત્યાં અસ્વાસ્થ્ય થતાં પોતે દશદિવસ પર્યન્ત ઉપવાસ કર્યાનું લખે છે અને “હમણાં ભગવત્કૃપા અને શ્રીમાન્ની કૃપાથી નૈરુજ્ય પ્રાપ્ત થયું છે એમ જણાવે છે. અત્ર નૈરુજ્યપ્રાપ્તિનું પણ સાધન ઔષધાદિ નહિ પણ ભગવાન્ની જ કૃપા છે એમ બોધ થાય છે. ભગવદાશ્રિત જનને સુખની પ્રાપ્તિનું સાધન માત્ર ભગવાન્ની કૃપા જ છે આથી કોઈ પણ અવસ્થામાં ભગવજ્જને તો ભગવદાશ્રય જ કર્તવ્ય છે. પોતાનું અસ્વાસ્થ્ય જાણીને શ્રીઅક્કામાજને દુઃખ ન થાય તેમ કરવા શ્રીગોપીનાથજને વિજ્ઞાપન કરે છે તે શ્રીગોસ્વામીજનો માતૃસ્નેહ સૂચવે છે અને તેઓશ્રીને પણ રમેશપ્રભુ શ્રીગોવર્ધનધર સર્વત્ર રક્ષક છે તેથી પોતાને માટે કાંઈ પણ ચિન્તા ન કરવી

એમ લખે છે. અન્તમાં પોતાની પાસેના સર્વ વૈષ્ણવોના દણડવત્ પ્રણામ જણાવી સુખનિધિ શ્રીનિકુન્જનાયકની પરમનિગૂઢ રસમય કીડા વર્ણવતાં પત્ર પૂર્ણ કરે છે.

(‘પુષ્ટિભક્તિસુધા’ શ્રીવલ્લભાબ્દ ૪૩૭ અંક : ૮-૯)

ટિપ્પણી :

૧. આ રાસેશ્વર શ્રીગોકુલચન્દ્રમાજ સમજવા, જે હાલ કામ્યવનમાં બિરાજે છે.
૨. શ્રીગોવર્ધનધર તે શ્રીગોકુલસ્થ શ્રીગોકુલનાથજ સમજવા.
૩. આ શ્રીનવનીતપ્રિય તે શ્રીસુરતિગ્રામસ્થ શ્રીબાલકૃષ્ણ સમજવા.
૪. શ્રીગુસાંઈજ શ્રીગિરિરાજમાં શ્રીનાથજ પાસે બિરાજતા હોવાથી ઉપલા બે શ્રીગોવર્ધનધર ક્રમશઃ શ્રીગોકુલચન્દ્રમાજ અને શ્રીગોકુલનાથજ જ હોવાનું પ્રમાણ પ્રાપ્ત થાય છે. જ્યેષ્ઠ ભાઈ શ્રીગોપીનાથજ શ્રીગોકુલમાં બિરાજે છે જ્યાં શ્રીનવનીતપ્રિયજ તથા સાત સ્વરૂપ પણ બિરાજતાં હતાં.
૫. માતૃચરણ શ્રીમહાલક્ષ્મીજ. ૬. શ્રીમહાલક્ષ્મીજનાં માતૃચરણ. ૭. ફોઈ.

श्रीगोपीनाथजिन्महोत्सवः

निरूप्यन्ते तु भक्तार्थम् अथाश्विनमहोत्सवाः
 आश्विनस्यासिते पक्षे द्वादश्यां करुणानिधेः॥
 श्रीवल्लभप्रतिनिधिं गोपीनाथं स्वमात्मजम्॥१॥
 प्रकटीकृतवान् स्वस्य स्वरूपज्ञापनाय हि॥
 दयया निजभक्तेषु स्वभक्तानन्दसिद्धये॥२॥
 अतस्तत्रोत्सवः कार्यः स्वमार्गस्थैस्तु सर्वथा॥
 तत्राभ्यङ्गं कारयित्वा वस्त्रैः काश्मीररञ्जितैः॥३॥
 भूषयित्वा भूषणैश्च भोज्यैश्च विविधैस्तथा॥
 भोजयित्वा गोकुलेशं ताम्बूलादिकमर्पयेत्॥४॥
 ततश्च तिलकं कृत्वा कुङ्कुमेन सुशोभनम्॥
 कुर्यादारार्तिकं प्रेम्णा प्रणमेच्च मुहुर्मुहुः॥५॥
 श्रीवल्लभप्रतिनिधे गोपीनाथ तदङ्गज॥
 पाहि तद्भक्तिदानेन नमस्ते करुणानिधे॥६॥
 एवं यः प्रयतो भक्त्या तद्भक्तीच्छुश्च सर्वथा॥
 प्रत्यब्दम् उत्सवं कुर्यात् स्वाचार्याणाञ्च तुष्टये॥७॥
 तस्य श्रीवल्लभाचार्याः प्रसीदन्ति न संशयः॥
 स्वस्वरूपप्रदानेन तिष्ठन्ति च सदा हृदि॥८॥

प्रकाशक : श्रीबालकृष्णशुद्धाद्वैतमहासभा, सुरत

सम्पादक : गो.वा. श्रीचिमनलाल शास्त्री.

रने ते रमता दीहडा, अलद्वेव श्रीगोविन्द ।
 ते पुत्र भावे प्रकटशे, मन उपन्यो आनन्द ॥
 अलद्वेव श्रीगोपीनाथ कहीअे, श्रीविट्ठल नन्दानन्द ।
 ते वेद पन्थ विस्तारशे, जन आपशे आनन्द ॥
 (श्रीवल्लभाभ्यान २-२३,२४)

आ तोरणा पर्णा सहकारनां, धरणिष्ये चन्दन तणां नीर ।
 आ वीर श्रीगोपीनाथ, श्रीविट्ठल प्रगटिया ॥
 (श्रीवल्लभाभ्यान ३-११)

नित्य प्रति क्षाणुं-क्षाणुं समरिष्ये, श्रीवल्लभनो परिवार रे रसना ॥
 श्रीपुरुषोत्तम प्रगटिया, जगतनो करवा उद्धार रे रसना ॥१॥
 कलिभां कारण ओह छे, भीष्णुं सर्वे भूमिनो भार रे रसना ॥
 अे विना भीष्णुं सर्वे पादलुं, यौह लोकनो शरणार रे रसना ॥२॥
 ‘गोपीनाथल’ सोहामणा, नव जल धन तनु भाण रे रसना ॥
 सुभ दाता लघु आताना, पूरण पुरुष प्रमाण रे रसना ॥३॥
 लक्ष्मी सत्यभामा अे बेउ, अग्रजनी अनुहार रे रसना ॥
 श्रीनवनीतप्रियलने रीजव्या, सेवा विविध प्रकार रे रसना ॥
 (श्रीवल्लभाभ्यान ६।१-३)

भूल पुरुष

कष्टुक दिन रही सन ले आये, असे अडेलमें निज हरणाये ।
 संवत पन्द्रहा सदसठ आयो, आसो वहि द्वादशी शुभ गायो ॥

गाथो श्रीगोपीनाथल, ७५ ७५ लीनो आयके ।
७ानि ५लको इप ६रभित, ६ेत ६ान ५ढायके ॥

(भूल पुरुष १७)

श्रीवल्लभवंशावली

प्रगटे श्रीआचार्यजी दीक्षित ह्ये हिय भक्ति ।
तिनके जेठे पुत्र हैं गोपीनाथजी व्यक्ति ॥१०॥
संवत पद्रह सत्तरा द्वादसि वदि आसोज ॥
जन्म श्रीगोपीनाथजी प्रफुलित वदन सरोज ॥११॥
तिनके पुरुषोत्तम भये सत्या कन्या जानि ॥

(कवि जगतानन्द विरचित 'श्रीवल्लभवंशावली')

१. वि.सं. १५६७ प्रसिद्ध है.
२. "लक्ष्मी सत्या जानि" गो.वा. श्रीद्वारकादास परीखके अनुसार ऐसा पाठ होना चाहिये.

धोण

श्रीलक्ष्मणभट्टने घेर ऐ कुणदीवो रे ...

श्रीअक्काल कूभे अवतर्या सुभकारी रे,

गोपीनाथ श्रीविट्ठलनाथ ऐ पर वारी रे.

अलद्वेव श्रीगोपीनाथने ७ाणो रे

...

ऐ शोभा ७ोर्ध ६रिदास ७थ अलिलारी रे,

ऐ लीला गा७ो नित्य नरने नारी रे. श्रीलक्ष्मण.

श्रीलक्ष्मणभट्टनां भावे ली७े भाभाणां,

तैलनलिलक ने विप्रशिरोमणि भूप७ो;
ऐलुना सुत श्रीवल्लभनां लेई वारणां,
द्वि७वर इपे प्रकट्या अनल अनूप७ो.
धर्मधुरंधर ऐ सुत श्रीवल्लभद्वेवना,
प्रकट करवा वेदतणो विस्तार७ो;
गुणसमुद्र भरिया श्रीगोपीनाथल,
६ण-मुशणधर ६णधरनो अवतार७ो.

... ..

७मनादास अधम ते छे आधनो,
ते शुं ७ाणो श्रीवल्लभकुलनो भर्म७ो.

हुं अलिलारी तैलनकुलदीपक,

श्रीलक्ष्मण तातने रे लोल;

ते कुल प्रकट्या श्रीवल्लभद्वेव,

७गतहितकारणो रे लोल.

ऐमना ऐ सुत परम कृपाल,

के यतुर शिरोमणि रे लोल;

श्रीगोपीनाथ श्रीविट्ठलनाथ,

के अम शिर ऐ धाणीरे लोल.

... ..

श्रीभ्र७भूषण ७ोर्ध भुभयंद्र,

के ७थ वारणो रे लोल. हुं अलिलारी

श्रीलक्ष्मण सुतने रे ६ेली;

ऐमने निरभो सरवे प६ेली ॥

ऐमना गुणने ७े गाशो;

તેહુના ભવનાં પ્રાર્થિત જાશે ॥
સુત ગોપીનાથ શ્રીવિટ્ઠલ જાયા;
જાણિયે કલ્પવૃક્ષની છાયા ॥
પ્રગટ્યા દૈવી જીવ હિતકારી;
મુખ છબિ ઉપર જાઉં બલિહારી ॥
... ..
એ શોભા જોઈ હરિદાસ ગુણ ગાયો;
એ છબિ લોચનમાં ન સમાયે ॥

ઠકરાણી ઘાટ રળીયામણો રે,
છોંકર લહેકે બહાર રે ।
મારું શ્રીગોકુલ રળીયામણું રે. ટેક.
શ્રીવલ્લભ બિરાજતા રે,
શ્રીવિલનાથજીના તાતરે. મારું શ્રીગોકુળ...૧
ગુણવંતા શ્રીગોપીનાથજી રે,
અગ્રજનો અવતાર રે, મારું શ્રીગોકુળ...૨

શ્રીલક્ષ્મણભટ્ટજીનાં નન્દ રે, સમરું શ્રીવલ્લભને,
... ..
સાખી
શ્રીમદ્વિલનાથજી, શ્રીગોપીનાથ સોહાય;
ચરણકમલની રજ થકી, મહાપતિત પાવન થાય રે. સમરું...

પોષ નોમે શ્રીવિટ્ઠલનાથજી,
હરિ વાલો પ્રગટ્યા શ્રીવલ્લભ દ્વારજો ॥
એમને જોવાને થઈ વ્યાકુલી,

હરિ વાલે કીધી સેવકની સાહ્ય જો ॥
પ્રથમ શ્રીનન્દ ઘેર પ્રકટીયા,
હરિ વાલે પૂર્યા શ્રીયશોદાજીના કોડ જો ॥
રમતા સખા સહુ સાથમાં,
હરિ વાલો હરિ-હલધરજીની જોડ જો ॥
હરિ વાલો શ્રીવલ્લભગૃહ અવતર્યા,
હરિ વાલો શ્રીગોપીનાથજીના બ્રાત જો ॥

શ્રીલક્ષ્મણ ભટ્ટજીને ઘેર એ કુલદીવો રે ॥
ભલે પ્રગટ્યા શ્રીવલ્લભરાય એ ઘણું જીવો રે ॥
એહુના સુત છે બે અતિશે રૂડા રે ॥
જેનું ન નમ્યું એમને શીશ તે જન કૂડા રે ॥
શ્રીઅક્ષાજી કૂખે અવતર્યા સુખકારી રે ॥
શ્રીગોપીનાથ શ્રીવિટ્ઠલનાથ એ પર વારી રે ॥
બળદેવ શ્રીગોપીનાથજીને જાણો રે ॥

॥साधनदीपिका॥

(मङ्गलाचरण)

ता नः श्रीतात-पत्-पद्मरेणवः कामधेनवः॥

नाकस्य तरवोऽन्येषां स्युः कल्पतरवो यथा॥१॥

यथा=जैसे	नः=हमारे (तु=तो)
अन्येषां=अन्यन्की	ताः=वो
(इच्छापूरकाः=इच्छाकी	श्रीतात-पत्-पद्मरेणवः=
पूर्ति करिवेवारे)	पिताके चरणकमलन्की रज
नाकस्य=स्वर्गके	(एव=ही)
तरवः=वृक्ष	कल्पतरवः=कल्पतरु
कामधेनवः=कामधेनु	(कामधेनवः च=अरु कामधेनुरूप)
(च सन्ति तथा=होत हैं वेसे)	स्युः=होउ

भावार्थ : जैसे अन्यन्की इच्छाकी पूर्ति करिवेवारे स्वर्गके वृक्षें ओर कामधेनु होत हैं तेसे हमारेलिये तो हमारे पिता महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके चरणकमलन्की रज ही कल्पतरु अरु कामधेनु समान होउ.

ब्रह्म बीजाओनी इच्छापूर्ति करवावणा स्वर्गना कल्पवृक्ष अने कामधेनु होय छे तेभ अमाराभाटे तो अमारा पिता महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यना चरणकमलन्की रज कल्पतरु अने कामधेनु समान थाओ.

श्रुति-स्मृति-शिरोरत्न-नीराजित-पदाम्बुजम्॥

यशोदोत्सङ्गललितं वन्दे श्रीनन्दनन्दनम्॥२॥

श्रुति-स्मृति-शिरोरत्न-नीराजित-पदाम्बुजं=श्रुति-स्मृतिरूपी उत्तम रत्नन्सों जिनके चरणकमल शोभायमान हैं एसें

यशोदोत्सङ्गललितं=श्रीयशोदाजीकी गोदमें क्रीडा करते

श्रीनन्दनन्दनम्=श्रीनन्दरायजीके पुत्र श्रीकृष्णकों

(अहं=में) वन्दे=वन्दन करत हों

भावार्थ : श्रुति-स्मृतिरूपी उत्तम रत्नन्सों जिनके चरणकमल शोभायमान हैं एसें श्रीयशोदाजीकी गोदमें क्रीडा करते श्रीनन्दरायजीके पुत्र श्रीकृष्णकों में वन्दन करत हों.

श्रुति-स्मृति रूपी उत्तम रत्नोथी ब्रह्मोना चरणकमल अत्यन्त शोभी रह्यां छे अथवा यशोदाना भोलाभां भेलता, नन्दनन्द श्रीकृष्णने हुं वन्दन करुं छुं.

(या ग्रन्थमें उपदिष्ट बातन्में प्रमाण श्रुति स्मृति पुराण तन्त्र आदि शास्त्रन्की श्रीमदाचार्यचरणद्वारा प्रकट करि व्याख्या हे)

भक्तिमार्ग-वितानाय योऽवतीर्णो हुताशनः॥

सा एव नः परं मानं शेषमस्य प्रमान्तरम्॥३॥

यः=जा,	नः=हमारे काज
हुताशनः=अग्निने	परं=सर्वोत्कृष्ट
भक्तिमार्ग-वितानाय=	मानं (अस्ति)=प्रमाण हे
भक्तिमार्गके प्रचारके अर्थ	प्रमान्तरम्=अन्य सब प्रमाण
अवतीर्णः=अवतरित भये हैं	अस्य=याके
सा एव=वो ही	शेषम् (अस्ति)=अङ्गभूत हैं

भावार्थ : भक्तिमार्गको प्रचार करिवेकों वैश्वानरस्वरूप श्रीवल्लभाचार्यचरणन्ने भूतलपे अवतार धारण कियो सो जिनके वचन ही हमकों परम प्रमाणरूप हैं, अन्य सब प्रमाण जिनके वचनन्के अङ्गभूत अथवा जिनसों गौण प्रमाण हैं.

भक्तिभार्गनो प्रथार करवाभाटे वैश्वानरस्वरूप श्रीवल्लभाचार्यरणीओ भूतण
उपर अवतार धारण करीं छे तेभना वचनोळ अमाराभाटे परम प्रमाणरूप छे. भीळ
प्रमाणो अना अनभूत अथवा तेनी सरभाभाणीभां गौण प्रमाण छे.

वेदत्रयी-शिरोभाग-सूत्र-व्याख्यान-सम्मताम्।।

भक्तिशास्त्रानुसारेण कुर्वे साधनदीपिकाम्।।४।।

वेदत्रयी-शिरोभाग-सूत्र-	भक्तिशास्त्रानुसारेण=
व्याख्यान-सम्मताम्=तीनों वेदके	भक्तिशास्त्रके अनुसार
शिरोभागरूप उपनिषद् ब्रह्मसूत्रके	साधनदीपिकाम्=साधनदीपिकाकी
भाष्यसों अविरोद्ध प्रकारसों	रचना, (अहं)कुर्वे=में करूं हूं

भावार्थ : तीनों वेदके शिरोभागरूप उपनिषदों लिखे गये ब्रह्मसूत्रके उपर महाप्रभु
श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित भाष्यतें अविरोद्ध प्रकारसों भक्तिशास्त्रके अनुसार
'साधनदीपिका' ग्रन्थकी रचना में करूं हूं.

त्रणे वेदोना शिरोभागरूप उपनिषद् उपर लभायेला ब्रह्मसूत्र परना महाप्रभु
श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित भाष्यथी अविरोद्ध प्रकारे भक्तिशास्त्रना अनुसार
'साधनदीपिका' ग्रन्थनी रचना हुं करूं हूं.

(श्रीहरिभजनकी आवश्यकताके उपपादनके साथ ग्रन्थको उपक्रम)

“आत्मा वार” इति श्रुत्या दर्शनैकफलो विधिः।।

श्रवणाद्यैः प्रतिज्ञातः “तं भजेत्” – “तं रसेदि”ति।।५।।

“तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।।

श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्”।।६।।

पुरुषस्याविशेषेण संसारं प्रजिहासतः।।

हरेर् आराधने मुक्तिः

आत्मा=परमात्मा

वा अरे=अवश्य, इति=या

श्रुत्या=श्रुतिसों

श्रवणाद्यैः=श्रवण आदि करिवेसों

दर्शनैकफलः=दर्शन ही जहां फल

होत हे एसी, विधिः=विधि

प्रतिज्ञातः=कही हे

तं=वाको, भजेत्=भजनकरे

तं=वाको

रसेत्=आनन्द अनुभव करे

इति=एसो(अपि=हु

उक्तम्)=कह्यो हे

“भारत=हे अर्जुन

तस्मात्=तातें

अभयम्=अभयकूं

इच्छता=इच्छवेवारेकों

ईश्वरः=ईश्वर

सर्वात्मा=सबन्के आत्मा

भगवान्=भगवान्

हरिः=श्रीकृष्ण

श्रोतव्यः=श्रवण करिवेयोग्य

कीर्तितव्यः=कीर्तन करिवेयोग्य

च=अरु , स्मर्तव्यः=स्मरण

करिवेयोग्यहे

संसारं=संसारकों

प्रजिहासतः=छांडिवेकी इच्छा

करिवेवारे, पुरुषस्य=पुरुषकूं

अविशेषेण=समानरूपसों

हरेः=हरिके

आराधने=आराधनमें

मुक्तिः=मुक्ति

(भवति)=होतहे

भावार्थ : “आत्माको दर्शन करनो चाहिये, श्रवण करनो चाहिये, मनन करनो
चाहिये, निदिध्यासन करनो चाहिये” या श्रुतिवचनमें परमात्मदर्शनके अर्थ परमात्माके
श्रवण-मनन-निदिध्यासनकी आज्ञा हे. तसें ही “वाको भजन करे” “वाको
रसानुभव करे” एसेहु श्रुतिवचन हैं।।५।।

श्रुतिकी न्याई स्मृतिमें हु “तासों हे भारत अभय प्राप्त करिवेकी इच्छा
राखिवेवारे मनुष्यकूं सबन्के आत्मा, भगवान्, ईश्वर श्रीहरिको श्रवण-कीर्तन-
स्मरण करने चाहिये” एसे कह्यो हे।।६।।

इन सब वचननों यह सिद्ध होत हे के अहन्ता-ममतात्मक संसारकूं छांडिवेकी
इच्छा करिवेवारे मनुष्यकों प्रभुको आराधन ही मुक्तिरूप जाननो।।७।।

“આત્માનું દર્શન કરવું જોઈએ, શ્રવણ કરવું જોઈએ, મનન કરવું જોઈએ, નિદિધ્યાસન કરવું જોઈએ” આ શ્રુતિવચનમાં પરમાત્મદર્શન માટે પરમાત્માના શ્રવણ-મનન-નિદિધ્યાસન કરવાની આજ્ઞા છે. તે જે પ્રમેણે “તેનું ભજન કરે” “તેનો રસાનુભવ કરે” એવા વચનો પણ છે.

શ્રુતિની જેમ સ્મૃતિમાં પણ “માટે હે ભારત ! સર્વાત્મા, ભગવાન, હરિ, ઈશ્વરનું અભય ઇચ્છતા મનુષ્યે શ્રવણ-કીર્તન-સ્મરણ કરવું જોઈએ” એમ કહ્યું છે.

આ બધા વચનોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે અહન્ટા-મમતાત્મક સંસારને છોડવાની ઇચ્છાવાળા મનુષ્યે પ્રભુના આરધનનેજ મુક્તિરૂપ જાણવું.

(તહાં ક્યોં અરુ કેસો ગુરુ આવશ્યક હોત હે તાકો નિરૂપણ)

.....તત્પ્રકારો નિરૂપ્યતે ॥૭॥

“માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વોહિ સુદૃઢઃ સર્વતોડધિકઃ ॥

સ્નેહો ‘ભક્તિ’રિતિ પ્રોક્તઃ તયામુક્તિર્ન ચાન્યથા” ॥૮॥

માહાત્મ્યજ્ઞાપનાયૈવ શ્રવણં ગુણકર્મણામ્ ॥

શાસ્ત્રાણામ્ ઉપયોગોડત્ર તત્રાકાંક્ષા ગુરોર્ ભવેત્ ॥૯॥

“કૃષ્ણાસેવા-પરં વીક્ષ્ય દમ્ભાદિ-રહિતં નરમ્ ॥

શ્રીભાગવતતત્ત્વજ્ઞં ભજેત્ જિજ્ઞાસુરાદરાત્” ॥૧૦॥

(અતઃ પરં)=તાસોં અબ
તત્પ્રકારો=વાકે પ્રકારકો
નિરૂપ્યતે=નિરૂપણ કરત હોં
માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વઃ=માહાત્મ્યકે
જ્ઞાનપૂર્વક, હિ=નિશ્ચિતરૂપસોં
સુદૃઢઃ=સુદૃઢ
સર્વતોધિકઃ=સબસોં અધિક
સ્નેહઃ=સ્નેહ, ભક્તિઃ=ભક્તિ હે

એવ=નિશ્ચિતરૂપસોં
(સાધનમ્)=સાધનહે, અત્ર=યામોં
શાસ્ત્રાણામ્=શાસ્ત્રનુકો
ઉપયોગઃ=ઉપયોગ/આવશ્યકતા
(અસ્તિ)=હોતહે
તત્ર=તામોં
ગુરોઃ=ગુરુકી
આકાંક્ષા=આવશ્યકતા

ઇતિ=એસોં, પ્રોક્તઃ=કહ્યો હે
તયા=તાતોં
મુક્તિઃ=મુક્તિ હોત હે
અન્યથા=ઓર કાહુ પ્રકારસોં
ન ચ=નાહોં હોત હે
માહાત્મ્યજ્ઞાપનાય=માહાત્મ્યકો
જનાયવેકે કાજ
ગુણકર્મણામ્=ગુણ-કર્મનુકો
શ્રવણમ્=સુનનો

ભવેત્=હોતહે, જિજ્ઞાસુઃ=
જ્ઞાન પ્રાપ્તિકી ઇચ્છાવારો
કૃષ્ણાસેવાપરં=કૃષ્ણાસેવામોં તત્પર
દમ્ભાદિરહિતં=દમ્ભઆદિસોંરહિત
શ્રીભાગવતતત્ત્વજ્ઞં=ભાગવતપુરાણકે
તત્ત્વકોં જાનિવેવેરે, નરમ્=નરકોં
વીક્ષ્ય=પરીક્ષણ કરિકે
આદરાત્=આદરસોં
ભજેત્=ભજન કરે

ભાવાર્થ : તાસોં અબ ભગવદ્ભજનરૂપ મુક્તિકી પ્રાપ્તિ જા સાધનસોં હોય વા સાધનકે પ્રકારકો નિરૂપણ કરત હોં. શાસ્ત્રમોં ભક્તિકે લક્ષણકો નિરૂપણ “પ્રભુકે માહાત્મ્યકે જ્ઞાન પૂર્વક પ્રભુમોં સુદૃઢ અરુ સબસોં અધિક સ્નેહ ઇતનોં ભક્તિ એસોં કહ્યો હે. એસી ભક્તિસોં હી મુક્તિ હોત હે, અન્ય કાહુ પ્રકારસોં મુક્તિ નાહોં હોત હે” યા પ્રકારસોં કહ્યો હે ॥૮॥

યા વચનમોં પ્રભૂનુકે ગુણ-કર્મનુકો શ્રવણ કરનો તાકોં માહાત્મ્યજ્ઞાનકો સાધન કહ્યો હે. સો તો શાસ્ત્રતોં હોઈ સકત હે તાતોં શાસ્ત્રકે અધ્યયનકી આવશ્યકતા પરત હે. શાસ્ત્રકો અધ્યયન ગુરુ વિના ન સમ્ભવે તાતોં ગુરુકોં હી સર્વપ્રથમ સાધન માન્યો ગયો હે ॥૯॥

તાતોં પ્રભૂનુકો માહાત્મ્યજ્ઞાન પ્રાપ્તિ કરિકેકી ઇચ્છાવારો જીવ જો કૃષ્ણાસેવામોં તત્પર હોય, દમ્ભ આદિસોં રહિત હોય અરુ શ્રીમદ્ભાગવતપુરાણકે તત્ત્વકોં જાનિવેવારે નરકો પરીક્ષણ કરિકે આદરસોં ભજન કરે ॥૧૦॥

તેથી હવે ભગવદ્ભજનરૂપી મુક્તિની પ્રાપ્તિ જે સાધનથી થઈ શકે તે સાધનનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે. શાસ્ત્રમાં ભક્તિના લક્ષણનું કથન “પ્રભુના માહાત્મ્યના જ્ઞાન પૂર્વક પ્રભુમાં સુદૃઢ અને સહુથી અધિક સ્નેહ એટલે ‘ભક્તિ’. આવી ભક્તિથી જ મુક્તિ મળે છે, અન્ય કોઈ પ્રકારે નહીં” આ પ્રમાણે કહ્યું છે.

આ વચનમાં પ્રભુના ગુણ-કર્મોનું શ્રવણ કરવું તેને માહાત્મ્યજ્ઞાનનું સાધન કહેવામાં આવ્યું છે. આ કાર્ય તો શાસ્ત્રથીજ થવું શક્ય હોવાથી સર્વપ્રથમ શાસ્ત્રના અધ્યયનની આવશ્યકતા હોય છે. શાસ્ત્રનું અધ્યયન ગુરુ વિના થઈ ન શકે તેથી સર્વપ્રથમ સાધન ગુરુને માનવામાં આવે છે.

તેથી પ્રભુના માહાત્મ્યજ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાવાળો મનુષ્ય જે કૃષ્ણસેવામાં તત્પર હોય, દમ્ભ આદિથી રહિત હોય અને શ્રીભાગવતપુરાણના તત્ત્વને જાણતો હોય તેવા નરની પરીક્ષા કરીને આદરથી ભજન કરે.

(સ્વમાર્ગીય ગુરુનો પ્રથમ કર્તવ્ય : ભગવત્પ્રપત્તિકે કાજ દૈવી જીવનકો પ્રેરિત કરનો)

દેહદ્રોણ્યા યિયાસૂનાં પરં પારં ભવામ્બુધેઃ॥

ગુરુના કર્ણધારેણ *હ્યુત્તાર્યા સ્વોપદેશતઃ॥૧૧૧॥

“યો બ્રહ્માણં વિદધાતિ પૂર્વં યોવૈ વેદાંશ્ચ પ્રહિણોતિ તસ્મૈ॥

તં હ દેવમ્ આત્મ-બુદ્ધિપ્રકાશં મુમુક્ષુર્વૈ શરણમહં પ્રપદ્યે”॥૧૨॥

“સર્વધર્માન્ પરિત્યજ્ય મામેકં શરણં વ્રજ ”॥

ઈતિ શ્રુત્યા તથા સ્મૃત્યા પ્રપત્યાદેશમાદિતઃ॥૧૩॥

દેહદ્રોણ્યા=દેહરૂપીનાવદ્વારા

તં=વા, હ=પ્રસિદ્ધ

ભવામ્બુધેઃ=ભવસાગરની

આત્મબુદ્ધિપ્રકાશં=આત્મતયા

પરં=પલ્લી, પારં=પાર

બુદ્ધિસો પ્રકાશિત હોયવેવારે

યિયાસૂનાં=જાયવેકીઈચ્છાવારેકો

દેવમ્=દેવકો, અહં=મેં

સ્વોપદેશતઃ=અપને ઉપદેશનસો

મુમુક્ષુઃ=મુક્ત હોયવેકી ઇચ્છાવારો

હિ=હી

વૈ=પૂર્ણરૂપસો, શરણં=શરણ

કર્ણધારેણ=કર્ણધારરૂપી

પ્રપદ્યે”=જાત હોં

ગુરુના=ગુરુદ્વારા

સર્વધર્માન્=સબ ધર્મનકો

ઉત્તાર્યાઃ=પાર ઉતારને ચહિયે

પરિત્યજ્ય=પૂર્ણતયા છાંડિકે

યઃ=જો, પૂર્વં=પહિલે

મામ્=મેરે, એકં=એકકે

બ્રહ્માણં=બ્રહ્માજીકો

શરણં=શરણ, વ્રજ=આય જા

વિદધાતિ=બનાવત હે

ઈતિ=એસી, શ્રુત્યા=શ્રુતિનમેં

યઃ=જો, વૈ=નિશ્ચિતરૂપસો

તથા=અરુ, સ્મૃત્યા=સ્મૃતિનમેં

તસ્મૈ=વિનકો, વેદાન્=વેદનકો

આદિતઃ=પ્રારમ્ભસો

ચ=હુ, પ્રહિણોતિ=દાનહુદેતહેં

પ્રપત્યાદેશમ્=શરણાગતિકોઆદેશહે

ભાવાર્થ : દેહરૂપી નાવકે દ્વારા સંસારસમુદ્રકી પલ્લીપાર જાયવેકી ઇચ્છાવારેકી નાવકો તાકો કર્ણધાર-નાવ ખેયવેવારો ગુરુ અપને ઉત્તમ ઉપદેશનતેં પાર ઉતારે॥૧૧॥

શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદમેં કહયો હે જો “જો પૂર્વમેં બ્રહ્માજીકો પ્રકટ કરત હે અરુ તિનકો વેદનકો દાન દેત હેં વા આત્મબુદ્ધિસો પ્રકાશિત હોયવેવારે દેવકી શરણમેં મેં જાત હોં”॥૧૨॥

ભગવદ્ગીતામેંહુ ભગવાનનેં સ્વમુખસો અર્જુનકો આજ્ઞા કીનિ હે જો “સબ ધર્મનકો ત્યાગ કરિકે કેવલ મેરે શરણ આવ” એં શ્રુતિ અરુ સ્મૃતિ મેં સર્વ પ્રથમ શરણાગત હોયવેકો આદેશ હે॥૧૩॥

દેહરૂપી હોળીદ્વારા સંસારસમુદ્રના પેલે પાર જવાની ઇચ્છાવાળાની નાવને, તેનો કર્ણધાર-નાવિક ગુરુ પોતાના ઉત્તમ ઉપદેશોથી, પેલે પાર ઉતારે.

શ્વેતાશ્વતર ઉપનિષદમાં કહ્યું છે કે “જે પૂર્વે બ્રહ્માજીને પ્રકટ કરે છે અને તેઓને ત્રણ વેદોનું દાન કરે છે તે આત્મ-બુદ્ધિથી પ્રકાશિત થનાર દેવને શરણે હું જાઉં છું.

ભગવદ્ગીતામાં પણ ભગવાને સ્વમુખે અર્જુનને આજ્ઞા આપી છે કે “બધા ધર્મોનો ત્યાગ કરીને કેવળ મારા શરણે આવ”. આમ શ્રુતિ અને સ્મૃતિ માં સર્વ પ્રથમ શરણાગત થવાનો આદેશ છે.

(સ્વમાર્ગીય દ્વિજકુલકે શિષ્યનકો કર્તવ્ય)

પ્રેમ્ણોપદેશ-શ્રવણાત્ પ્રપત્તિઃ પ્રેમ-કારણમ્॥

અતો મૂલાભિષેકો હિ કાર્યસ્ તેનાસ્ય સેવને॥૧૪॥

નહિ દેહભૃતા શક્યં કર્મ ત્યક્તુમ્ અશેષતઃ॥

અતઃ સ્વધર્માચરણં ભાર-દ્વૈગુણ્યમ્ અન્યથા॥૧૫॥

स्वधर्माचरणं शक्त्या ह्यधर्मान्तु निवर्तनम्॥

इन्द्रियाश्व-विनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयं॥१६॥

इति भागवतो धर्मः श्रीमदाचार्य-सम्मतः॥

भक्ति-शास्त्रानुकूल्येन स्वधर्माचरणं भवेत्॥१७॥

प्रेम्णा=प्रेमके सहित	अन्यथा=नहिं तो
उपदेशश्रवणात्=उपदेश सुनिवेशों	भारद्वैगुण्यम्=दुगानो भार
प्रपत्तिः=शरणागति ही	(स्यात्)=होत हे
प्रेमकारणम्=प्रेमको प्रकट	शक्त्या=शक्ति अनुसार
करिवेको कारण कारण	हि=ही
(भवति)=होत हे	स्वधर्माचरणम्=स्वधर्मको आचरण
अतः=तातें, तेन=वाकों	अधर्मात्=अधर्मतें, तु=तो
(मुमुक्षुणा)=मुमुक्षुकों	निवर्तनम्=सर्वथा दूर रहनो
अस्य=याके	इन्द्रियाश्वविनिग्राहः=इन्द्रियरूपी
(भागवतः)=भगवान्के	अश्वन्को निग्रह करनो
सेवने=सेवनमें	(एतत्)=ये, त्रयं=तीन
मूलाभिषेकः=मूलमें अभिषेक	सर्वथा=कबहु, न=नाहीं
कार्यं=करनो	त्यजेत्=त्यागने
देहभृता=देहवारेतें	इति=ये, श्रीमदाचार्यसम्मतः=
कर्मः=कर्मको	श्रीवल्लभाचार्यजीकों मान्य
अशेषतः=पूर्णरूपसों	भागवतः=भगवत्सम्बन्धि
त्यक्तुं=त्याग करनो	धर्मः=धर्म(अस्ति)=हे
न=नाहीं, हि=ही	स्वधर्माचरणं=स्वधर्मको आचरण
शक्यम्=सम्भवहे, अतः=तातें	भक्तिशास्त्रानुकूल्येन=
स्वधर्माचरणम्=स्वधर्मानुसार	भक्तिशास्त्रके अनुकूल रहिके
आचरण(कार्यं)=करनो	भवेत्=होत हे

भावार्थ : उपर्युक्त लक्षणवारे गुरुके मुखतें श्रद्धाप्रेमसों भगवच्छास्त्रके उपदेशको श्रवण करिवेतें भक्तिके कारणरूप भगवान्को शरण सिद्ध होत हे. कलिकालमें कल्याणकारी सब शास्त्रीय साधन जब दुःसाध्य होय गये हैं तब अन्यान्य साधनमें श्रम नहीं करिके सर्वमूलभूत भगवत्-शरणरूप उपायको ही सेवन करनो॥१४॥

देहधारीतें कर्मन्को पूर्णरूपसों त्याग सम्भव नहीं होत हे. तासों अपने-अपने वर्ण अरु आश्रम के धर्मानुसार कर्म करने. एसें न करे तो स्वधर्माचरणकी उपेक्षा अरु स्वच्छन्द आचरण एसें दोष आय परें॥१५॥

तासों शक्ति अनुसार स्वधर्मको आचरण करनो, अधर्माचरण सर्वथा न करनो ओर इन्द्रियरूपी अश्वन्को विशेषरूपसों निग्रह करनो. इन तीनों बातन्को त्याग सर्वथा न करनो॥१६॥

या प्रकारको भागवत धर्म महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यकों मान्य हे. निज वर्णाश्रमधर्मके आचरण करिवेमेंहु भक्तिशास्त्रसों अनुकूल वर्णाश्रमधर्मको आचरण करनो इतनो विशेष हे॥१७॥

उपरोक्त लक्षाणोवाणा गुरुना मुझे श्रद्धा-प्रेमथी भगवत् शास्त्रना उपदेशानुं श्रवण करवाथी जेनापडे भक्ति सिद्धथाय तेवुं भगवाननुं शरण प्राप्त थाय छे. कलिकाणमां कल्याणकारी प्रायः अधा शास्त्रीय साधनो ज्यारे दुःसाध्य बनी गयां छे त्यारे अन्यान्य साधनोमां श्रम न करीने अधानुं भूण जेवा प्रभुना शरणरूपी उपायनुं न सेवन करवुं.

शरीरधारीमाटे कर्मोना पूर्णपणे त्याग करवो शक्य नथी होतो. तेथी दरेक मनुष्ये पोत-पोताना वार्णं अने आश्रम ना धर्मानुसार कर्म करवा. जे आम करवामां न आवे तो स्वधर्माचरणानी उपेक्षा अने स्वच्छन्द आचरण आम जेवडे दोष लागे.

तेथी शक्ति अनुसार स्वधर्मनुं आचरण करवुं, अधर्मनुं आचरण सर्वथा न करवुं अने इन्द्रियोरुपी धोडावोने विशेषरूपथी अपुशामां राभवा. आ त्रणैय नो त्याग सर्वथा न करवो.

आ प्रकारनो भागवत धर्म महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने मान्य छे. पोत-पोताना वार्णाश्रमधर्मनुं आचरण करवामां पण भक्तिशास्त्रथी अनुकूल जेवा वार्णाश्रमधर्मनुं आचरण करवुं जेम विशेष ज्ञाणवुं.

(तहां निजशाखाके अनुसार षोडशसंस्कार तथा तन्मूलक आह्निक शौचाचारः-
६ आदि भक्त्युपयोगी होयवेतें द्विजशरीरके धारण करिवेवारेन्के काज आवश्यक
होत हैं)

गर्भाधानादि-संस्कारैः द्विजैर्मौञ्ज्यन्त-सम्भवैः॥

देहः संशोधनीयो हि हरिभावो न चान्यथा ॥१८॥

मौञ्ज्यन्त-सम्भवैः=	संशोधनीयः=शुद्ध करनो चाहिये
मौञ्जीबन्धन पर्यन्त होते	अन्यथा=एसें न करे तो
गर्भाधानादि-संस्कारैः=	च=निश्चय ही
गर्भाधान आदि संस्कारसों	हरिभावः=ब्रह्मभाव
द्विजैः=द्विजन्कों	न=नाहीं
देहः=देह, हि=अवश्य	(भवति)=होत हे.

भावार्थ : गर्भाधान संस्कारसों लेयके मौञ्जीबन्धनरूप यज्ञोपवीत संस्कार पर्यन्त सब संस्कारसों द्विज इतने ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य अपने देहको संशोधन करे. एसें करेतें देह पवित्र होई तब देहमें भगवद्भावकी योग्यता सिद्ध होत हे अन्यथा नाहिं॥१८॥

गर्भाधान संस्कारथी करीने मौञ्जीबन्धनरूप यज्ञोपवीत संस्कार पर्यन्त अथा संस्कारोपडे द्विज अटले ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य पोताना देहनुं सारीरीते शोधन करे. आम करवाथी देह पवित्र बनशे बने कारणे देहमां भगवद्भावकी योग्यता सिद्ध थशे ते सिवाय नहीं.

शौचाचार-विहीनस्य आसुरावेश-सम्भवात्॥

ततः स्वाह्निक-धर्माणाम् आचारोऽपि प्रसज्यते॥१९॥

शौचाचारविहीनस्य=शुद्धि आदि आचारसों रहितकों

आसुरावेशसम्भवात्=आसुरावेश	स्वाह्निकधर्माणां=अपने दैनिकधर्मन्के
होयवेकी सम्भावना होयवेतें	आचारः=आचार, अपि=हु
ततः=तातें	प्रसज्यते=प्राप्त होत हैं

भावार्थ : जो व्यक्ति शुद्धि आदिके आचारको यथाविधि पालन नाहिं करत हे तिनके देहेन्द्रियन्में आसुरावेश होयवेकी पूर्ण सम्भावना रहत हे. तातें अपने-अपने नित्य कर्मन्को आचरणहु करनो चाहिये॥१९॥

जे व्यक्ति शुद्धि वगैरे आचारनुं शास्त्राज्ञा अनुसार पालन नथी करती तेना देह-इन्द्रियमां आसुरावेश थवाना सम्भावना पूरे-पूरी रहे छे. तेथी दरेके पोत-पोताना नित्य कर्मनुं आचरण पाए करबुं नोईये.

स्नानं सन्ध्याजपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्॥

वैश्वदेवकदेवार्चा इति षट्कर्मकृद् भवेत्॥२०॥

(सः)=वो	पितृतर्पणम्=पितृन्को तर्पण
स्नानं=स्नान	वैश्वदेवक-देवार्चा=वैश्वदेवके
सन्ध्याजपः=सन्ध्या अरु जप	देवको अर्चन, इति=इन
होमः=होम	षट्कर्मकृत्=छे कर्म करिवेवारो
स्वाध्यायः=अधीत वेदको आवर्तन	भवेत्=होय

भावार्थ : सो छे नित्यकर्म या प्रकार जानने : शास्त्रविधिसों स्नान, सन्ध्या ओर जप, होम, पढ़े भये वेदको आवर्तन, पितृतर्पण, वैश्वदेवके देवको पूजन-इन छे कर्मन्कों द्विज नित्य करे॥२०॥

ते छे नित्यकर्मों आ मुण्डय न्नाएवा : शास्त्रविधिथी स्नान, सुध्या अने नप, होम, भएलेला वेदनुं अध्ययन, पितृतर्पण अने वैश्वदेवके देवनुं पूजन-आ छे कर्मों द्विजे सदा करवा.

यथा हि स्कन्ध-शाखानां तरोर्मूलाभिषेचनम् ।।
 तथा सर्वार्हणं यस्मात् परिचर्याविधिर्हरिः ।।२१।।
 अतस् तदनुरोधेन नित्यकर्मकृतिर् वरा ।।
 अन्यथातु कृतिर्व्यर्था त्रैवर्ग्यविषया यतः ।।२२।।

यथा=जैसे, तरोः=वृक्षके	अतः=तासों
मूलाभिषेचनं=मूलमें कर्यो जातो	तदनुरोधेन=वाके अनुसार
जलको सेचन, हि=ही	नित्यकर्मकृतिः=नित्यकर्म करने
स्कन्ध-शाखानां=छोटी-बड़ी	वरा=श्रेष्ठ(स्यात्)=होत हैं
शाखान्कूं(अपि=हु	अन्यथा=एसें न करे तब
भवति)=प्राप्त होय जाय हे	तु=तो, कृतिः=कर्यो भयो
तथा=ताही प्रकारसों	व्यर्था=निष्फल
हरेः=हरिकी	(स्यात्=होत हे
परिचर्याविधिः=सेवाविधि हु	यतः=क्योंके
(अस्ति)=हे, यस्मात्=वासों	(सा)=वो कृति
सर्वार्हणम्=सबन्को पूजन	त्रैवर्ग्यविषया=त्रिवर्ग सम्बन्धी
(भवति)=होय जात हे	(भवेत्)=होत हे

भावार्थ : जैसे वृक्षके मूलमें जल डारिवेतें वृक्षके पत्र, छोटी-बड़ी शाखा आदि सब भागनमें जल आपुही पहोंचि जात हे तैसें ही श्रीकृष्णकी सेवाविधिसों सबकी पूजा होय जात हे. तातें वा अनुसार ही नित्यकर्म करनो उत्तम हे. यदि एसें न करे तो (जैसें वृक्षके मूलमें जल न डारे ओर वाके डाली-पत्तानपें जल डारतो रहे तो जलहु व्यर्थ जाय अरु वृक्षहु सूकि जाय एसें) सब कर्म निष्फल होइ जात हैं. क्यों? जो कर्मनसों पूज्य तो पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही हैं, विनकों छांडिके कर्म करे तो कर्मबन्धनसों छूटिवेके स्थानपें कर्मनसों ओर अधिक बंध जाय. क्यों? जो एसे कर्म तो धर्मार्थ-कामरूप त्रिवर्गकोंही सिद्ध करत हैं।।२२।।

जेम वृक्षना मूलमां पाणी रेडवाथी वृक्षना पान, नानी-मोटी डाणीओ वगेरे वृक्षना अथा भागोने आप भेणे पाणी पलोंची जतुं होय छे ते ज प्रभाणे श्रीकृष्णानी सेवा करवाथी अथा देवी-देवताओनुं पूजन आप भेणे थई जय छे. तेथी ते प्रभाणे ज नित्यकर्म करवुं उत्तम गणाय. जे आम न करे तो (जेम वृक्षना मूलमां पाणी न रेडीने तेना डाणी-पांढां उपर पाणी रेडवामां आवे तो पाणी पण नकामुं जय अने वृक्ष पण काणकमे सुकाई जय तेम) अथा कर्मो निष्फल जय छे. कारण के अथा कर्मोथी पूज्य तो परात्पर तत्त्व श्रीकृष्ण ज होय छे, तेमने मूकीने जे कर्म करवामां आवे तो कर्मबन्धनथी छूटवाना स्थाने वधु अंधाई जवानी स्थिति आवे. कारण के कर्म तो धर्मार्थ-कामरूपी त्रिवर्गने ज सिद्ध करनारुं होय छे !

**गर्भाधानादिसंस्कारैः स्वशाखोक्तैर् द्विजो युतः ।।
 गुरुं प्रपद्येद् ।।**

अतः=तातें	गर्भाधान आदि संस्कार
स्वशाखोक्तैः=अपने वेदकी	युतः=वारो
शाखामें कहे अनुसार	(द्विजः)=ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य
गर्भाधानादिसंस्कारैः=	गुरुं=गुरुके, प्रपद्येत्=शरणमें जाय

भावार्थ : तातें जो द्विज त्रिवर्गमें बंधिवो न चाहत होय तो ताकों अपने वेदकी शाखामें निरूपित गर्भाधान आदि संस्कारसों संस्कृत होयके भक्तिमार्गीय गुरुकी शरणमें जायवो उचित हे.

तेथी जे द्विज त्रिवर्गमां इंसावा न छ्यछतो होय तेणे पोताना वेदनी शाखांमां क्हा प्रभाणेना गर्भाधान वगेरे संस्कारोथी पवित्र थईने भक्तिमार्गीय गुरुना शरणे जयुं.

(द्विजेतर शिष्यनके कर्तव्यको निरूपण)

.....अन्यस्तु सदाचारोऽस्य संश्रयात्॥२३॥

अस्य=याके (द्विजेतरस्तु)=द्विजसों भिन्न तो
(द्विजस्य)=द्विजको सदाचारः=सदाचार परायण
संश्रयात्=भलीभांतिसों आश्रय (सन्)=होयके(गुरुं=गुरुके
लेयके, अन्यस्तु=अन्य तो प्रपद्येत्)=शरणमें जावे

भावार्थ : ओर जो द्विज न होय तो शास्त्रमें कहे अनुसार द्विजनकी परिचर्या करे ओर सदाचार परायण रहिके भक्तिमार्गीय गुरुकी शरण जावे॥२३॥

जेओ द्विज न होय तेओ तो शास्त्रभां पताव्या मुळ्य द्विजेनी परिचर्या करे अने सदाचार परायण रहिने भक्तिमार्गीय गुरुना शरणे जाय.

(प्रपत्तिमार्गमें दीक्षितनकों वैष्णवाचारको परिपालन करनो. तामें प्रथम सप्तविध भक्ति^{१/२-७} को उपदेश)

लब्धवानुग्रहम् आचार्यात् श्रीकृष्णशरणं जनः॥

धारयेत् तिलकं मालां वैष्णवाचारतत्परः॥२४॥

आचार्यात्=आचार्यतें वैष्णवाचारतत्परः=
अनुग्रहम्=कृपा, च=ओर वैष्णवमार्गके आचारमें तत्पर
श्रीकृष्णशरणं=श्रीकृष्णके (सन्)=होयके
शरणमन्त्रकी दीक्षा तिलकं=ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक
लब्ध्वा=प्राप्त करिके च=ओर, मालां=माला कों
जनः=दीक्षित जन धारयेत्=धारण करे

भावार्थ : पुष्टिभक्तिमार्गमें रुचिवारो व्यक्ति पुष्टिभक्ति सम्प्रदायके सुयोग्य आचार्यवंशजकी कृपा प्राप्त करिके सर्वप्रथम विनतें श्रीकृष्णके नाममन्त्रवारी

शरणदीक्षाकों प्राप्त करे. एसें भगवन्मार्गमें दीक्षित होयके ललाटपे कुंकुमसों ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक अरु कण्ठमें तुलसीकाष्ठकी माला सदा धारण करे॥२४॥

पुष्टिभक्तिमार्गभां रुचि धरावती व्यक्ति पुष्टिभक्ति सम्प्रदायना उपरोक्त लक्षण धरावता कोई सुयोग्य आचार्यवंशजकी कृपा प्राप्त करीने सर्व प्रथम तेओथी श्रीकृष्णना नाममन्त्रनी शरणदीक्षाने प्राप्त करे. आ प्रकारे भगवन्मार्गभां दीक्षित थयेल व्यक्ति कृपाण उपर कुंकुमथी ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक अने गणामां तुलसीकाष्ठनी माणी-कण्ठी सदा धारण करे.

सर्वस्वं हरिसात्कार्यं त्यजेत् सर्वम् अवैष्णवम्॥

हिंस्र-काम्याऽन्यदेवार्चा यदि नित्यं च लौकिकम्॥२५॥

(ततः=ता पाछें (च=अरु, सः)=वो
तेन)=वाकों अवैष्णवम्=वैष्णवमार्गसोंभिन्न
सर्वस्वम्=सब कुछ सर्व=सब
हरिसात्कार्यम्=हरिकेअधीनकरनो त्यजेत्=छांड़े
हिंस्र-काम्या-ऽन्यदेवार्चाः= च=हु, यदि=जो
हिंसावारे तथा कामनावारेकर्म लौकिकं=लौकिक
अरु अन्य देवतानको अर्चन (चेत्=होंय
त्यजेत्=छांड़े तदपि)=सोहु
नित्यं=प्रतिदिनाकरिवेकेकर्म त्यजेत्=छांड़े

भावार्थ : वैष्णव भये पाछें अपनो सर्वस्व श्रीहरिके आधीन करनो. जो कुछ अवैष्णव आचार पूर्वमें करत होंय सो सब छोड़ने. जीवहिंसा जामें होती होय एसे कर्म अरु काम्यकर्म; अरु, अन्यदेवतानकी पूजा-अर्चना सब छांड़े. नित्य-नैमित्तिक शास्त्रीय कर्महु यदि वैष्णवमार्गसों विपरीत होंय तो विनकों हु छांड़े. एसें ही लोकतः प्राप्त वैष्णवतासों विपरीत कार्यनको हु त्याग करे॥२५॥

વૈષ્ણવ થયા પછી પોતાનું સર્વસ્વ શ્રીહરિને અર્પિત કરવું. જે કોઈ પણ અવૈષ્ણવ આચાર પૂર્વે કરતો હોય તે બધા છોડવા. જીવહિંસા થતી હોય તેવા કર્મો, કામ્યકર્મ; અને શ્રીકૃષ્ણ સિવાય અન્ય દેવોની પૂજા-અર્ચના નો પરિત્યાગ કરવો. નિત્ય-નૈમિત્તિક શાસ્ત્રીય કર્મો પણ જો વૈષ્ણવમાર્ગથી વિપરીત હોય તો તે પણ છોડવા. તે જ પ્રમાણે વૈષ્ણવમાર્ગથી વિપરીત એવા સામાજિક-લૌકિક કાર્યોનો પણ ત્યાગ કરવો.

પૂર્વભાણડાદિકં સર્વ પરિત્યજ્ય વિશુદ્ધિતઃ^૨ ॥

શ્રવણાદિપરો નિત્યં હરેઃ પ્રેમાસ્પદો ભવેત્ ॥૨૬॥

પૂર્વભાણડાદિકં=પહિલેકે	વિશુદ્ધિતઃ=વિશેષ પવિત્રતાતેં
પાત્ર આદિ, સર્વ=સબ કહ્યુ	નિત્યં=સદા
શ્રવણાદિપરઃ=શ્રવણાદિમેં પરાયણ	
(સન્)=હોયકે	પ્રેમાસ્પદઃ=પ્રેમભાજન
હરેઃ=શ્રીકૃષ્ણકો	ભવેત્=બનેં

ભાવાર્થ : દીક્ષિત હોયવેતેં પહિલે અપને ઉપયોગમેં આવતે સબ પાત્રાદિક કાઢિકે નવીન પાત્રાદિક લાવને. સ્વવર્ણાશ્રમાનુસાર વિશેષ આગ્રહસોં સ્નાન-ખાન-પાન-વસ્ત્ર-સ્પર્શ આદિમેં સદા શુદ્ધિ રાખે. એસેંહી ભગવત્સમ્બન્ધી શ્રવણ-કીર્તનાદિમેં સતત તત્પર રહે. એસેં કરેતેં ભક્ત પ્રભુકોં પ્રિય હોત હે ॥૨૬॥

માર્ગમાં દીક્ષિત થવાથી પૂર્વે પોતાના ઉપયોગમાં આવતા બધા વાસણ-કુસણ વગેરે કાઢી નાખીને નવીન વાસણ વગેરે વસાવવા. સ્વવર્ણાશ્રમધર્માનુસાર વિશેષ આગ્રહથી સ્નાન-ખાન-પાન-વસ્ત્ર-સ્પર્શ આદિમાં શુદ્ધિ રાખવી. તે જ પ્રમાણે પ્રભુ સમ્બન્ધી શ્રવણ-કીર્તન વગેરેમાં સતત તત્પર રહે. આમ કરવાથી ભક્ત પ્રભુને પ્રિય બને છે.

હેર્ગુણાનાં શ્રવણં જ્યાયોભ્યઃ શૃણુયાત્ સદા^૨ ॥

જાતશિક્ષઃ યવીયોભ્યઃ કીર્તયેદન્યથૈકલઃ^૨ ॥૨૭॥

હરેઃ=હરિકે	જાતશિક્ષઃ=સ્વયં અધ્યયન
ગુણાનાં=ગુણન્કો	(સન્)=કરિકે
શ્રવણં=શ્રવણ	યવીયેભ્યઃ=છોટેન્કેં તાંદે
(કુર્યાત્)=કરે	કીર્તયેત્=કીર્તન કરે
જ્યાયોભ્યઃ=બડેન્તેં	અન્યથા=નહિં તો
(ચ)=હુ, સદા=સદા	અન્યથા=નહિં તો
શૃણુયાત્=શ્રવણ કરે	ઇકલઃ=ઇકલોહુ

ભાવાર્થ : બડેન્સોં સદા ભગવત્સમ્બન્ધી શ્રવણ કરે. જો શ્રવણ કીનો હોય વાકી દૃઢતાકે અર્થ સ્વયંહુ વાકો અભ્યાસ કરે. સઙ્ગી ભક્તનેકે આગેં ભગવત્કીર્તન કરે. સત્પુરુષકો સઙ્ગ પ્રાપ્ત ન હોય તો ઇકલો હી ભગવત્કીર્તન કરે ॥૨૬॥

જ્યેષ્ઠ વૈષ્ણવો પાસેથી પ્રભુ સમ્બન્ધી ગુણ-લીલા વગેરેનું સદા શ્રવણ કરે. શ્રવણ કરેલને દૃઢ કરવામાટે પોતે પણ તેનો અભ્યાસ કરે. સની ભક્તોની સામે ભગવત્કીર્તન કરે. સત્પુરુષનો સન પ્રાપ્ત ન થાય તો એકલો જ ભગવત્કીર્તન કરે (અર્થાત્ અસત્નો સન ન જ કરે).

અતિસુન્દરરૂપાણિ લીલાધામાનિ સંસ્મરેત્^૩ ॥

પાદસેવા હરેઃ કાર્યા સર્વસમ્પન્નિકેતનૈઃ^૩ ॥૨૮॥

હરેઃ=હરિકે	સર્વસમ્પન્નિકેતનૈઃ=અપને ઘર-
અતિસુન્દરરૂપાણિ=અત્યન્ત	ધન-સમ્પત્તિસોં, હરેઃ=પ્રભુકે
સુન્દર રૂપન્કો, ચ=અરુ	પાદસેવા=ચરણકમલકી સેવા
લીલાધામાનિ=લીલાધામન્કો	(અપિ)=હુ
સંસ્મરેત્,=સતત સ્મરણ કરે	કાર્યા=અવશ્ય કરની

ભગવદ્દશતાનું દૈન્યપૂર્વક સ્મરણ કરતા-કરતા શ્રદ્ધા પૂર્વક પ્રભુના ચરણકમળમાં વન્દન કરે.

ભાવાર્થ : જેસેં ભગવત્સમ્બન્ધી શ્રવણ-કીર્તન કરે એસેં હી પ્રભુકે સર્વાધિક સુન્દર સ્વરૂપ અરુ પ્રભુકે અલૌકિક લીલાધામન્ કો હુ સતત સ્મરણ કરતો રહે. એસેંહી પ્રભુકે ચરણકમલકી સેવાહુ અપને ઘર-ધન આદિ સર્વસ્વકે વિનયોગપૂર્વક અવશ્ય કરે।।૨૭।।

પ્રભુના ગુણ-લીલાના શ્રવણ-કીર્તનાદિની સાથોસાથ પ્રભુના સર્વાધિક સુન્દર સ્વરૂપ અને પ્રભુના અલૌકિક લીલાધામો નું પણ સતત સ્મરણ કરતો રહે. આ સાથે પ્રભુના ચરણકમલોની સેવા પણ પોતાના ઘર-ધન આદિ સર્વસ્વના વિનયોગ પૂર્વક અવશ્ય કરે.

અર્ચનં પ્રત્યહં તસ્ય વિધિના નિયમેન ચ^{૧/૫}।।

વન્દનં ચરણામ્ભોજે તસ્ય ભાવનયાચ્છિલે^{૧/૬}।।૨૯।।

પ્રત્યહં=પ્રતિદિન	ચ=ઓર, અચ્છિલે=સબ
નિયમેન=નિયમસોં	જગતિ=જગત્મં
વિધિના=વિધિસોં	તસ્ય=વિનકી
તસ્ય=વિનકો	ભાવનયા=ભાવનાસોં
અર્ચનં=અર્ચન	ચરણામ્ભોજે=વિનકે ચરણકમલમં
(કુર્યાત્)=કરે	વન્દનં=વન્દન, (કુર્યાત્)=કરે

ભાવાર્થ : માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક લોકવિલક્ષણ ઉપચારન્સોં પ્રતિદિન નિયમસોં પ્રભુકી સેવા કરે. સમગ્ર જગત્મં ભગવદાત્મકતાકો ભાવ રાચ્છિકે અપનેમં ભગવદ્દશતાકો દૈન્યપૂર્વક સ્મરણ કરિકે શ્રદ્ધા પૂર્વક પ્રભુકે ચરણકમલમં વન્દન કરે।।૨૯।।

પ્રભુના માહાત્મ્યના જ્ઞાન પૂર્વક લોકવિલક્ષણ ઉપચારોથી પ્રતિદિન નિયમ પૂર્વક પ્રભુની સેવા કરે. સમગ્ર જગત્માં ભગવદાત્મકતાનો ભાવ રાખીને પોતાનામાં

દાસ્યં તદેકશરણં તત્પ્રસાદૈક-ભોજનમ્^{૧/૭}।।

એવં સપ્તવિધા ભક્તિઃ પ્રપન્નાધિકૃતા ભવેત્।।૩૦।।

તદેકશરણં=એક વાકો હી શરણ	સપ્તવિધાઃ=સાત પ્રકારકી
તત્પ્રસાદૈકભોજનં=વાકે ઉચ્છિષ્ટ	ભક્તિઃ=ભક્તિ(કે કાજ)
પ્રસાદકો હી ભોજન	પ્રપન્નાધિકૃતા=શરણાગતિમં
દાસ્યં=દાસપનોં,	અધિકારી, ભવેત્=હોત હે
એવં=એસેં	

ભાવાર્થ : એકમાત્ર શ્રીકૃષ્ણકો હી આશ્રય (અનન્યતા) અરુ શ્રીકૃષ્ણકોં સમર્પિત પદાર્થકો હી ભોજન (સમર્પિત જીવન) તાકોં 'પ્રભુકો દાસપનો' કહત હેં. યા પ્રકારસોં શ્રવણસોં લેયકેં દાસ્ય પર્યન્ત સાત પ્રકારકી ભક્તિકે સમ્યગ્ અનુષ્ઠાનસોં શરણાગતિ સિદ્ધ હોતહે।।૩૦।।

એકમાત્ર શ્રીકૃષ્ણનો જ આશ્રય (અનન્યતા) અને શ્રીકૃષ્ણને સમર્પિત કરેલ પદાર્થનું જ ભોજન (અસમર્પિત જીવન) તેને પ્રભુનું 'દાસપણું' કહેવાય છે. આ પ્રકારે શ્રવણથી લઈને દાસ્ય પર્યન્ત સાત પ્રકારની ભક્તિનું સારીરીતે અનુસરણ કરવાથી શરણાગતિ સિદ્ધ થાય છે.

(પ્રપત્તિમાર્ગમં દીક્ષિતન્કોં વૈષ્ણવ વ્રતોત્સવ^૧ પચ્ચયજ્ઞ^૨ તીર્થવાસ^૩ વૈષ્ણવતિલકાદિ બાહ્યાભ્યન્તર ચિહ્નકો^૪ ધારણ આદિકો ઉપદેશ)

પૂર્વવિદ્ધં પરિત્યાજ્યં વ્રતં તદ્વિષ્ણુપચ્ચકમ્।।

^૧જયન્તી તૂદયેડન્થેન દુષ્ટાન્યાપ્યરુણોદયાત્।।૩૧।।

विष्णुपञ्चकं=विष्णुसम्बन्धी	तत्=तिनकों
पांच(चार्यों रामनृसिंहवामनकृष्ण	परित्याज्यम्=तजने
जयन्ती अरुपांचमी एकादशी)	जयन्ती=जन्मोत्सव
व्रतं=व्रत	तु=तो, उदये=सूर्योदयमें
पूर्वविद्धं=पूर्वतिथिके वेधवारे	अन्येन=दूसरी तिथिन्सों
(चेत्)=होंय तो तत्=तिनकों	दुष्टा=दूषित, (च)=अरु
अन्या=दूसरी	(दुष्टा=दोषवारी
(एकादशी)=एकादशी, अपि=हु	चेत्)=यदि होय तो
अरुणोदयात्=सूर्यादयतें	त्याज्या=तजनी

भावार्थ : पूर्व तिथिको जा तिथिमें वेध आवतो होय वा दिन एकादशी, जयन्ती आदि विष्णुपञ्चक व्रतोत्सव तजने. सूर्योदय कालमें जो तिथि होय वाहीकों वा दिनकी तिथि मानिके श्रीकृष्णजयन्ती आदि उत्सव करने. एसें ही एकादशी हु अन्य तिथिके वेधवारी होय तो तजनी.

आगणनी तिथिना वेधवाणी अेकादशी, जयन्ती वगरे विष्णुपञ्चक व्रतोत्सवना त्याग करवो. सूर्योदय काणमां जे तिथि होय तेने ज ते द्विपसनी तिथि मानीने श्रीकृष्णजयन्ती आदि उत्सवो उजववा. ते ज प्रभाणे अेकादशी पण जे अन्य तिथिना वेधवाणी होय तो ते द्विपसे न करवी.

वर्षाश्रितान्युत्सवानि स्वाश्रितान्यपि यान्युत*॥

तानि सर्वाणि हरये *ह्यनुकूलानि चार्पयेत्॥३२॥

यानि=जो	(चेत्)=होंय तो
वर्षाश्रितानि=वर्षभरके	तानि=तिनकों
उत्सवानि=उत्सव, उत=अरु	सर्वाणि=सभी तरहसों
स्वाश्रितानि=स्वमनोरथजनित	हि=अवश्य

अपि च=हु (उत्सव)	हरये=हरिकों
अनुकूलानि=अनुकूल	अर्पयेत्=अर्पित करे

भावार्थ : वर्षभरमें आवते उत्सव अरु स्वमनोरथसों जनित उत्सव हु साधन-सम्पत्ति, स्वास्थ्य, समय आदिकी अनुकूलता होय तो विन सबकोंहु अवश्य प्रभुनके साथ मनावनें॥३२॥

वरसमां आवता उत्सव तेभज पोताना मनोरथ प्रभाणेना उत्सवो पण साधन-सम्पत्ति, स्वास्थ्य, समय आदिनी अनुकूलता होय तो ते वधा प्रभुनी साथे अवश्य मनाववा.

श्राद्धानि चोत्तमान्येव वैश्वदेवं च दैवकम्॥

हरेः प्रसादतः कुर्यात् ततस् तृप्तिरनुत्तमा॥३३॥

उत्तमानि=उत्तम	कुर्यात्=करनें
श्राद्धानि=श्राद्ध, च=अरु	ततः=तासों
वैश्वदेवं=वैश्वदेव	(पितृणां=पितृनकों
दैवकं=देव सम्बन्धी	च=अरु, देवानां)=देवतानकों
च=अवश्य	अनुत्तमा=उत्तमोत्तम
हरेः=हरिके	तृप्तिः=सन्तोष
प्रसादतः=प्रसादसों	(भवति)=होत हे

भावार्थ : श्राद्धादिक अरु विश्वेदेव सम्बन्धी अरु अन्यहु देवता सम्बन्धी सर्व उत्तम कार्य आग्रहसों भगवन्महाप्रसादसों ही करे. तातें पितृनकों अरु भगवानके कर्मसचिव देवतानकों हु उत्तमोत्तम तृप्ति होत हे॥३३॥

श्राद्ध वगैरे कार्यो, विश्वेदेव सम्बन्धि कार्यो तेमन् अन्य पाण देवता सम्बन्धि
 अधा उत्तम कार्यो आग्रह पूर्वक प्रभुना महाप्रसादथी न करवा. आम करवाथी
 पितृओने तेमन् प्रभुना कर्मसथिव देवताओने पाण उत्तमोत्तम तृप्ति थाय छे.

प्रसादोऽपि बलिः कार्यः स्वात्मसंस्कारएव सः॥

अन्नस्य चात्मनश्चापि तत्संस्कारेण तत्परः॥३४॥

बलिः=भूतयज्ञ, अपि=हु	अन्नस्य=अन्न, च=अरु
प्रसादः=भगवन्महाप्रसाद(सों)	आत्मनः=आत्माको
कार्यः=करनो, सः=वो	च अपि=हु
स्वात्मसंस्कारः=आत्मसंस्कार	तत्संस्कारेण=वा संस्कारसों
एव=ही, भवति=होत हे	तत्परः=तत्पर
(अतः)=तातें	(भवेत्)=होनो

भावार्थ : गोप्रास आदि भूतयज्ञहु प्रभुके महाप्रसादसोंही करने. वो अपने आत्माको
 संस्कार ही हे. तातें अन्न अरु आत्मा के वा ही संस्कारसों तत्पर रहेनो॥३४॥

गोप्रास आदि भूतयज्ञ पाण प्रभुना महाप्रसादथीन करवा. ते आपणा
 आत्मानो संस्कार न छे. तेथी अन्न अने आत्मा ना ते संस्कारथी तत्पर रहेजुं.

विप्रा गावो हरेर्भक्ताः सदा पूज्या हरेः प्रियाः॥

गृहस्थस्यातिथिर्यस्मात् पूज्यो दीनो दयास्पदः॥३५॥

विप्राः=ब्राह्मण, गावः=गाय	(ज्ञेयाः)=जानने
हरेः भक्ताः=भगवद्भक्त	गृहस्थस्य=गृहस्थकों
यस्मात्=क्योंके, हरेः=हरिके	अतिथिः=अतिथि
प्रियाः=प्रिय होत हैं	पूज्यो=पूज्य, (भवति)=होत हे
(तस्मात्)=तातें	दीनश्च=दुःखी, दयास्पदो=दयापात्र

सदा=सदा, पूज्या=पूज्य (भवति)=होत हे

भावार्थ : ब्राह्मण, गाय अरु भगवद्भक्त प्रभुकों प्रिय हैं तातें इन सबनको सत्कार
 अवश्य करनो. याही प्रकारसों गृहस्थकों अतिथि हु पूज्य होत हे. गृहस्थकों दुःखी
 जननपें दयाभाव राखनो॥३५॥

ब्राह्मण, गाय अने भगवद्भक्तो प्रभुना प्रिय छे तेथी ते अधानो सत्कार अवश्य
 करवो. ते न प्रभाणो गृहस्थभाटे अतिथि पाण पूज्य होय छे. गृहस्थे दुःखी लोको
 उपर दयाभाव राखवो.

जगन्नाथे द्वारिकायां श्रीरङ्गे ब्रजमण्डले॥

यत्र पूजाप्रवाहः स्यात् तत्र तिष्ठेच्च तत्परः॥३६॥

जगन्नाथे=जगन्नाथपुरीमें	पूजाप्रवाहः=पूजाको अनवरत क्रम
द्वारिकायां=द्वारिकापुरीमें	स्यात्=होय
श्रीरङ्गे=श्रीरङ्गजीमें	तत्र=तहां
ब्रजमण्डले=ब्रजमण्डलमें	तत्परः=भगवान्में परायण
यत्र=जहां	(सन्)=होयके
च=कहुं	तिष्ठेत्=रहनो

भावार्थ : जगन्नाथपुरी, द्वारिकापुरी, ब्रजमण्डल आदि भगवत्स्थाननमें जहां-कहुं
 अनवरत भगवत्पूजा अनुष्ठित होती होय तहां भगवान्में परायण होयके रहे (स्वगृहमें
 भगवत्सेवा करिवेमें समर्थ न होय एसे प्रभुपरायण विरक्त पुष्टिमागीके अर्थ ये
 उपदेश जाननो)॥३६॥

जगन्नाथपुरी, द्वारिकापुरी, ब्रजमण्डल वगैरे भगवत्स्थाननोमां जहां अनवरत
 भगवत्पूजा थती होय त्यां प्रभुपरायण अनिने रहे. (स्वगृहमां भगवत्सेवा करवा
 शक्तिमान् न होय तेवा प्रभुपरायण विरक्त पुष्टिमागीभाटे आ उपदेश छे)

गङ्गादि-तीर्थ-वर्येषु यथा चित्तं न दुष्यति॥

श्रवणाद्यैः भजेदेवं श्रीभागवततत्परः॥३७॥

गङ्गादितीर्थवर्येषु=गङ्गाजी	एवं=एसें
आदि श्रेष्ठ तीर्थनमें	श्रीभागवततत्परः=श्रीभागवतमें तत्पर
यथा=जेसें	(सन्)=होयके
चित्तं=चित्त	एवं=तथा
न=नाहीं	श्रवणाद्यैः=श्रवण आदिसों
दुष्यति=दूषित होवे	(प्रभुं)=प्रभुकों भजेत्=भजे

भावार्थ :

गङ्गाजी आदि श्रेष्ठ तीर्थनमें, अति निकटता आदिके कारण तीर्थके अनादर आदिरूप दोषनसों चित्त जेसें दूषित नाहीं होय वा प्रकारसों श्रीभागवतमें तत्पर होयके प्रभुको श्रवणादिसों भजन करे॥३७॥

गङ्गाज वगेरे श्रेष्ठ तीर्थोंमां, अति निकटता वगेरे कारणे तीर्थनो अनादर के तेवाज बीज दोषोने कारणे चित्त दूषित न थाय ते प्रकारे श्रीभागवत पुराणना पाठादिमां तत्पर अनीने प्रभुनुं श्रवणादिथी भजन करवुं.

ऊर्ध्वपुण्ड्राणि मृन्मुद्रा तुलसी-काष्ठजापि स्रक्॥

बाह्याङ्कान्यान्तराणि स्युः भक्तेः शान्ति-विरक्तयः॥३८॥

ऊर्ध्वपुण्ड्राणि=ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक	स्रक्=माला
मृन्मुद्रा=गोपीचन्दनसों नामादि मुद्रा	अपि=हु
तुलसीकाष्ठजा=तुलसीकाष्ठकी	भक्तेः=भक्तिके
बाह्याङ्कानि=बाह्य लक्षण	

शान्तिविरक्तयः=शान्ति तथा विरक्ति आन्तराणि=आन्तर लक्षण
आन्तराणि=आन्तर लक्षण स्युः=होत हैं

भावार्थ :

ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, गोपीचन्दनसों नामादिमुद्रा अरु तुलसीकाष्ठसों बनी माला ये भक्तिमार्गीके बाह्य लक्षण हैं. एसें ही शान्ति तथा विरक्ति भक्तिमार्गीके आन्तर लक्षण हैं॥३८॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, गोपीचन्दनथी अङ्कित कराती नामादिनी मुद्राओ अने तुलसीकाष्ठथी अनती माणा अे पुष्टिभक्तिमार्गीना बाह्यलक्षणो छे. ते ज प्रमाणे शान्ति तथा विरक्ति अे पुष्टिभक्तिमार्गीना आन्तर लक्षणो छे.

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च॥

दया दानं च विज्ञानं श्रद्धा दैवात्मसम्पदः॥३९॥

दैवात्मसम्पदः पुंसः भक्तिर्भवति नैष्ठिकी॥

शमः=आन्तर इन्द्रियनपें संयम	च=इत्यादि
दमः=बाह्य इन्द्रियनपें संयम	दैवात्मसम्पदः=दैवी जीवके गुण
तपः=कष्टकों सहनो	एव=निश्चय
शौचं=पवित्रता	(सन्ति)=हैं
क्षान्तिः=धैर्य/क्षमाशीलता	दैवात्मसम्पदः=दैवी जीवके गुणवारे
आर्जवं=सरलता	पुंसः=पुरुषकों
दया=दया, दानं=दान	भक्तिः=भक्ति, च=निश्चित
विज्ञानं=तत्त्वज्ञान	नैष्ठिकी=दृढनिष्ठावारी
श्रद्धा=श्रद्धा	भवति=होत हे

भावार्थ :

आन्तर तथा बाह्य इन्द्रियनर्पे संयम, कष्टकों सहनो, शास्त्रीय सदाचारके अनुसार पवित्रता राखनी, धैर्य अथवा क्षमाशीलता, सरलता, दया, दान, तत्त्वज्ञान, श्रद्धा इत्यादि दैवी जीवनके गुण जाननें. ऐसे दैवी गुणवारे पुरुषकों भगवद्भक्ति निश्चय ही दृढनिष्ठावारी होत हे।।३९।।

आन्तर तथा बाह्य इन्द्रियो उपर संयम, कष्ट सहन करवा, शास्त्रीय सदाचारना अनुसार पवित्रता राखनी, धैर्य अथवा क्षमाशीलता, सरलता, दया, दान, तत्त्वज्ञान, श्रद्धा इत्यादि गुणो दैवी गुणना लक्षणवा. आवा दैवी गुणवारा पुरुषने भगवद्भक्ति योक्कसपणे दृढनिष्ठावाली थाय छे.

(इन गुणनके कारण भक्ति जब सर्वात्मभावापन्ना^१ होवे तब या लोकमें प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक भगवदासक्ति^२ अरु वैकुण्ठादि भगवल्लोकमें सेवोपयोगी देहकी प्राप्ति^३ हु फलित होत हे)

यया 'सर्वात्मभावा'ख्या परा सिद्धिः स्वयं भवेत्^४।।४०।।

यया=जा

(नैष्ठिक्या=दृढ

परा=उत्कृष्ट

भक्त्या)=भक्तिसों

सिद्धिः=सिद्धि

'सर्वात्मभावा'ख्या='सर्वात्मभाव'

स्वयं=आपुही

नामसों जानी जाती

भवेत्=सिद्ध होत हे

भावार्थ :

नैष्ठिकी भक्तिके कारण 'सर्वात्मभाव' नामसों प्रसिद्ध उत्कृष्ट सिद्धि स्वयं ही प्राप्त होत हे।।४०।।

आपुही नैष्ठिकी भक्तिना कारणे 'सर्वात्मभाव' नामे ओणजाती उत्कृष्ट सिद्धि आपुमेणे न प्राप्त थई जाय छे.

सर्ववस्तुषु वैराग्यं दोषदृष्ट्या विभावयेत्॥

दमनाद् इन्द्रियाणां च सन्तुष्ट्यापि च सिध्यति।।४१।।

दोषदृष्ट्या=दोषवारी दृष्टिसों

च=अरु

सर्ववस्तुषु=सब वस्तुनमें

सन्तुष्ट्या=सन्तोषतें

वैराग्यं=वैराग्यकी

अपि=हु

विभावयेत्=विशेषरूपसों भावना करे

च=निश्चितरूपसों

इन्द्रियाणां=इन्द्रियनके

(तद्)=वो

दमनाद्=दमनतें

सिध्यति=सिद्ध होत हे

भावार्थ :

दोषदृष्टि राखिके सर्व वस्तुनमें वैराग्यकी विभावना करे. इन्द्रियनर्पे संयम अरु सन्तोष राखिवेतें हु अवश्य वैराग्य सिद्ध होत हे।।४१।।

दोषदृष्टि राखीने अधी वस्तुओमां वैराग्यनी विभावना करवी. इन्द्रियोउपर संयम अने प्राप्त वस्तु-परिस्थितिमां सन्तोष राखवाथी पण वैराग्य योक्कस डेणवी शक्य छे.

सर्वत्रैव विरक्तस्य रागः स्याद् नन्दनन्दने॥

तेनासक्तिश्च व्यसनं प्रपञ्चास्फुरणं भवेत्।।४२।।

सर्वत्र=सब ठिकाने

नन्दनन्दने=श्रीकृष्णमें

विरक्तस्य=विरक्तकों

रागः=प्रेम

एव=ही

स्याद्=होत हे

तेन=वातें

प्रपञ्चास्फुरणं=प्रपञ्चकी विस्मृति

आसक्तिः=असक्ति

च=हु

व्यसनं=व्यसन

भवेत्=होत हे

भावार्थ :

जो सर्वत्र वैराग्यवारो होय वाकों ही नन्दनन्दन श्रीकृष्णमें प्रेम होत हे. प्रेममें आसक्ति होत हे, आसक्तिमें व्यसन अरु प्रपञ्चकी अस्फूर्ति पूर्वक मनको भगवान्में निरोध सिद्ध होत हे।।४२।।

सर्वत्र वैराग्य होय तेने न नन्दनन्दन श्रीकृष्णमां प्रेम थई शके छे. प्रेमथी आसक्ति थाय छे, आसक्तिथी व्यसन अने तेना परिणामे प्रपञ्चनी अस्फूर्ति पूर्वक भगवान्मां 'निरोध' सिद्ध थाय छे.

एवं निरुद्धचित्तस्यानुगृहीतस्य चेशितुः।।

लीलाप्रवेशोऽपीष्टश्च “तस्मान् मच्छरणो” क्तितः।।४३।।

एवं=या प्रकारसों

मच्छरण(म्)”=में शरण हूं

ईशितुः=ईशके

उक्तितः=या उक्तिसों

अनुगृहीतस्य=कृपावारे

लीलाप्रवेशः=भगवल्लीलामें प्रवेश

च=अरु

च=अरु, इष्टः=इष्ट

निरुद्धचित्तस्य=निरुद्ध चित्तवारेको

अपि=हु

“तस्मान्=तातें

(भवति)=होत हे

भावार्थ :

या प्रकारसों जाको चित्त प्रभुमें निरुद्ध भयो होय अरु जाके ऊपर प्रभुकी कृपा भई होय वाको लीलामें प्रवेश हु इष्ट ही हे सो गोवर्धनोद्धरणके समय भगवान्के “तातें में ही गोकुलको आश्रय हूं ...” (भाग.पुरा.१०।२२/२५।१८) इत्यादि वचनमें सिद्ध होत हे।।४३।।

आ प्रकारे जेनुं चित्त प्रभुमां निरुद्ध थयुं होय अने जेना उपर प्रभुनी कृपा थई होय तेनो लीलामां प्रवेश थयो पण सल्ल-इष्ट छे ते वात गोवर्धनोद्धरणना समये भगवान्के कहेला “तेथी हुं न गोकुलको आश्रय हूं ...” (उपर मुण्ड्य) इत्यादि वचनोथी सिद्ध थाय छे.

(एसे तादृशी वैष्णवन्की या भूतलपे स्थिति अन्य जीवनके जेसी काल-कर्म-स्वभावाधीन होत नाहीं)

न पापं स करोत्येव प्रमादे त्वाशु निष्कृतिः।।

अज्ञात-स्खलितानां च हरिरेव परा गतिः।।४४।।

सः=वो

निष्कृतिः=छुटकारा

पापं=पाप

(भवति).=होत हे

न=नाहीं

अज्ञातस्खलितानां=अज्ञानसों

एव=ही

पतित भयेन्के

करोति,=करे हे

च=निश्चित

प्रमादे=अज्ञानमें

हरिः=हरि, एव=ही

तु=तो

परा=अन्तिम

आशु=शीघ्र

गतिः=उपाय/साधन, (अस्ति)=हैं

भावार्थ :

एसो भगवदीय कबहु पापकर्म नाहीं करत हे. कबहुक अज्ञानमें कोउ निन्दित/निषिद्ध आचरण होय जाय तो हु शीघ्रही वाके अपराधमें छूटी जात हे. तातें अज्ञानमें जिनको स्खलन होत हे जिनकी एकमात्र गति श्रीहरि ही हैं।।४४।।

आवो भगवदीय भक्त क्यारेय पापकर्म करतो नथी. क्यारेक अज्ञानथी तेनावडे नो कोई निन्दित/निषिद्ध आचरण थई जाय तो पण तरतन तेना अपराधथी ते मुक्त थई जाय छे. तेथी अज्ञानथी जेनुं स्खलन थयुं होय तेनी अक मात्र गति श्रीहरि न होय छे.

हरिर् भक्तापराधेषु दययैव प्रसीदति।।

दोषेषु न गतिस्तस्मात् दोषान् सम्परिवर्जयेत्।।४५।।

(यस्मात्)=क्योंके	तस्मात्=ताते
भक्तापराधेषु=भक्तके अपराधन्में	दोषान्=दोषन्कों
दोषेषु=दोषन्में	सम्परिवर्जयेत्=सम्पूर्ण रूपसों छोड़े
अन्या=दूसरो	हरिः=हरि
गतिः=उपाय	दयया=दयाते
न=नाहीं	एव=ही
(अस्ति)=हे	प्रसीदति=प्रसन्न होत हें

भावार्थ :

भक्तन्की अपराध अथवा दोष मेंहु भगवदतिरिक्त अन्य कोई गति नाहीं हे. ताते दोषन्को पूर्णरूपसों त्याग करनो. तथा हरि विनपें दया करिके प्रसन्न ही रहत हें एसो विश्वास राखनो।।४५।।

भक्तन्का अपराध अथवा दोष मां पण भगवान् सिवाय भीलु कोई गति नथी. तेथी दोषन्को पूर्णपणें त्याग करवो तेमळ श्रीहरि पोतानापर दयाभावथी प्रसन्न ळ छे तेवो विश्वास राखवो.

अशून्या दिवसा यामाः मुहूर्त-घटिका-लवाः।।

भगवद्भजनैः कार्याः संसारासक्तिरन्यथा।।४६।।

दिवसाः=दिवस	अशून्याः=रहित नाहीं
यामाः=प्रहर; तीन घण्टा	कार्याः=करने
मुहूर्त-घटिका-लवाः=	अन्यथा=नहिं तो
४८ मिनिट, २४ मिनिट, क्षण	संसारासक्तिः=संसारमें आसक्ति

भगवद्भजनैः=भगवद्भजनसों (भवति)=होय जात हे

भावार्थ :

दिवस, प्रहर, घडी, क्षणमात्र हु भगवद्भजन विना न रहेनो. भगवद्भजन विना क्षणमात्रहु रहे तो संसारासक्ति होय जात हे।।४६।।

दिवस, प्रहर, घडी तो शुं परन्तु क्षणमात्र पण भगवद्भजन पगर न रहेवुं. क्षणमात्र पण भगवद्भजन विना रहेवाथी संसारमां आसक्त पनी ळवाय छे.

(जेसें श्रीहरिको भजन, तेसेंइ श्रीहरिकी भावना राखिके गुरु अरु वैष्णव भक्तन् के प्रतिहु नमन, अर्चन तथा दैन्य निभावने)

गुरुसेवा गुरोराज्ञा गुरौ श्रीहरिभावना।।

गुरौ भयं गुरौ सिद्धिः प्रपन्नः परिभावयेत्।।४७।।

(प्रपन्नेन)=शरणागतकों	(पालनीया),=पालनी
गुरुसेवा=गुरुकी सेवा	गुरौ=गुरुमें
(कर्तव्या),=करनी	श्रीहरिभावना=श्रीहरिकी भावना
गुरोः=गुरुकी	(कार्या),=करनी
आज्ञा=आज्ञा	गुरौ=गुरुमें
भयं=भय	
(स्थापनीयम्=राखनो	(अस्ति=हे
च)=अरु	इति)=एसें
गुरौ=गुरुमें	प्रपन्नः=शरणागत शिष्य
सिद्धिः=सिद्धि	परिभावयेत्=आछी भांतिसों भावना करे

भावार्थ :

शरणागत शिष्य गुरुकी सेवा करे, गुरुकी आज्ञाको पालन करे, गुरुमें श्रीहरिकी भावना करे, गुरुको भय राखे, गुरुमें सिद्धिकी भावना करे. एसे प्रकारसों शरणागत शिष्य रहे॥४७॥

शरणागत शिष्ये गुरुनी सेवा करवी, गुरुनी आज्ञानुं पालन करवुं, शास्त्रानुसारी गुरुनी आज्ञा भगवदाज्ञा समानए छे तेम गुरुमां श्रीहरिनी भावना करवी, गुरुनो भय पाए राखवो, गुरुनी शास्त्रानुसारी आज्ञाना पालनमां ए सिद्धि छे तेम भगवदुं, आ प्रभाए शरणागत शिष्ये रहेवुं.

भक्तवृन्दान् नमेद् अर्चेद् दृष्ट्वा हृष्येत्(/हर्ष) समानयेत्॥

भक्तेष्वेवं हरिं साक्षात् प्रसादेन व्यवस्थितम्॥४८॥

भक्तवृन्दान्=भक्तजननकों	समानयेत्=बुलावे
नमेद्=नमन करे	भक्तेषु=भक्तनमें
अर्चेद्=सत्कार करे	एवं=एसें
(तान्)=विनकों	प्रसादेन=कृपासों
दृष्ट्वा=देखिके	व्यवस्थितम्=बिराजते
हृष्येत्,=प्रसन्न होय	साक्षात्=साक्षात्
(गृहं)=घरमें	हरिं=हरिकों, (पश्येत्)=देखे

भावार्थ :

भक्तजननकों प्रणाम करे, विनको सत्कार करे, अपुने घरमें विनकों बुलावे. भक्तनके हृदयमें भगवान् सदा प्रसन्नतासों बिराजत हैं तातें भक्तनमें भगवान्को देखे॥४८॥

भक्तोने प्रणाम करे, तेमनो सत्कार करे, पोताना घरमां भक्तोने आभन्ने. भक्ताना हृदयमां भगवान् सदा प्रसन्नताथी बिराजे छे तेथी भक्तोमां भगवानने लुथे.

विना भक्तप्रसङ्गेन सदगुरोः कृपया विना॥

श्रीभागवतशास्त्रेण विना भक्तिः कथं भवेत्॥४९॥

भक्तप्रसङ्गेन=भक्तके सङ्गके	श्रीभागवतशास्त्रेण=श्रीभागवत शास्त्रके
विना=बिना	विना=बिना
सदगुरोः=सद्गुरुकी	भक्तिः=भक्ति
कृपया=कृपाके	कथं=केसें
विना=बिना	भवेत्=होय

भावार्थ :

भक्तके सङ्ग विना, सद्गुरुकी कृपा विना तथा श्रीभागवत शास्त्र विना श्रीकृष्णमें भक्ति केसें होय सके?॥४९॥

भक्तानो सङ्ग कर्या विना, सद्गुरुनी कृपा विना तेमए श्रीभागवत शास्त्रना अध्ययन-मनन विना श्रीकृष्णमां भक्ति केम थई शके?

विना गद्गदकण्ठेन द्रवता चेतसा विना॥

विना नृत्येन गानेन हरिप्रीतिः कथं भवेत्?॥५०॥

गद्गदकण्ठेन=भगवदावेशसों	नृत्येन=नृत्यके
गद्गदित कण्ठके	(च)=अरु
विना=विना	गानेन=गानके
चेतसा=चित्तकी	विना=विना
द्रवता=भगवत्स्नेहसों द्रवता	हरिप्रीतिः=हरिमें प्रेम
विना=विना	कथं=केसें, भवेत्=होय

भावार्थ :

कीर्तन करत भगवदावेशसों कण्ठ गद्गदित न होय, स्मरण करत भगवत्प्रेमसों चित्त आर्द्र न होय, नृत्य-गान सहित भगवद्भजनके विना प्रभुमें प्रेम कैसें होय? ॥५१॥

ज्यां सुधी प्रभुना कीर्तन करता भगवद्भावावेशथी कण्ठ गद्गदित न थाय, प्रभुनुं स्मरण करता भगवत्प्रेमथी हैयुं भराई न आवे, अने नृत्य-गान सहित भगवद्भजन न थाय त्यां सुधी प्रभुमां प्रेम केम थाय?

“दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते” ॥५१॥

एषा=ये	(अस्ति)=हे
गुणमयी=गुणवारी	(अतः)=तातें, ये=जो
दैवी=दैवी	माम्=मोकों, एव=ही
मम=मेरी	प्रपद्यन्ते=शरणागत होय हैं
माया=माया	ते=वो, एतां=या
हि=निश्चय ही	मायां=मायाकों
दुरत्यया=कष्टसों जीतीजाय एसी	तरन्ति=तरि सके हैं

भावार्थ :

ये गुणमयी मेरी दैवी माया निश्चय ही कष्टसों जीती जा सके एसी हे. तातें जो मेरी शरणमें आवे हे वो ही मेरी या मायाकों तरि सके हे ॥५१॥

आ गुणमयी भारी दैवी माया कष्टथी लुती शकाय तेवी छे. तेथी जे भारी शरणे आवे छे ते जे भारी आ मायाने तरी शके छे.

(सृष्टिके कर्ता केवल भगवान् हैं, तासों ये सृष्टि भगवदात्मिका हे, सो या सृष्टिमें पुष्टिजीवकों भजनानन्दानुभवके प्रदानार्थ प्रकट किये हैं, तासों पुष्टिजीवकों भगवदनुग्रहार्थ नियोजित करनोहु भगवत्सेवा ही हे)

क्रीडार्थम् असृजत् पूर्वं स्वात्मना स्वात्मकं जगत् ॥

तत्र कायभवा पुष्टिः लीलासृष्टिर् अनुत्तमा ॥५२॥

(भगवान्)=भगवान्ने

पूर्व=पहिले

तत्र=तामें

स्वात्मना=आपुसों

कायभवा=कायातें प्रकट

स्वात्मकं=स्वात्मक-भगवदात्मक

अनुत्तमा=उत्तमोत्तम

जगत्=जगतकों

लीलासृष्टिः=लीलासृष्टि

क्रीडार्थम्=क्रीडाके अर्थ

पुष्टिः=पुष्टिजीवन्की

असृजत्=प्रकट कियो

(अस्ति)=हे

भावार्थ :

भगवान्ने पहिले तो क्रीडाके अर्थ आपुसों स्वात्मक इतनें भगवदात्मक जगत् प्रकट कियो. ता जगत्में जो दैवी जीव हैं तिनको अपनी कायातें प्रकटी पुष्टिसृष्टिकी उत्तमोत्तम लीलामें अङ्गीकार कियो ॥५२॥

भगवान्ने प्रथम तो क्रीडाभाटे पोतानावडे स्वात्मक अटले के भगवदात्मक जगत्ने प्रकट क्यो. ते जगत्माना दैवी लुवोनी पोतानी कायाथी प्रकटेली पुष्टिसृष्टिनी उत्तमोत्तम लीलामां अङ्गीकार क्यो.

वामांश-सम्भवानान्तु भजनानन्दलब्धये ॥

विसृष्टानां ततोऽन्येषां नान्या साधनपद्धतिः ॥५३॥

भजनानन्दलब्धये=भजनानन्दको	तु=तो,
दान करिवेके अर्थ	ततः=तातें
विसृष्टानाम्=विशेष हेतुसों प्रकट भये	अन्या=भिन्न दूसरो
वामांश-सम्भवानाम्=वाम अंशसों	साधनपद्धतिः=उपाय
प्रकटभयेन्को	न=नाहीं
अन्येषां=अन्यन्को	(अस्ति)=हे

भावार्थ :

प्रभुके वाम अंशसों प्रकट भये जीव के जिनको प्रभूने भजनानन्दको दान करिवेको प्रकट किये हैं विनको यातें भिन्न दूसरो कोई उपाय नाहीं है।।५३।।

प्रभुना वाम अंशशी प्रकट थयेला लुवो के लेने भजनानन्दनुं दान करवाभाटे प्रभुअे प्रकट कथां छे तेओभाटे आ सिवाय भीलो कोई उपाय नथी.

“यस्यायम् अनुगृह्णाति भगवान् आत्मभावितः।।

स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्”।।५४।।

अयं=ये	लोके=लोकमें
आत्मभावितः=आत्मासों भावित	च=अरु
भगवान्=भगवान्	वेदे=वेदमें
यस्य=जाकु	परिनिष्ठिताम्=अत्यन्त स्थिर
अनुगृह्णाति=अनुगृहीत करे हैं	मतिं=मतिकों
सः=वो	जहाति=त्याग दे हे

भावार्थ :

आत्मतया भावित भगवान् जापें कृपा करे हैं वो भक्त लोक अरु वेद में परिनिष्ठित अपनी मतिकों हु त्याग दे हे।।५४।।

आत्मा तरिके भावित भगवान् लेना उपर कृपा करे छे ते भक्त लोक अने वेद मां अत्यन्त स्थिर थयेली भतिनो पण त्याग करी दे छे.

*८ अनुग्रहे नियोज्योऽतः संग्रहः श्रुतिसम्मतः।।

महतां समयो मानं महान्तोऽत्र हरेः प्रियाः।।५५।।

अतः=तातें	संग्रहः=संग्रह
(एतादृशः)=एसे	श्रुतिसम्मतः=वेद सम्मत
अनुग्रहे=अनुग्रहमें	(अस्ति)=हे
नियोज्यः=प्रेरित करने	अत्र=यहां
(भवति)=चहिये	मानं=प्रामाण
(तादृशं)=वेसो	महतां=महापुरुषन्को
तु)=तो	समयः=समय/व्यवहार
(अस्ति)=हे	प्रियाः=प्रिय
हरेः=हरिके	महान्तः=महान्, (सन्ति)=हैं

भावार्थ :

भगवद्भक्तिमें मति स्थिर होय तदर्थ लोक-वेदमें आसक्त दैवी जीवनको भगवद् अनुग्रहमार्गके प्रति प्रेरित करने चहिये. एसो लोकसंग्रह (परोपकार) हु वेदसम्मत ही हे. यहां प्रमाण महान् पुरुषन्को आचर हु हे. भगवान्को जे प्रिय हैं वे ही वस्तुतः महान् हैं।।५५।।

भगवद्भक्तिमां मति स्थिर थाय तेभाटे लोक-वेदमां आसक्त दैवी लुवोने भगवानना अनुग्रहमार्ग प्रति प्रेरित करवा लेईअे. आ प्रकारनो लोकसंग्रह (परोपकार) पण वेदसम्मत न छे. आ भावतमां प्रमाणा महापुरुषोनो सदाचार पण छे. भगवानने ले प्रिय छे ते न अरेअर महान् छे.

(श्रीमद्भागवतके “रतिरासो...” ३।७।१८ श्लोकमें निरूपित भजनानन्दकी उपलब्धिके काज आत्मसमर्पणादि साधनको निरूपण)

अतस् तदनुरोधेन ‘रतिरासो’ यथा भवेत्॥

तदर्थं वरणं कार्यं *श्रीगोपालमहामनोः॥५६॥

अतः=ताते	श्रीगोपालमहामनोः=
तदनुरोधेन=वाके अनुसार	श्रीगोपालमन्त्रको/
यथा=जैसे	“रतिप्रादुर्भावो भवतु सततं
‘रतिरासः’=रतिरासरूप भजनानन्द	श्रीपरिवृढे” या स्तोत्रको
भवेत्=सिद्ध होय	वरणं=वरण, कार्यं=करनो
तदर्थं=वाके अर्थ	

भावार्थ :

(“यत्सेवया भगवतः ...रतिरासो भवेत्” श्लोकमें गुरुसेवाको भक्त्युपयोगी बताई हे) ताते गुरुकी आज्ञाके अनुसार जैसे रतिरासरूप भजनानन्द सिद्ध होय वाके अर्थ गोपालमन्त्र अथवा परिवृढाष्टक स्तोत्रको नित्य अनुसन्धान करनो॥५६॥

(“यत्सेवया भगवतः ...रतिरासो भवेत्” श्लोकमें गुरुसेवाने लक्ष्युपयोगी कही छे) तेथी गुरुनी आज्ञा अनुसार जेभ रतिरासरूप भजनानन्द सिद्ध थाय तेभाटे गोपालमन्त्र अथवा परिवृढाष्टक स्तोत्र नुं नित्य अनुसन्धान करवुं.

नायमात्मा प्रवचनैर् न धिया न बहुश्रुतैः॥

लभ्यते वरणं हित्वा वृतं संवृणुते श्रुतेः॥५७॥

अयं=ये	न=न
आत्मा=परमात्मा	बहुश्रुतैः=बहुत सुनवेसों

वरणं=वरण	लभ्यते=प्राप्त होत हे
हित्वा=विना	वृतं=नियम
न=न	च=तो
प्रवचनेन,=प्रवचनसों	संवृणुते=वरण करे हे
न=न	श्रुतेः=श्रुतिसों
धिया=बुद्धिसों	(प्रामाण्यात्)=प्रामाण्यसों

भावार्थ :

ये परमात्मा वरण विना न प्रवचनसों, न बुद्धिसों, न तो बहुत सुनिवेशोंहु प्राप्त होय सके हे. वरणको ये नियम श्रुतिसों प्रसिद्ध हे.

आ परमात्मा वरण विना न तो प्रवचनथी, न बुद्धिथी के न तो बहुत सांभलवाथी प्राप्त थई शके छे. वरणनो आ नियम श्रुतिमां प्रसिद्ध छे.

स्मृत्वा स्वीयवियोगाग्निं तापदाहो भवाम्बुधौ॥

ततः सर्वं समर्प्यैव श्रीगोपालमनुं श्रयेत्॥५८॥

भवाम्बुधौ=भवसागरमें	ततः=ताते
तापदाहः=तापजन्य दाह	सर्वं=सब
(अस्ति=हे	समर्प्य=समर्पित करिके
इति)=एसें	एव=ही
स्वीयवियोगाग्निं=अपने वियोगाग्निको	श्रीगोपालमनुं=गोपालमन्त्रको
स्मृत्वा=स्मरण करिके	श्रयेत्=आश्रय करे

भावार्थ :

या भवसागरमें भगवद्वियोग अग्निदाहके समान् है. ताते (गद्यमन्त्रोक्त प्रकारसुं) भगवद्वियोग जन्य अग्निको स्मरण करिके वा वियोगाग्निकी निवृत्तिके अर्थ सब कछु प्रभूनुकूं अर्पण करिके श्रीगोपालमन्त्रको आश्रय करे॥५९॥

આ ભવસાગરમાં ભગવદ્વિયોગ અગ્નિદાહ સમાન છે. તેથી (ગદ્યમન્ત્રોક્ત પ્રકારે) ભગવદ્વિયોગ જન્ય અગ્નિનું સ્મરણ કરીને તે વિયોગાગ્નિની નિવૃત્તિના માટે બધું પ્રભુને અર્પણ કરીને શ્રીગોપાલમન્ત્રનો આશ્રય કરવો.

“इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृतं यच्चात्मनः प्रियम् ॥

दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्” ॥૫૧॥

इष्टं=यज्ञादि	दारान्=स्त्री
दत्तं=दान	सुतान्=पुत्र
तपः=तप	गृहान्=घर
जप्तं=जप	प्राणान्=प्राण
वृतं=व्रत	तत्=वो
आत्मनः=स्वयંકો	परस्मै=भगवदर्थ
प्रियम्=प्रिय	निवेदनम्=निवेदन
यत्=जो	(कुर्यात्)=करे

भावार्थ :

समस्त इष्ट इतनें यज्ञादि अरु पूर्त इतनें दान-जप-तप-वृत आदि कर्मन्को अरु अपने प्रिय स्त्री, पुत्र, घर, प्राण आदि कोहु भगवत्सेवाके अर्थ निवेदन करे ॥५१॥

पोतानुं બધુ ઇષ્ટ એટલે કે યજ્ઞ વગેરે, અને પૂર્ત એટલે કે દાન-તપ-જપ-વ્રત વગેરે કર્મોને અને પોતાના પ્રિય એવા સ્ત્રી, પુત્ર, ઘર પ્રાણ વગેરેને પણ ભગવત્સેવાર્થે નિવેદિત કરે.

“इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ॥

नारायणपरो मायाम् अञ्जस्तरति दुस्तराम्” ॥૬૦॥

“इति=या प्रकारસો

भागवतान्=भगवान् सम्बन्धि

धर्मान्=धर्मन्को

शिक्षन्=जानिके

तदुत्थया=वाते उत्पन्न

भक्त्या=भक्तिते

नारायणपरः=नारायण परायण

(सन्)=होयके

दुस्तराम्=कठिनतासों तरि सकें एसी

मायाम्=मायाकों

अञ्जः=शीघ्र

तरति=तरि जाय हे

भावार्थ :

एसे प्रकारसों भागवतधर्मन्को जानिके, वाते उत्पन्न भई भक्तिसों नारायणमें परायण होयके भक्त दुस्तर मायाकोंहु शीघ्रतासों तरि जाय हे ॥६०॥

આ પ્રકારે ભાગવતધર્મને જાણીને તેનાથી ઉત્પન્ન થયેલ ભક્તિથી નારાયણમાં પરાયણ થઈને ભક્ત દુસ્તર માયાને પણ ઝડપથી તરી જાય છે.

एवं योगीश्वरोक्तेन भक्तिमार्गेण यो यजेत् ॥

सएवातीत्य कलिजान् दोषान् गच्छेत् परं पदम् ॥૬૧॥

एवं=एसे

योगीश्वरोक्तेन=योगीश्वरन्के कहे

भक्तिमार्गेण=भक्तिमार्गसों

यः=जो

यजेत्=भजन करे हे

सः=वो, एव=ही

कलिजान्=कलिकालके

दोषान्=दोषन्को

अतीत्य=पार करिके

परं=उत्तम

पदम्=फलकों

गच्छेत्=प्राप्त करे हे

भावार्थ :

एसें (एकादशस्कन्धमें निरूपित) योगीश्वरोक्त भक्तिमार्गसों जो भगवान्को भजन करे हे वो कलिदोषन्कों पार करिके उत्तम पदकों प्राप्त होत हे।।६१।।

आम (अेकादशस्कन्धमां निरूपित) योगीश्वरोअे भागवतमां कहेल भक्तिमार्गना अनुसार अे भगवान्नुं भजन करे छे ते कलिदोषोने पार करीने उत्तम पदने प्राप्त करे छे.

(ताहां भक्तिमार्गमें निषिद्ध एसी कछूक बातन्को निरूपण)

नावैष्णवैः सह वसेन् न तैः संसर्गमाचरेत्।।

प्रसङ्गेषु हरिं ध्यायेत्

अवैष्णवैः=अवैष्णवके	न=न
सह=सङ्ग	आचरेत्=करे
न=न, वसेत्=रहे	प्रसङ्गेषु=प्रसङ्गमें
तैः=विनको	हरिं=हरिको
संसर्गम्=संसर्ग	ध्यायेत्=ध्यान करनो

भावार्थ :

अवैष्णवन्के सङ्ग न रहे, विनको संसर्ग हु न करे. क्वचित् सङ्ग होयवेपें हरिको ध्यान धरे. ...

अवैष्णवनी साथे न रहेवुं. अवैष्णवनो संसर्ग पण न राखवो. क्यारेक भेटो थई पण अथ तो श्रीहरिनुं ध्यान धरवुं.

... .. स्नायात् कर्मणि मन्त्रतः।।६२।।

देहशुद्धिः सदा कार्या करशुद्धिः विशेषतः।।

स्वपात्रं भगवत्पात्रं स्नानपात्रं न मेलयेत्।।६३।।

कर्मणि=कर्मन्में

मन्त्रतः=मन्त्रसों

स्नायात्=स्नान करनो

देहशुद्धिः=देहकी शुद्धि

सदा=सदा

कार्या=अवश्य करनी

करशुद्धिः=हाथन्की शुद्धि

विशेषतः=विशेषरूपसों, कार्या=करनी

स्वपात्रं=अपने बासन

भगवत्पात्रं=भगवत्सेवोपयोगी बासन

स्नानपात्रं=स्नानके बासन

न=नाहीं, मेलयेत्=मिलाने

भावार्थ :

कर्ममें मन्त्रसों स्नान करे।।६२।।

स्नानादिसों देहकी शुद्धि सदा राखनी. एसें ही दोउ हाथन्की शुद्धि हु विशेष सावधानी राखिके करनी. अपने उपयोगमें आते बासन, भगवत्सेवोपयोगी बासन अरु स्नानके पात्रन् कों मिलाने नाहीं।।६३।।

कर्ममां मन्त्रथी स्नान करवुं.

स्नानादिद्वारा देहनी शुद्धि करवी. ते अ प्रमाणे अन्ने हाथोनी शुद्धि पण विशेष सावधानीथी करवी. पोताना उपयोगमां आवता वासणो, प्रभुसेवाना उपयोगमां आवता वासणो तेअ स्नानादिना उपयोगमां आवता वासणोने अुद्धा राखवा, अुद्धा साई करवा.

एवं वस्त्रेऽपि विज्ञेये *शुद्ध्यशुद्धी स्ववैष्णवैः।।

गोपयेत् स्वागमाचारं पाकसेवां हरेरपि।।६४।।

एवं=एसें

वस्त्रे=वस्त्रके विषे

अपि=हु

स्ववैष्णवैः=अपने वैष्णवन्सों

शुद्ध्यशुद्धी=शुद्धि तथा अशुद्धि

स्वागमाचारं=अपने

आगमशास्त्रोक्त आचार

हरेः=हरिकी

पाकसेवां=रसोईकी सेवा

अपि=हु

विज्ञेये=जानने

गोपयेत्=गुप्त राखनी

भावार्थ :

वस्त्रनुके विषेहु एसे ही समजनो. स्वमार्गीय वैष्णवन्सों शुद्धि-अशुद्धिकी समझ लेनी. परम्परासों प्राप्त स्वमार्गीय अन्तरङ्ग आचार तथा प्रभुकी रसोई आदिकी सेवाकों हु अन्यन्सों गुप्त राखनी॥६४॥

कपडां बाबत पण ते ळ प्रमाणे समजवुं. स्वमार्गीय ळाणकार वैष्णवो पासेथी शुद्धि-अशुद्धि बाबतनी समज लेवी. परम्पराथी चाल्या आवता स्वमार्गीय अन्तरङ्ग आचार तथा प्रभुनी रसोई वगैरेनी सेवाने पण बीजथी गुप्त राखवी.

(भगवत्सेवामें व्यवहार्य शुद्ध वस्तुनको उपदेशः)

सौवर्णैः राजतैस् ताम्रैः पात्रैर्व्यवहरेत् परैः॥

पाके स्वीयान् सतीर्थ्याश्च सवर्णान् सन्नियोजयेत्॥६५॥

परैः=दूसरेन्सों/ऊत्तमसों

पाके=रसोईमें

सौवर्णैः=सोनेके, राजतैः=चांदीके

स्वीयान्=परिजनन्कों, (च)=अरु

ताम्रैः=तांबाके

सतीर्थ्यान्=समान गुरुवारे

पात्रैः=पात्रन्सों

सवर्णान्=समान वर्णके लोगन्कों

व्यवहरेत्=व्यवहार करे

सन्नियोजयेत्=सम्मिलित करे

भावार्थ :

सोने, चांदी, तांबा के पात्रन्कों व्यवहारमें लेवे. रसोईमें परिवारके लोगन्कों अरु समान गुरु होंय एसे समान वर्णके लोगन्कों सम्मिलित करे॥६५॥

सोना, चांदी, तांबा ना पात्रोने काममां लेवा. रसोई बनाववामां परिवाना लोको तेमज समान गुरु होय तेवा समान वर्णना लोकोने सम्मिलित करवा.

समर्प्यैव शुचिः पूर्वं हरयेऽन्यत्र योजयेत्॥

***१० द्विमुखं शुचि पात्रं तु ह्यंशुकं लोमजं शुचि॥६६॥**

शुचिः=शुद्ध वस्तु

समर्प्य=सर्पित करके

पूर्वं=प्रथम, हरये=हरिकों

एव=ही

अन्यत्र=अन्य कोउ कार्यमें

शुचि=शुद्ध

योजयेत्=उपयोग करे

लोमजं=ऊनसों बन्यो

पात्रं=पात्र, तु=तो

हि=, अंशुकं=वस्त्र

द्विमुखं=दो मुंहवारो(झारी/करवा)

शुचि=शुद्ध

भावार्थ :

शुद्धवस्तु प्रथम प्रभून्कों समर्पित करे ता पाछें अन्य कार्यमें उपयोग करे. स्नान-पान-प्रक्षालनादि कार्यके ताई दो मुंहवारे (झारी/करवा) पात्र शुद्ध माने जांय हें. एसे ही ऊनके वस्त्र शुद्ध माने जांय हें॥६६॥

शुद्ध वस्तुने सर्व प्रथम प्रभुने समर्पित करवी. ते पछी अन्य कार्यमां वापरवी. स्नान-पान-प्रक्षालन आदि कार्यमां जे मोढावाणा (करवा/अरी) वासाणो शुद्ध मानवामां आवे छे. ते ळ प्रमाणे वस्त्रोमां उनने शुद्ध मानवामां आवे छे.

कार्पासमाहतं शुद्धं नवकौसुम्भयुक् शुचिः॥

विप्रैर्व्यवहतं तीर्थम् आरामं च गृहं शुचिः॥६७॥

कार्पासम्=सूतीवस्त्र

व्यवहतं=उपयोगमेंलियोजातो

आहतं=धोयो भयो

तीर्थम्(जलस्थानम्)=

शुद्धं=शुद्ध

जलस्थान/कुआ, च=अरु

नवकौसुम्भयुक्=नवीन लालरङ्गे भये

आरामं=बगीची

शुचिः=शुद्ध

गृहं=घर, शुचिः=शुद्ध

विप्रैः=ब्राह्मणद्वारा

(कथ्यते)=कहे जात हें

भावार्थ :

सूती वस्त्र धोयो भयो, नवीन रङ्गो भयो शुद्ध कह्यो जात हे. ब्राह्मणद्वारा उपयोगमें लियो जातो जल पवित्र मान्यो जात हैं. एसें ही आराम (बगीची अर्थात् गामके बाहर उपवनमें निर्मित अतिथिनिवास) तथा घर शुद्ध कह्यो जात हे।।६७।।

सुतराउि कापड धोयेलुं, नवुं रंगेलुं शुद्ध मानवुं. ब्राह्मणोद्वारा उपयोगमां लेवातुं जल पवित्र ज्ञाएवुं. ते ज प्रभाणे आराम (बगीची अर्थात् गाम बहार उपवनमां बांधेल अतिथिनिवास) अने घर ने शुद्ध ज्ञाएवुं.

(भगवत्सेवामें जो परायण होय तिनको अन्यदेवाश्रय तो निषिद्ध होयवेपें हु अन्यदेवन्को अपमान कबहु न करनो. तासों कहा-केसे करनो ताको प्रकार)

नान्यदेवं व्रजेद् नैव प्रसक्तौ ह्यपमानयेत्।।

तीर्थेषु तीर्थदेवानां भूदेवानां समर्चनम्।।६८।।

अन्यदेवं=अन्यदेवके पास	अपमानयेत्=अपमान करे
न=नाहीं, हि=ही	तीर्थेषु=तीर्थनमें
व्रजेत्=जाय	तीर्थदेवानां=तीर्थदेवन्को
प्रसक्तौ=सम्मुख होय जांय तो	भूदेवानां=ब्राह्मणन्को
नैव=कबहु नाहीं	समर्चनम्=पूजन, (कुर्यात्)=करे

भावार्थ :

वैष्णवन्को अन्य देवके पास कबहु न जानो. क्वचित् प्रसङ्गवश अन्य देवके सम्मुख होय जायें तब विनको अपमान कबहु न करे. तीर्थनमें तीर्थदेवतान्को तथा पुरोहित ब्राह्मणन्को सत्कार करे।।६८।।

वैष्णवे अन्य देवनी पासो क्यारे पण न जवुं. प्रसङ्गवश क्यारेक अन्य देवोना सम्मुख जवाँ जय तो देवोनुं अपमान क्यारेय न करवुं. तीर्थमां तीर्थदेवताओनो तथा पुरोहित ब्राह्मणोको सत्कार करवो.

(कलियुगमें सन्न्यास, अग्निहोत्र आदि तो शक्य न होयवेतें स्मार्ताग्निकों धारण करनो)

सन्न्यासश्चाग्निहोत्रं च कलौ नैव यथाविधिः।।

सन्दिग्धधर्मसेवापि क्लेशायैवाल्पमेधसाम्।।६९।।

कलौ=कलिकालमें	न एव=शक्य ही नाहिं
सन्न्यासः=सन्न्यास	(भवतः)=हैं
च=अरु	अल्पमेधसाम्=अल्पबुद्धिवारे
अग्निहोत्रं=अग्निहोत्र	सन्दिग्धधर्मसेवापि=सन्देहवारो धर्माचरण
च=हु	क्लेशाय एव=क्लेशजनक ही
यथाविधि=विधिके अनुसार	(भवति)=होत हे

भावार्थ : कलिकालमें सन्न्यास अरु अग्निहोत्र शास्त्रकी आज्ञा अनुसार शक्य नाहिं. तथापि अल्पबुद्धिवारे मनुष्य कर्तव्यके विषे सन्देहवारो होइके कछु धर्मकार्य करे तो वेसो धर्माचरण यथाविधि नाहीं होयवेतें क्लेशको ही कारण बनत हे।।६९।।

कलिकालमें तो सुयास अने अग्निहोत्र नुं शास्त्राज्ञा मुजब आचरण करवुं शक्य नथी. आम छतां अल्पबुद्धिवाणो मनुष्य कर्तव्यनी बाबतमां सन्देहवाणो बनीने जेभ-तेभ कंठक धर्मकार्य करे तो तेवुं धर्माचरण शास्त्राज्ञा मुजबनुं न होवाथी क्लेशमां ज परिणामे छे.

समर्थस्तु तयोः कुर्याद् विद्वान् स्मार्ताग्निधारणम्।।

न्यासाश्रमात् पतन् मर्त्य आरूढपतितोऽगतिः।।७०।।

समर्थः तु=सामर्थ्यवारो तो	तयोः=दोयमेंते
विद्वान्=बुद्धिमान्	स्मार्ताग्निधारणम्=स्मार्ताग्निको धारण
कुर्यात्=करे.	आरूढपतितः=आरूढपतित बनि
न्यासाश्रमात्=सन्न्यासाश्रमते	अगतिः=सद्गतिते रहित
पतन्=गिरवेतें, मर्त्यः=मनुष्य	(भवति)=होत हे

भावार्थ : तातें एसी विषम स्थितिमें समर्थ विद्वान् होय सो सन्न्यास अरु अग्निहोत्र के स्थानपें स्मार्त अग्निकों धारण करे. क्योंकि अधिकार विनाहु जो सन्न्यास आश्रममें जात हे सो कोउ फलकों प्राप्त न करिके अरूढपतित होत हे॥७०॥

तेथी आधी विषम परिस्थितिमां समर्थ विद्वान् होय ते सुयास तेमज अग्निहोत्र ना स्थाने स्मार्त अग्निने धारण करे. कारणके विना अधिकारे जे सुयास आश्रमनी दीक्षा स्वीकारे छे ते कोई पण इणने प्राप्त कर्या विना आरूढपतित थाय छे.

यद्यप्येवं हि गार्हस्थ्यं वर्णधर्मेण दुष्करम्॥

तथाप्यायातपतितं तद् बिभृयाद् देहयात्रया॥७१॥

एवंहि=याहि प्रकारसों	(अस्ति)=हे, तथापि=तोहु
यद्यपि=यद्यपि	आयातपतितं=आय पर्यो हे तातें
वर्णधर्मेण=वर्णधर्मसों	तद्=वाको
गार्हस्थ्यं (अपि)=गृहस्थधर्म हु	देहयात्रया=देहयात्राके साथ
दुष्करम्=कठिन	बिभृयात्=निर्वहन करनो

भावार्थ : या प्रकार गृहस्थाश्रममें रहिके जो स्मार्ताग्निकों धारण करे हे वातें हु वर्णाश्रमधर्मके अनुसार गृहस्थाश्रम यद्यपि कठिन हे तोहु क्योंकि अनायास गृहस्थाश्रममें आय पर्यो हे तातें जेसैं हु बनि आवे तेसैं देहयात्राके साथ ताकों निर्वाह तो करे॥७१॥

आ प्रकारे गृहस्थाश्रममां रहीने जे स्मार्ताग्निने धारण करे छे तेनामाटे पण जे के पणश्रमधर्मना अनुसार गृहस्थाश्रम कठिन छे छांय केभके ते अनायासज गृहस्थाश्रममां आवी पड्यो छे तेथी यथाशक्ति देहयात्रानी साथे गृहस्थाश्रमनो निर्वाह करवानो प्रयत्न करे.

न गार्हस्थ्यं विना देह-यात्रा-धर्मोऽपि सिध्यति॥

अतस्तस्मिन् स्थितस्यैव यत्किञ्चित् सिद्धि-सम्भवः॥७२॥

(यतः)=क्योंके	अतः=तातें
गार्हस्थ्यं=गृहस्थधर्म	तस्मिन्=वामें
विना=विना	स्थितस्य एव=रहे भयेकों ही
देह-यात्रा-धर्मः=देहयात्राके धर्म	यत्किञ्चित्=कछुक
अपि=हु, न=नाहीं	सिद्धि-सम्भवः=सिद्धिकी
सिध्यति=सिद्ध होत हैं.	सम्भावना, (भवति)=रहतहे

भावार्थ : गृहस्थाश्रमके विना पितृकर्म, पुत्रोत्पत्ति आदिके अभावमें देहयात्राके अन्य धर्महु सिद्ध होइ सकत नाहीं. अन्य आश्रमधर्म तो कालबलसों दुष्कर होय गये हैं तब गृहस्थधर्ममें रहे भयेकों ही कछुक सिद्धि प्राप्त होयवेकी सम्भावना शेष रहे हे॥७२॥

गृहस्थाश्रमना विना तो पितृकर्म, पुत्रोत्पत्ति आदिना अभावमां देहयात्राना अन्य धर्मों पण सिद्ध थई शकतां नथी. अन्य आश्रमधर्मों ज्यारे काणजणे दुष्कर जनी गयां छे त्यारे गृहस्थधर्ममां रहेलाओने ज कंईक सिद्धि प्राप्त थवानी सम्भावना शेष रहे छे.

आश्रमो द्विविधः कौर्म तत्रोदासीनको गृही॥

आद्येऽपि नैष्ठिकश्चान्त्ये वैष्णवोऽधिकृतस्ततः॥७३॥

कौर्म (पुराणे)=कूर्म पुराणमें	अपि=हु
आश्रमः=गृहस्थाश्रम	नैष्ठिकः=निष्ठावारो
द्विविधः=दो प्रकारको	च=अरु
प्रोक्तः=कह्यो हे	अन्त्ये=अन्तिम सन्न्यासाश्रममें
तत्र=तामें, एकः=एक	वैष्णवः=वैष्णव
उदासीनकः='उदासीन'	अधिकृतः=अधिकारी
अपरः=दूसरो	(इत्यपि=एसो हु
गृही='गृही' कहवावत हे	उक्तम्=कह्यो
आद्ये=प्रथम ब्रह्मचर्याश्रममें	अस्ति)=हे

भावार्थ : कूर्मपुराणमें सब आश्रमन्को श्रुतिसिद्ध द्वैविध्य बतायो हे. तामें प्रथम ब्रह्मचर्याश्रममें

१. मरणपर्यन्त ब्रह्मनिष्ठ द्वैके प्रथमाश्रममें रहिवेवारेकू 'नैष्ठिक-ब्रह्मचारी' जाननो. अरु
२. विधिवद् वेदाध्ययन करिके गृहस्थाश्रममें जायवेकी इच्छावारेकू 'उपकुर्वाण-ब्रह्मचारी' जाननो.

गृहस्थ हु १. 'उदासीन' अरु २. 'साधक' एसें दोय प्रकारको कह्यो हे. तामें कुटुम्बके भरण-पोषणादिमें फंस्यो भयो गृहस्थ 'साधक' कह्यो जात हे. अरु देव-ऋषि-पितरके ऋणन्कू चुकायके घर-धन-परिवारको छांडिके जो इकलो ही मोक्षेच्छासो विचरण करतो रहे वाको 'उदासीन' कह्यो जात हे. एसें ही वानप्रस्थ हु 'तापस' अरु 'सान्न्यासिक' एसें दोय प्रकारके होत हैं. सन्न्यासी हु 'पारमेष्ठिक' अरु 'भिक्षु' एसें दोय प्रकारके होत हैं :

सर्वेषामाश्रमाणान्तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितं।

ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः॥

योऽधीत्य विधिवद् वेदान् गृहस्थाश्रममाब्रजेद्।

'उपकुर्वाणको' ज्ञेयो 'नैष्ठिको' मरणान्तिकः॥

'उदासीनः' 'साधक'श्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्।

कुटुम्बभरणायत्तः साधकोऽसौ गृही भवेत्॥

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम्।
एकाकी यस्तु विचरेद् उदासीनः स मौक्षिकः॥
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद् देवान् जुहोति च।
स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थः 'तापसो' मतः॥
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्।
'सान्न्यासिकः' स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः॥
योगाभ्यासरतो नित्यम् आरुरुक्षुर्जितेन्द्रियः।
ज्ञानाय वर्तते भिक्षुः प्रोच्यते 'पारमेष्ठिकः'॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान् नित्यतृप्तो महामुनिः।
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः स योगी 'भिक्षु'रुच्यते"॥

(कूर्मपुरा. २।७६-८४)

कूर्मपुराणामां अधा आश्रमोनुं श्रुतिसिद्ध द्वैविध्यं अताववामां आव्युं छे. तेमां प्रथमं अत्रत्यर्याश्रममां

१. मरणपर्यन्तं अत्रनिष्ठं अनीने प्रथमं आश्रममां अरु रहेवावाणाने 'नैष्ठिक-अत्रत्यारी' अणवो. अने
२. विधिवद् वेदाध्ययन करीने गृहस्थाश्रममां अणवानी अरु रहेवावाणाने 'उपकुर्वाण-अत्रत्यारी' अणवो.

गृहस्थ पाण १. 'उदासीन' अने २. 'साधक' आम अे प्रकारनो कह्यो छे. तेमां कुटुम्बना अरण-पोषणादिमां अटवायेलो गृहस्थ 'साधक' कहेवाय छे. अने देव-ऋषि-पितरना ऋणोने युकवीने घर-धन-परिवारनो त्याग करीने अे अेकलो अे भोक्षप्रार्प्तिनी अरु रहेवाथी विचरण करतो रहे छे तेने 'उदासीन' कहेवामां आवे छे. ते अे प्रमाणे वानप्रस्थ पाण 'तापस' अने 'सान्न्यासिक' आम अे प्रकारनो होय छे. सुयासी पाण 'पारमेष्ठिक' अने 'भिक्षु' आम अे प्रकारनो होय छे. (कूर्मपुराणाना भूण वयनो उपर आपेल छे).

(द्विजेतर पुष्टिमार्गीयनके कर्तव्यको निर्देश)

शूद्रस्तु हिंसकार्येण निषिद्धस्याशनेन च॥

निवृत्तोऽसौ भजेत् कृष्णं महद्भिरनुकम्पितः॥७४॥

शुद्रः तु=शूद्र तो	निवृत्तः=निवृत्त होयके
हिंस्रकार्येण=जामें जीवहिंसा होय	महद्भिः=बड़ेन्सों
एसे कार्यसों, च=अरु	अनुकम्पितः=कृपा प्राप्त करिके
निषिद्धस्य=निषिद्धान्के	असौ=या, कृष्णं=कृष्णकों
अशनेन=भोजनसों	भजेत्=भजे

भावार्थ : द्विजेतर लोग जामें जीवहिंसा होय एसी आजीविका, कार्य आदिको तथा निषिद्ध भोजनको त्याग करिके बड़ेन्की कृपा प्राप्त करिके कृष्णभजन करें।।७४।।

द्विजेतर लोको जेभां लुवलिसा होय तेवी आलुविका, कार्य वगेरे नो तथा निषिद्ध भोजनको त्याग करीने; ज्येष्ठ वैष्णवोनी कृपा भेणवीने कृष्णानी सेवा करे.

स हितं हरिभक्तानां ब्राह्मणानां चरेद् गवाम्।।

पादसेवा च महतां यद्वृत्या तुष्यते हरिः।।७५।।

स=वो	महतां=बड़ेन्के
हरिभक्तानां=भगवद्भक्तनको	पादसेवा=चरणन्की सेवा
ब्राह्मणानां=ब्राह्मणनको	च=हु, (तेन=वाकों
गवाम्=गायनको	करणीया)=करनी चाहिये
हितं=हित होय एसो	यद्वृत्या=जावृत्तिसों, हरिः=हरि
चरेत्=आचरण करे	तुष्यते=प्रसन्न होत हें

भावार्थ : द्विजेतरकों भगवद्भक्त, ब्राह्मण अरु गायन् को हित होय एसे कार्य करने. भगवान्ने गीतामें द्विजेतरनको कार्य द्विजन्की परिचर्या बतायी हे सो करनी. एसे स्वधर्माचरणमें परायण होयवेपें हरि निश्चय ही प्रसन्न होत हें।।७५।।

द्विजेतर लोकोजे भगवद्भक्त, ब्राह्मण अने गायो नुं हित थाय तेवा कार्यों करवा. भगवाने गीतामां द्विजेतर लोकोनुं कार्य द्विजेनी परिचर्या बताव्युं छे तेथी ते प्रभाषे करवुं. आम स्वधर्माचरणमां परायण रहेवाथी भगवान् हरि अवश्य प्रसन्न थाय छे.

दानं व्रतं पैतृकं च शौचं शान्तिम् अथाश्रयेत्।।

हरिमेव भजेत् प्रेम्णा तेन सिध्यति सत्वरम्।।७६।।

दानं=दान, व्रतं=व्रत	आश्रयेत्=आश्रय करे
पैतृकं=श्राद्ध-तर्पणादि	प्रेम्णा=प्रेमसों, हरिम्=हरिको
शौचं=पवित्रता	एव=ही, भजेत्=भजे
अथच=अरु	तेन=तातें, सत्वरम्=शीघ्र
शान्तिम्=सन्तोषरूप शान्तिको	सिध्यति=सिद्धि होत हे

भावार्थ : दान, व्रत, श्राद्ध-तर्पणादि पितृसम्बन्धी कार्य अवश्य करने. शास्त्रानुसार शुद्धि-पवित्रता अरु यथालाभ सन्तोषरूपा शान्ति राखनी. एसें करत प्रेम-भक्तिसों श्रीकृष्णको ही भजन करतें शीघ्र सिद्धि प्राप्त होत हे।।७६।।

दान, व्रत, श्राद्ध-तर्पणादि पितृकार्य अवश्य करवा. शास्त्रानुसार शुद्धि-पवित्रता अने यथालाभ-सन्तोषरूपी शान्ति राखनी. आम करतां प्रेम-भक्तिथी श्रीकृष्णानी ज सेवा करवाथी शीघ्र सिद्धि प्राप्त थाय छे.

न वेदश्रवणं कार्यं स्पर्धासूयादिनान्यतः।।

न्यग्भावेन प्रपन्नोऽसौ भवेद् दासो हरेर्गुरोः।।७७।।

(तेन)=वाकों, अन्यतः=अन्यसों प्रपन्नः=शरणागत

स्पर्धासूयादिना=स्पर्धा-ईर्ष्या आदिसौं	असौ=ये
वेदश्रवणं=वेदको श्रवण	हरेर्गुरोः=हरि-गुरुको
न=नाहीं, कार्यम्=करनो	दासः=दास
न्यग्भावेन=दीनतासौं	भवेत्=बने

भावार्थ : द्विजेतरनकों अन्यन्यनसौं स्पर्धा अथवा ईर्ष्या के भावसौं जामें विनको अधिकार नाहीं हे एसो वेदको श्रवणादि नाहीं करनो. दीन भावसौं शरणागत होयके हरि-गुरुको दास बनिके रहनो।।७७।।

द्विजेतर लोकोअे अन्यवर्णाना लोको प्रत्ये स्पर्धा के ईर्ष्या भावथी, शास्त्रे न्नेमां तेओनो अधिकार मान्य नथी क्यो तेवा, वेदनुं श्रवण आदि क्यो न करवा. दीन भावे शरणागत थईने हरि-गुरुना दास बनीने रहवुं.

(स्त्रियन्के भगवद्भजनकी रीतिको निरूपण)

सधवा भर्तृभावेन विधवा पुत्रभावतः।।

श्रीकृष्णं संश्रयेत् साध्वी जितचित्तेन्द्रिया शुचिः।।७८।।

जितचित्तेन्द्रिया=चित्त-	भर्तृभावेन=पतिभावसौं
इन्द्रियनपें संयम वारी	विधवा=विधवा स्त्री
शुचिः=पवित्र	पुत्रभावतः=पुत्रभावसौं
साध्वी=सती	श्रीकृष्णं=श्रीकृष्णको
सधवा=सौभाग्यवती	संश्रयेत्=आश्रय करे

भावार्थ : चित्त अरु इन्द्रियन् पें संयमवारी, पवित्र आचरणवारी साधुस्वभावकी सौभाग्यवती स्त्री पतिभावसौं अरु विधवा स्त्री पुत्रभावसौं श्रीकृष्णको आश्रय करे।।७८।।

चित्त अने इन्द्रिय पर संयम, पवित्र आचरण तेमळ साधुस्वभाव वाणी सौभाग्यवती स्त्री पतिभावथी अने विधवा स्त्री पुत्रभावथी श्रीकृष्णानो आश्रय करे.

पति-पुत्रादि-बन्धूनाम् आनुकूल्येऽस्य सेवनम्।।

तदभावे भजेद् भक्त्या कीर्तनैः श्रवणैः स्मृतैः।।७९।।

पतिपुत्रादि-बन्धूनाम्=पति,	तदभावे=वाके अभावमें
पुत्रादि तथा बन्धुजन	कीर्तनैः=कीर्तनसौं
आनुकूल्ये=अनुकूल होय तो	श्रवणैः=श्रवणसौं
अस्य=या(श्रीकृष्णस्य)=श्रीकृष्णकी	स्मृतैः=स्मरणसौं
सेवनम्=सेवा	भक्त्या=भक्तिपूर्वक
(कार्यम्)=करनी	भजेद्=भजन करे

भावार्थ : परिवारके पति-पुत्रादि परिजन तथा बन्धुजन यदि अपने अनुकूल होय तो श्रीकृष्णकी स्वगृहमें सेवा करनी. वे लोग यदि अनुकूल न होय तो भक्तिभावसौं प्रभुके श्रवण-कीर्तन-स्मरण करने।।८०।।

परिवारना पति-पुत्रादि परिजनो तथा बन्धुजनो जो पोताने अनुकूल होय तो श्रीकृष्णनी स्वगृहमां सेवा करवी. जो तेओ अनुकूल न होय तो भक्तिभावथी प्रभुना श्रवण-कीर्तन-स्मरण करवा.

तेषामेव तथात्वेतु परिचर्या समन्दिरात्।।

हरेर्गुरोः सम्भवति ह्यस्वतन्त्राः स्त्रियो यतः।।८०।।

तेषाम्=विनके, एव=ही	(पूजा/सेवामेंबनिआवेसो
तथात्वे=वेसे(प्रतिकूल)होयवेपें	परचारगी), सम्भवति=सम्भव हे
तु=तो	यतः=क्योंके

समन्दिराद् हरेः=कोउभगवत्स्वरूपके	स्त्रियः=स्त्रीजन
देवालयस्थ होयवेके कारण	हि=तो
(अथवा)गुरोः=गुरुके कारण	अस्वतन्त्राः=पराधीन
परिचर्या=परिचर्या	(भवन्ति)=होत हैं

भावार्थ : प्रायः स्त्रीजन क्योंके अपनी इच्छानुसार कार्य करिवेकुं समर्थ होत नाहिं अतः यदि पति पुत्र आदि अरु बन्धुजन अनुकूल होंय तब ही विनके सङ्ग मिलिके घरमें श्रीकृष्णकी यथायोग्य सेवा-परिचर्या सम्भव होत हे. अन्यथा मर्यादामार्गके अनुसार काहु देवालयमें बिराजमान भगवत्स्वरूपकी अर्चनामें अथवा पुष्टिमार्गीय गुरुकी परचारगी करिवेते स्त्रीजननकुं थोड़ो-बहोत परोक्ष भजन शक्य हे।।८०।।

धरुं करीने स्त्रीजनो केभके पोतानी इच्छानुसार कार्य करवाभां समर्थ होत नथी तेथी न्ने पति-पुत्रादि तथा बन्धुजनो अनुकूल होय तो न तेमनी साथे उणी-भणीने घरभां श्रीकृष्णानी यथायोग्य सेवा-परिचर्या करवी तेमनाभाटे सम्भव बनती होय छे. न्ने आम शक्य न होय तो मर्यादामार्ग अनुसार कोई देवालयभां बिराजता भगवत्स्वरूपनी अर्चनाथी अथवा पुष्टिमार्गीय गुरुनी परिचर्या करवाथी पशु स्त्रीजनोने भगवत्सेवानो परोक्ष लाभ भणी शके छे.

स्वतन्त्रतायां दोषो हि स्त्रीणां सर्वत्र जायते।।

अतस्तथा तथा भूत्वा हरिः सेव्यस्तदिच्छया।।८१।।

स्त्रीणां=स्त्रीजननकुं	(अस्वतन्त्रैव)=अस्वतन्त्र ही
स्वतन्त्रतायां=स्वतन्त्रतासोंबरतवेपेंतो	भूत्वा=रहिके
हि=निश्चय	तदिच्छया=परिवारजननकी
सर्वत्र=सबठिकानें,दोषः=दोष	अथवा भगवदिच्छानुसार
जायते=होत हे, अतः=तातें	हरिः=हरिकी
तथा=विनकों, तथा=वेसे	सेव्यः=सेवा करनी चाहिये

भावार्थ : पति-पुत्रादिक अनुकूल नाहीं होंय तथापि स्त्रीजन यदि विनकी इच्छासों विरुद्ध आचरण करत हैं तब विनकी सर्वत्र निन्दा होत हे, तातें चित्तमें क्लेश होत हे. अतः जिनके आश्रित होंय विनके प्रतिकूल न होइके, प्रभुकी वेसी ही इच्छा हे एसी भावनासों धैर्य धारण करिके प्रभुको आन्तर भजन करे. अरु यदि उपलब्ध होय तो भगवत्सेवापरायण भगवदीयकी वैष्णवकी परिचारागीद्वारा परोक्ष भगवद्भजनहु करे।।८२।।

पति-पुत्रादि अनुकूल न होय तेम छतां न्ने स्त्रीजन तेमनी इच्छाथी विरुद्ध आचरण करे तो तेओ लोकभां सर्वत्र निन्दाने पात्र बनता होय छे. आथी तेओ न्नेना आश्रित होय तेने प्रतिकूल थया विना, प्रभुनी अथी न इच्छा इशे अथी भावनाथी धैर्य धारण करीने प्रभुनुं आन्तर भजन करे. आ साथे उपलब्ध होय तो भगवत्सेवापरायण भगवदीय वैष्णवनी परिचर्याद्वारा परोक्ष भगवद्भजन पशु करे.

चित्रमात्रेऽपि सेवा स्यात् प्रतिबन्धे गुरोर्गिरा।।

छलेनापि भजन् कृष्णं मुच्यते गोपिकादिवत्।।८२।।

प्रतिबन्धे=प्रतिबन्ध होयवेपें	स्यात्=होइ सकत हे
गुरोः=गुरुकी	छलेन अपि=छलसों हु
गिरा=आज्ञासों	कृष्णं=कृष्णकों, भजन्=भजवेतें
चित्रमात्रे अपि=चित्रमात्रमें हु	गोपिकादिवत्=गोपीजननके जेसें
सेवा=सेवा	मुच्यते=मुक्त होत हे

भावार्थ : प्रतिबन्ध होयवेपें (अथवा शिला-धातुसों निर्मित भगवत्स्वरूपकी सेवा करि सकवेकी अनुकूलता न होय तो) गुरुकी आज्ञा लेयके श्रीकृष्णके चित्रस्वरूपकी हु सेवा होइ सकत हे. कृष्णावतारमें कर्मकाण्डी ब्राह्मणनकी पत्निएं अपने पतीनकी आज्ञा विना, विनके विरोध करिवेपें हु प्रभुनकों यज्ञकी सामग्री अरोगावे गयीं विनको हु उद्धार जेसें प्रभुनमें कियो हतो तेसें वर्तमानमें हु ज्येष्ठ परिजननकी आज्ञा विना हु भगवत्सेवा करिवेतें उद्धार होत ही हे।।८४।।

પ્રતિબન્ધ હોયવેળે (અથવા શિલા-ધાતુથી નિર્મિત ભગવત્સ્વરૂપની સેવા કરી સકવાની અનુકુળતા ન હોય તો) ગુરુની આજ્ઞા લઈને શ્રીકૃષ્ણના ચિત્રસ્વરૂપની પણ સેવા કરી શકાય છે. કૃષ્ણાવતારમાં કર્મકાણ્ડી બ્રાહ્મણોની આજ્ઞા વિના તેમજ તેઓના વિરોધ કરવા છતાં પ્રભુમાટે યજ્ઞની સામગ્રી આરોગાવવા ગયેલ બ્રાહ્મણપત્નિઓનો ઉદ્ધાર જેમ પ્રભુએ કર્યો હતો તેમ વર્તમાનમાં પણ જ્યેષ્ઠ પરિજનોની આજ્ઞા વિના પણ ભગવત્સેવા કરવાથી પ્રભુ ઉદ્ધાર કરે જ છે.

પુરુષાપેક્ષયા સ્ત્રીણાં હૃદયં મૃદુ દૃશ્યતે।।

અતસ્તદનુરાગોઽત્ર સદા એવાભિષજ્યતે।।૮૩।।

પુરુષાપેક્ષયા=પુરુષની અપેક્ષા	સ્ત્રીણાં=સ્ત્રીજનનકે
હૃદયં=હૃદય	તદનુરાગો=વિનકો અનુરાગ
મૃદુ=નરમ	અત્ર=યહાં, સદા=શીઘ્ર
દૃશ્યતે=દેખ્યો જાત હે.	એવ=હી
અતઃ=તાતે	અભિષજ્યતે=સિદ્ધ હોય જાત હે

ભાવાર્થ : પુરુષની તુલનામેં સ્ત્રીજનનકે હૃદય કોમલ હોત હેં. તાતે પ્રભુમેં વિનકો અનુરાગ પુરુષનકે કરતે શીઘ્ર હોય જાત હે।।૮૫।।

પુરુષોની સરખામણીમાં સ્ત્રીઓનું હૃદય કોમળ હોય છે. તેથી પ્રભુમાં તેઓનો અનુરાગ પુરુષો કરતાં ઝડપથી થઈ જતો હોય છે.

કામદોષો હિ નારીણાં કનકાનાં યથા રજઃ।।

તજ્જયે વિજિતઃ કૃષ્ણઃ કૃષ્ણઃ સ્ત્રીણાં પ્રિયો યતઃ।।૮૪।।

કનકાનાં=સુવર્ણમેં	તજ્જયે=તાકોં જીતવેતેં
-------------------	-----------------------

યથા=જેસેં	કૃષ્ણઃ=શ્રીકૃષ્ણ
રજઃ=રજ	વિજિતઃ(ભવતિ)=જીતે જાત હેં
(દોષઃ=દોષ, તથા)=તેસેં	યતઃ=ક્યોંકે
નારીણાં=સ્ત્રીજનનમેં હુ	કૃષ્ણઃ=શ્રીકૃષ્ણ
હિ=નિશ્ચય	સ્ત્રીણાં=સ્ત્રીનકોં
કામદોષઃ=કામદોષ	પ્રિયઃ=પ્રિય
(ભવતિ)=હોત હે.	(અસ્તિ)=હેં

ભાવાર્થ : સુવર્ણકો દોષ જેસેં રજ હોત હે તેસેં સ્ત્રીનમેં દોષ કામ હોત હે. પુષ્ટિભક્તિ તો ક્યોંકે નિર્ગુણ હોત હે તાતેં કામભાવમેં વિજય પાવેં તો સ્ત્રીજન નિર્ગુણભાવસોં શીઘ્ર હી પ્રભૂનકોં સ્વાધીન કરિ સકત હેં. શ્રીકૃષ્ણતો નહિંતો હુ સ્ત્રીનકોં પ્રિય હોતહીહેં।।૮૫।।

સાનોનો દોષ જેમ રજ હોય છે તેમ સ્ત્રીઓમાં દોષ 'કામ' હોય છે. પુષ્ટિભક્તિ તો કેમકે નિર્ગુણ હોય છે તેથી કામભાવ ઉપર જો વિજય મેળવે તો સ્ત્રીઓનો ઝડપથી પ્રભુને સ્વાધીન કરી શકે છે. શ્રીકૃષ્ણ તો આમ પણ સ્ત્રીઓને પ્રિય હોય જ છે.

ઉદકી ચ પ્રસૂતા સ્ત્રી અશુચિશ્ચ તથા પુમાન્।।

દર્શન-સ્પર્શનાદીનિ સેવ્યમૂર્તેર્ વિવર્જયેત્।।૮૫।।

ઉદકી=માસિકધર્મવારી	પુમાન્=પુરુષ, ચ=હુ
ચ=અરુ, પ્રસૂતા=પ્રસૂતા	સેવ્યમૂર્તેઃ=સેવ્ય મૂર્તિકે
સ્ત્રી=સ્ત્રી, તથા=અરુ	દર્શન-સ્પર્શનાદીનિ=દર્શનસ્પર્શ આદિકો
અશુચિઃ=સૂતકી/અપવિત્ર	વિવર્જયેત્=ત્યાગ કરે.

ભાવાર્થ : અટકાવવારી કિંવા જચ્ચા હોય સો એસી સ્ત્રી તથા સૂતકી અરુ અપવિત્ર અવસ્થાવારે સ્ત્રી-પુરુષ સેવ્ય પ્રભુસ્વરૂપકે દર્શન-સ્પર્શ આદિ ન કરેં।।૮૫।।

रत्नस्वला तथा प्रसूता स्त्री तथा सूतकी तेभन् अपवित्र अवस्थावाणा स्त्री-
पुरोधोऽन्ने सेव्य प्रभुस्वप्नना दर्शन-स्पर्श आदि न करवा.

(सेव्य भगवत्स्वरूपके प्रकारः सेवाको प्रकारः स्वरूपप्रतिष्ठाको प्रकारः स्वरूपकी
शुद्धिको प्रकारः स्वरूप कहांते प्राप्त करनो ताको प्रकारः इत्यादि विषयक उपदेश)

चित्रमूर्तिरविज्ञानां पराधीनात्मनामपि॥

शुचिश्लक्षणापीच्यां च गुरुदत्तां भजेद् वरैः॥८६॥

तीर्थतोयैर्निजैर्मन्त्रैः संस्कृतां सुमनोहराम्॥

लघ्वीमेव भजेद् मूर्तिं यथालब्धोपचारकैः॥८७॥

शुचिश्लक्षणां=पवित्र अरु सुकुमार

च=अरु

अपीच्यां=अति सुन्दर

गुरुदत्तां=गुरुसों प्राप्त

(मूर्तिं)=भगवत्स्वरूपको

भजेद्=भजे, वरैः=श्रेष्ठ

तीर्थतोयैः=तीर्थके जलसों

निजैः मन्त्रैः=अपने मन्त्रसों

संस्कृतां=संस्कार करी भई

सुमनोहराम्=सुन्दर-मनोहर

लघ्वीमेव=छोटी सी

मूर्तिं=भगवन्मूर्तिको

यथालब्धोपचारकैः=सहजतासों

उपलब्ध वस्तुनसों

भजेद्=सेवाकरे.

अविज्ञानां=अल्पज्ञानीनको

पराधीनात्मनाम्=(तथा)

पराधीन लोगनको

अपि=हु

चित्रमूर्तिः=चित्रस्वरूप

(सेव्या=सेवायोग्य

भवति=होतहे)

भावार्थ : गुरुसों प्राप्त भई पवित्र, सुकुमार अरु अति सुन्दर ऐसे भगवत्स्वरूपकी
सेवा करनी. श्रीयमुनाजी जैसे श्रेष्ठ तीर्थके जलसों, सम्प्रदायपरम्परासों प्राप्त
निजमन्त्रसों संस्कार करे भये सुन्दर मनोहर बहुत बड़े नहीं ऐसे भगवत्स्वरूपकी
सहजतासों उपलब्ध वस्तुनसों सेवा करे. जिनको सेवाविधि आदिको पूर्ण ज्ञान न

होय ओर/अथवा पराधीन होयवेतें अन्य भगवत्स्वरूपकी सेवा करिवेकी अनुकूलता
जिनको न होय तिनको चित्रस्वरूपकी सेवा करनीही उचितहे॥८७॥

गुरु पासेथी प्राप्त थयेल पवित्र, सुकुमार अने अति सुन्दर भगवत्स्वरूपकी
सेवा करवी. श्रीयमुनाजी जेवा श्रेष्ठ तीर्थजलथी, सम्प्रदायपरम्पराथी प्राप्त थयेल
निजमन्त्रथी जेनो संस्कार करेलो होय तेवा सुन्दर मनोहर बहु मोटा नहीं येवा
भगवत्स्वरूपकी सेवा सहजताथी उपलब्ध वस्तुओथी करवी. जेओने सेवाविधि
वगेरेनुं पूर्ण ज्ञान न होय अने / अथवा पराधीन होवाने कारणे अन्य
भगवत्स्वरूपकी सेवा करवानी जेने अनुकूलता न होय तेओने चित्रस्वरूपकी सेवा
करवीन योग्य छे.

नात्र प्राणप्रतिष्ठादि व्यापकत्वादजीवतः॥

स्थान-शुद्ध्यर्थमेवैतत् शब्दार्थमपि सद्गुरोः॥८८॥

व्यापकत्वात्=व्यापक होयवेतें

अजीवतः=जीवात्माकी न्याई

केवल प्राणाध्यासयुक्त होयवेपेही

देहमें कहुं प्रविष्ट होयवेकी क्षुद्र

सामर्थ्य न होयवेतें

अत्र=यहां

(मूर्तौः)=मूर्तिमें

प्राणप्रतिष्ठादि=प्राणप्रतिष्ठा

आदि संस्कारविधि

(आवश्यकः)=आवश्यक

न=नाहीं हे

एतत्=ये

(संस्कारः)=संस्कार

स्थानशुद्ध्यर्थमेव=भौतिकस्थान

(शिलाधातु आदि)की शुद्धिकेलिये

सद्गुरोः=सद्गुरुकी

शब्दार्थमपि=आज्ञाके

अर्थहु निरूपित भयेहें

भावार्थ : परब्रह्म श्रीकृष्ण तो सर्वव्यापक होयवेतें अरु मनुष्य-देवता आदीनके
जैसे प्राकृत नाहीं होयवेतें श्रीकृष्णके सेव्यस्वरूपमें प्राणप्रतिष्ठा आदि शास्त्रीय
विधि करिवेकी पुष्टिभक्तिसम्प्रदायमें आवश्यकता नाहीं. पूर्वश्लोकमें कहे संस्कार

तो (जा शिला-धातु-काष्ठ आदिसों मूर्ति बनी हे वा) स्थानकी शुद्धिके अर्थ अरु गुरुकी आज्ञा प्राप्त करवेके अर्थ होत हे.

परब्रह्म श्रीकृष्ण तो सर्वव्यापक होवाथी तेमळ मनुष्य-देवतानी जेभ प्राकृत न होवाथी श्रीकृष्णना सेव्यस्वरूपमां प्राणपतिष्ठा वगेरे शास्त्रीय विधि करवानी पुष्टिभक्तिसम्प्रदायमां आवश्यकता नथी मनाई. पूर्वश्लोकमां कहेवायेला संस्कारो तो (जे शिला-धातु-काष्ठ वगेरेथी मूर्तिनुं निर्माण थयुं होय ते) स्थाननी शुद्धिमाटे तेमळ गुरुनी आज्ञा प्राप्त करवामाटे होय छे.

अशुचिस्पर्शने तस्याः तथा पञ्चामृतैरपि॥

होमैर्दानेन संशोध्या वैदिकेन निजात्मवत्॥८९॥

तथा=अरु	होमैः=होमसों
तस्याः=वाकों	दानेन=दानसों
अशुचिस्पर्शने=अपवित्रको	तथा=अरु
स्पर्श होयवेपें	वैदिकेन=वैदिक
निजात्मवत्=अपने जेसें	(कर्मणा)=कर्मसों, अपि=हु
पञ्चामृतैः=पञ्चामृतसों	संशोध्या=शुद्ध करनी

भावार्थ : कबहुक सेव्य भगवत्स्वरूपकों अपवित्रको स्पर्श होय जाय अथवा कोई अवैष्णव वाके दर्शन करि जाय तो जेसें स्नानादिसों अपन् अपनी शुद्धि करत हें तेसें सेव्यस्वरूपकी शुद्धि हु पञ्चामृतस्नान, होम, दान तथा वैदिक कर्म आदिसों करनी॥८९॥

जे क्यारेक सेव्य भगवत्स्वरूपने अपवित्रनो स्पर्श थई ज्ञय अथवा कोई अवैष्णव तेना दर्शन करी ज्ञय तो जेभ स्नानादिथी आपणे पोतानी शुद्धि करता होईजे छीजे तेम आपणा सेव्यस्वरूपनी पण शुद्धि पञ्चामृतस्नान, होम, दान तथा वैदिक कर्म आदिथी करवी.

गुरुदत्तां स्वयंलब्धां भक्तैरपि सुपूजिताम्॥

व्यङ्गाङ्गीमपि सेवेत यदि भावो न बाध्यते॥९०॥

गुरुदत्तां=गुरुके द्वारा पधराइ भई	स्वयंलब्धां=स्वयंकुं प्राप्त भई
भक्तैरपि=भक्तनूसों	सेवेत=सेवा करे
सुपूजितां=सेवित	यदि=यदि
व्यङ्गाङ्गीम्=खण्डित	भावः=भाव
अपि=हु	न बाधते=बाधित न होतो होय
(मूर्तिं)=मूर्तिकी	(तर्हिं)=तो

भावार्थ : गुरुद्वारा पधराई, स्वयंकुं कहंते प्राप्त भई होय, अथवा पूर्वमें अन्य कोउ भगवदीयने जाकी सेवा करी होय एसी भगवन्मूर्तिकी सेवा होई सकत हे. एसें ही यदि भाव बाधित होतो न होय तो खण्डित होय गई होय एसीहु भगवन्मूर्तिकी सेवा होई सकत हे॥९०॥

गुरुजे पधरावी आपेली, पोतानेज कथांकथी प्राप्त थयेली अथवा पूर्वे अन्य कोई भगवदीये जेनी सेवा करी होय तेवी भगवन्मूर्तिनी सेवा करी शकय. ते ज प्रमाणे जे पोतानो भाव बाधित थतो न होय तो खण्डित थई गई होय तेवी पण भगवन्मूर्तिनी सेवा पुष्टिभक्तिसम्प्रदायमां करी शकय छे.

(नित्यसेवाके स्वरूपके उपदेशको उपक्रम)

(१. उपक्रम)

प्रातरारभ्य मध्याह्नावधिः चैवापराहणके॥

तत्तल्लीलानुभावेन भजेत् स्व-गुरु-सम्मताम्॥९१॥

प्रातः=सवेरेसों

तत्तल्लीलानुभावेन=तत्-तत्

आरभ्य=आरम्भ करके	लीलाकी भावनासों
मध्याह्नावधि:=मध्याह्न पर्यन्त	स्वगुरुसम्मताम्=अपने गुरुकों सम्मति
चैव=अरु	(मूर्तिं)=मूर्तिकों
अपराहणके=सायंकालमें	भजेत्=भजे

भावार्थ : प्रातःकालसों आरम्भ करके मध्याह्न पर्यन्त तेसैंई सायंकालमें तत्तत्कालानुरूप प्रभून्की लीलाकी भावना करते भये अपने गुरुकी सम्मति होय एसे भगवत्स्वरूपकी सेवा करे।।११।।

प्रातःकालथी आरम्भ करीने मध्याह्न पर्यन्त अने ते ७ प्रभाणे सायंकालमां पण तत्तत्कालना अनुग्रह प्रभुनी लीलाओनी भावना करता-करता पोताना गुरुनी सम्मति होय अेवा भगवत्स्वरूपनी सेवा करवी.

वस्त्रैश्च भूषणैर् गन्धैः नैवेद्यैर् व्यञ्जनैः शुभैः।।

देश-काल-विभूतीनाम् अनुसारेण सेवनम्।।१२।।

देश-काल-विभूतीनाम्=देश,काल	गन्धैः=सुगन्धित पदार्थन्सों
अरु द्रव्य के बारेमें अपनी सामर्थ्यके	च=अरु
अनुसारेण=अनुसार	नैवेद्यैः=निवेदनार्ह
शुभैः=शुभ,वस्त्रैः=वस्त्रन्सों	व्यञ्जनैः=व्यञ्जनन्सों
भूषणैः=आभूषणन्सों	सेवनम्=सेवा करे

भावार्थ : देश, काल अरु द्रव्य सम्बन्धी अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्राप्त उत्तम वस्त्र, आभूषण, अत्तर-चन्दन-केशर-गुलाबजल आदि सुगन्धित पदार्थ तथा विविध प्रकारके आरोगायवेकी सामग्रीन् सों श्रीकृष्णकी सेवा करे।।१३।।

देश, काल तेमळ द्रव्य सम्बन्धी पोताना शक्ति अनुसार प्राप्त थयेल उत्तम वस्त्र, आभूषण, अत्तर-चन्दन-केशर-गुलाबजल आदि सुगन्धित पदार्थों तेमळ विविध प्रकारनी आरोगायवानी सामग्रीओ थी श्रीकृष्णनी सेवा करे.

प्रेम्णा परिचरेत् साधुः यावज्जीवं समाहितः।।

तेनास्य भावना-सिद्धिः यया स्यात् कृत-कृत्यता।।१३।।

साधुः=सत्पुरुष	अस्य=याकी
यावज्जीवं=जीवन पर्यन्त	भावना-सिद्धिः=भक्तिभावकी सिद्धि
समाहितः=एक चित्त होयके	(भवति)=होत हे
प्रेम्णा=प्रेमसों	यया=जातें
परिचरेत्=सेवा करे	कृतकृत्यता=कृतकृत्यता
तेन=तातें	स्यात्=होत है.

भावार्थ : सत्पुरुषकों जीवनपर्यन्त एकनिष्ठ होयके प्रेमसों श्रीकृष्णकी सेवा करनी. एसैं सेवा करतें भक्तिभाव दृढ़ होत हे. भक्तिके दृढ़ भयेतें भक्त कृतकृत्य होय जात हे।।१३।।

सत्पुरुषे जीवनपर्यन्त एकनिष्ठ अनीने प्रेमथी श्रीकृष्णनी सेवा करवी. आभ करवाथी भक्तिभाव दृढ़ थाय छे. भक्ति दृढ़ थवाथी भक्त कृतकृत्य अने छे.

(२.प्रातःकालमें जागरणके पश्चात् भगवत्स्मरणः स्नानः शौचः आचमनः आदिके नियम)

प्रातः पाश्चात्ययामेऽसौ समुत्थाय शुचिर्धिया।।

स्मरेद् भगवतो लीलां गायेत् तस्य गुणान् गिरा।।१४।।

प्रातः=सवेरे	शुचिः=शुद्ध होयके
पाश्चात्ययामे=पाछिले प्रहरमें	धिया=बुद्धिपूर्वक
असौ=वो	भगवतः=भगवान्की
समुत्थाय=जागिके	लीलां=लीलाको
स्मरेत्=स्मरण करे.	
गिरा=वाणीसों	गुणान्=गुणनको
तस्य=तिनके	गायेत्=गान करे

भावार्थ : सूर्योदयके पूर्व प्रहरमें जागिके शुद्ध होइ बुद्धिपूर्वक भगवान्की लीलाको स्मरण करे अरु वाणीसों भगवान्के गुणनको गान करे॥१४॥

सूर्योदयथी अेक प्रहर पहेलां जगिने शुद्ध थईने बुद्धिपूर्वक भगवान्की लीलानुं स्मरण करे अने वाणीथी भगवान्का गुणननुं गान करे.

प्रातः कृत्यं ततः कार्यं बहिर्गत्वा यथोदितम्॥

मुखशुद्धिस्ततो नित्यं सौगन्धाभ्यञ्जनं भवेत्॥१५॥

ततः=ता पाछे	ततः=ता पाछे
बहिः गत्वा=घरसों बाहिर जायके	मुखशुद्धिः=मुखकी शुद्धि
यथोदितम्=शास्त्राज्ञानुसार	नित्यं=प्रतिदिन
प्रातःकृत्यं=प्रातःकृत्य	सौगन्धाभ्यञ्जनं=सुगन्धी तेलसों
कार्यम्=करनो	मालिश, भवेत्=होय.

भावार्थ : ता पाछे घरसों बाहिर जायके मलोत्सर्गादि देहकृत्य करे. मुखशुद्धि करनी. ता पाछे सुगन्धयुक्त तेलसों शरीरपे मालिश करनी॥१५॥

ते पछी घरथी बहार जईने मलोत्सर्गादि देहकृत्य करवुं. मुखशुद्धि करवी. ते पछी सुगन्धी तेलथी शरीरनी मालिश करवी.

मलस्नानं गृहे कार्यं तप्तोदकपरोदकैः॥

तस्योपरि श्रीयमुनाजलैः स्नानं स्तवैश्च वा॥१६॥

तीर्थस्थाने मलस्नानं कृत्वा तीरेऽभिमञ्जनम्॥

गृहे=घरमें	स्नानं=स्नान
मलस्नानं=मलस्नान	(कार्यं)=करनो.
तप्तोदकपरोदकैः=समोये जलसों	मलस्नानं=मलस्नान
अथवा परोदकसों	कृत्वा=करे पाछे
कार्यम्=करनो	(एव)=ही
तस्य=ताके,उपरि=ऊपर	तीर्थस्थाने=तीर्थस्थानमें
श्रीयमुनाजलैः=श्रीयमुनाजलसों	तीरे=तटपे
वा=अथवा	अभिमञ्जनम्=स्नान
स्तवैः च=स्तवनसों हु	(कर्तव्यम्)=करनो.

भावार्थ : घरमें मलस्नान समोये जलसों अथवा परोदकसों करनो. मलस्नान करे पाछे यदि उपलब्ध होय तो श्रीयमुनाजलसों अरु उपलब्ध न होय तो सामान्य जलसों ही स्नानमन्त्रके उच्चारपूर्वक स्नान करनो. अरु तीर्थमें स्नान तो मलस्नान करे पाछे ही करनो. सो काहेते जो “नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियाङ्गं मलकर्षणं, तीर्थाभावेतु कर्तव्यम् उष्णोदकपरोदकैः”(आचारमयूख, मलापकर्षस्नानम् यमस्मृतिकारिका), “स्नानं नदीदेवखातहृदेषु च सरस्सु च, पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिणि” (तत्रैव, अथ स्नानं, योगयाज्ञवल्क्यकारिका) “परसत्ताके अनुत्सृष्टजले मृत्पिण्डपञ्चकोद्धरणाभावे न स्नायाद् इति अन्तिमार्थः”(टीकायाम्).

घरमां मलस्नान हुंझाणा पाणीथी अथवा परोदकथी करवुं. मलस्नान कर्या बाद जे उपलब्ध होय तो श्रीयमुनाजलथी अने जे न होय तो सामान्य जलथीज

स्नानमन्त्रना उच्यार पूर्वक स्नान करवुं. अने तीर्थभां स्नान तो भलस्नान कथां पछीं करवुं.

(३. स्नान करे पाछें वस्त्रधारण करिवेकी, घरकों लोटवेकी, तिलक-छापा धारण करिवेकी, भगवच्चरणामृत लेयवेकी, तुलसीमाला धारण करिवेकी, प्रातःसन्ध्या-जपकी रीति)

ततस्तु धारणं शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयोः॥१७॥

पादुकाभिर्गृहे यानं स्पर्शनं नैव कस्यचित्॥

ततः=ता पाछें	गृहे=घर प्रति
तु=तो	यानं=गमन
शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयोः=	(कर्तव्यम्)=करनो
शुद्ध रेशमी दो वस्त्र	कस्यचित्=काहुको
धारणं=धारण	स्पर्शनं=स्पर्श
(कृत्वा)=करिके	नैव=सर्वथा न
पादुकाभिः=पादुका पहरिके	(कर्तव्यम्)=करनो

भावार्थ : ता पाछें शुद्ध रेशमी वस्त्र धारण करिके, पांवनमें पादुका पहरिके घर आनो. बीचमें काहुको स्पर्श करनो नाहीं।।

ते पछीं शुद्ध रेशमी वस्त्र धारण करीने, पगभां पादुका पहरीने धरे आपवुं. धरे आपतां वय्य कोर्छनो पण स्पर्श न करवो.

कुङ्कुमस्योर्ध्वपुण्ड्राणि द्वादशाङ्गेषु नामभिः॥१८॥

शंख-चक्रादि-मुद्राश्च गोपी-चन्दन-मृत्स्नया॥

द्वादशाङ्गेषु=बारह अङ्गणें

कुङ्कुमस्य=कुङ्कुके

नामभिः=नामन्सों

गोपीचन्दन-मृत्स्नया=

गोपीचन्दनकी माटीसों

शंखचक्रादिमुद्राः=शंख-चक्रादिमुद्रा

ऊर्ध्वपुण्ड्राणि=ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक

च=हु अङ्कित करनी

विशुद्धये=इन्द्रियन्की

आध्यात्मिक शुद्धिके अर्थ.

भावार्थ : बारहों अङ्गणें भगवन्नामन्को उच्चारण करते भये कुङ्कुमसों ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करने. गोपीचन्दनकी माटीसों शंख-चक्रादि साम्प्रदायिक मुद्रा हु अङ्कित करनी. एसे करतें इन्द्रियन्की भगवत्सेवाके लायक आध्यात्मिक शुद्धि होत हे।।

आरे अनो उपर भगवन्नामना उच्यारण पूर्वक प्रसादी कपुथी उर्ध्वपुण्ड्र तिलक करवा. गोपीचन्दनकी माटीथी शंख-चक्र वगैरे साम्प्रदायिक मुद्राओ पण अपित करवी. आभ करवाथी इन्द्रियोनी भगवत्सेवायोग्य आध्यात्मिक शुद्धि थाय छे.

चरणामृतपानं च लेपश्चापि विशुद्धये॥१९॥

ततस्तु तुलसीमालां धृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्॥

चरणामृतपानं=चरणामृतको पान

च=अरु, लेपः चापि=लेपहु

(कर्तव्यौ)=करने

धृत्वा=धारण करिके

ततः=ता पाछें, तु=तो

सन्ध्यां=सन्ध्याकर्म

तुलसीमालां=तुलसीकी माला

समाचरेत्=करनो.

भावार्थ : ता पाछें प्रभून्के चरणामृत-जलको पान अरु अङ्गणें लेपन करनो. ता पाछें तुलसीकी माला-कंठी धारण करिके सन्ध्या-जपादि करने.

ते पछीं प्रभुना चरणामृत-जलनुं पान अने शरीर उपर लेप-छंटकाव करवो. ते पछीं तुलसीकी माला-कंठी धारण करीने सुध्या-जप वगैरे करवा. (तुलसीमाला

धारण करवा आगत शास्त्रमां अन्ने परम्परा ज्ञेया मणे छे १. नित्य अने २. सेवान.
)

(४. भगवत्सेवारम्भविधि)

परिचर्या हरेः कार्या परिवारजनैः सह॥१००॥

गत्वा हरिपदं पद्भ्यां स्तुत्वा द्वारं प्रणम्य च॥

प्रविश्य मार्जनैर्लेपैः पात्राणां शोधनं चरेत्॥१०१॥

परिवारजनैः=परिवारजननूके	स्तुत्वा=स्तवन करिके
सह=सङ्ग, हरेः=हरिकी	प्रणम्य=दण्डवत् प्रणाम करिके
परिचर्या=सेवा	च=अरु
कार्या=करनी	प्रविश्य=भीतर प्रवेश करिके
हरिपदं=प्रभुके बिराजवेके स्थानमें	मार्जनैः=मांजीके
पद्भ्यां=पांवन्सों चलके	लेपैः=लींपीके
गत्वा=जायके	पात्राणां=पात्रनूकी
द्वारं=भगवन्मन्दिरके द्वारको	शोधनं=शुद्धि, चरेत्=करे

भावार्थ : परिवारके लोगनूके सङ्ग मिलिके प्रभून्की सेवा-परिचर्या करे. पांवन्सों चलके प्रभून्के बिराजवेके स्थानकों जाय. भगवन्मन्दिरके द्वारनूके आगें स्तुति-प्रणाम करिके मन्दिरके भीतर प्रवेश करे. सुवर्ण-रजतादिके पात्रनूकों मांजिके अरु माटीके पात्रनूकों लींपीके शुद्ध करे॥१०१॥

परिवारजनोनी साथे लणी-मणीने प्रभुनी सेवा-परिचर्या करवी. पगे यातीने प्रभुना बिराजवाना स्थानमां जवुं. भगवन्मन्दिरना द्वारे स्तुति-प्रणाम करीने मन्दिरनी अंदर प्रवेशवुं. सोना-चांदीना पात्रोने मांजोने अने माटीना पात्रोने लींपीने शुद्ध करवा.

(५. भगवत्प्रबोधन)

सम्भृत्य सर्वसम्भारं प्रातराशादिपूर्वकम्॥

प्रबोध्य श्रीहरिं प्रेम्णा मुखशुद्ध्यंशुकादिभिः॥१०२॥

अलंकृत्य ततः सिंहासने समुपवेशयेत्॥

प्रातराशादिपूर्वकम्=मङ्गलभोग	आदिमुखशुद्ध्यंशुकादिभिः=आचमन-
सजायकें,सर्वसम्भारं=सर्ववस्तु-सामग्री	मुखवस्त्र करायके, अलंकृत्य=
सम्भृत्य=साजिके	अलङ्कार आछी भांतिसों
श्रीहरिं=प्रभून्कों	धरायके, ततः=ता पाछें
प्रेम्णा=प्रेमसों	सिंहासने=सिंहासनपें
प्रबोध्य=जगायके	समुपवेशयेत्=पधरावने.

भावार्थ : मङ्गलभोग, जलपानकी झारी आदि सर्व वस्तु पहिलेसों ही साजिके राखनी. ता पाछें प्रभून्कों प्रेमसों जगावने. आचमन-मुखवस्त्र करायके अस्तव्यस्त भये आभूषणनूकों आछी भांतिसों धरायके प्रभून्कों सिंहासनपें पधरावने॥

मनलभोग, जलपाननी जारी वगेरे अधी वस्तुओ पहिलेथी ज सालने राखवी. ते पछी प्रभुने प्रेमथी जगाववा. आचमन-मुखवस्त्र करवीने अस्तव्यस्त थयेला आभूषणोने व्यवस्थित करीने प्रभुने सिंहासन उपर पधराववा.

(मङ्गलभोग, आरती, स्नान की विधि)

हैयङ्गवीनपक्वान्नैः ताम्बूलैः सुजलैर्यजेत्॥१०३॥

ततो नीराजनं कार्यं मङ्गलं गीतवाद्यकैः॥

हैयङ्गवीनपक्वान्नैः=ताजो माखन,	ततः=ता पाछें
पक्वान्नसों, सुजलैः=सुन्दरजलसों	गीतवाद्यकैः=गायन-वादन सहित
ताम्बूलैः=बीरीसों	मङ्गलं=मङ्गल, नीराजनं=आरती

यजेत्=सेवा करे

कार्यम्=करनी

भावार्थ : मङ्गलभोगमें ताजो माखन, ठोर-मठरी आदि पक्वान्न, सुमधुर ताजा जल समर्पे. ता पाछें भोग सरायके बीरा समर्पे. समयानुरूप वाद्य सहित मङ्गलाके कीर्तन करे. पाछें मङ्गल आरती करे।।

भनलभोगमां ताहुं भाभाए, ठोर-भठणी वगेरे पक्वान्न तथा सुमधुर ताहुं जल समर्पुं. ते पछी भोग सरायीने बीडां समर्पवा. समयानुरूप वाद्य सहित भनलाना कीर्तन करवा. भनल आरती करवी.

अभ्यङ्गोन्मर्दनैः स्नानं गृहस्नानविधानतः॥१०४॥

स्तुत्वा कलिन्दजां स्नाते कुर्यात् सम्प्रोज्छनांशुकम्॥

अभ्यङ्गोन्मर्दनैः=तेल-उबटन मलिके स्तुत्वा=स्तुति करिके
गृहस्नानविधानतः=घरमें स्नान स्नानं=स्नान
करवे सम्बन्धि शास्त्रीय विधानसों सम्प्रोज्छनांशुकम्=अङ्गवस्त्र
कलिन्दजां=श्रीयमुनाजीकी (कारणीयम्)=करावनो.

भावार्थ : सुगन्धित तेल-आंवरा-चन्दन-केशर आदि समर्पिके, घरमें स्नान करिवेके शास्त्रीय विधानसों, श्रीयमुनाजीकी स्तुति करिके प्रभूकों स्नान करावने. ता पाछें अति कोमल सूतिवस्त्रसों श्रीअंग पोंछनो।।

सुगन्धित तेल-आंभणा-चन्दन-केशर आदि समर्पिने, घरमां स्नान करवाना शास्त्रीय विधानथी, श्रीयमुनाजीकी स्तुति करीने प्रभुने स्नान कराववुं. ते पछी अति कोमल सूतराउ वस्त्रथी श्रीअनने पोंछवुं.

(शृंगार धराने, बीड़ा धराने, आरसी दिखावनी, ऋतु-कालानुसार सजावट धरनी, पाछे गावत-बजावत दूप-दीप-आरती करती बिरियां यदि निजजन भक्त होंय तो तिनकों दर्शन कराने होंय तो कराने)

शृङ्गारं रज्जितैर् वस्त्रैः चित्रैराभरणैरपि॥१०५॥

मायूरमुकुटै रम्यैः वेणुवेत्रैः सुमाल्यकैः॥

वितानैः प्रसरैः शुभ्रैः प्रतिसीरैर्नवैर्नवैः॥१०६॥

जल-क्रीडोपस्कुरैश्च ताम्बुलामोद-दर्पणैः॥

व्यजनैर् जलभृङ्गारैः देशकालानुसारिभिः॥१०७॥

अलंकृत्यैव सप्रेम स्वीयान् भक्तान् प्रदर्शयेत्॥

तौर्यत्रिकेन तत्रापि धूप-दीपादिनार्तिकम्॥१०८॥

(ततः)=ता पाछें

रज्जितैः=रंगे भये

वस्त्रैः=वस्त्रनसों

चित्रैराभरणैः=विविध आभरणसों

रम्यैः=सुन्दर

मायूरमुकुटैः=मोरपंखके मुकुटसों

वेणुवेत्रैः=बंसी-छड़ीसों

सुमाल्यकैः=सुन्दर मालासों

नवैः नवैः=नवीन-नवीन

शृङ्गारं=शृंगार

(कृत्वा)=करिके

शुभ्रैः=उज्वल

वितानैः=चंदोवा

प्रसरैः=बिछौना

प्रतिसीरैः=पिछवाई

च=अरु, जल-क्रीडोपस्कुरैः=

जलक्रीडाकी वस्तूंसों

देशकालानुसारिभिः=देश-काल

अनुसारी, सप्रेम=प्रेम सहित

अलंकृत्यैव=शृंगार धरायके

स्वीयान्=निज

भक्तान्=भक्तनकों

प्रदर्शयेत्=दर्शन करावे.

तत्र अपि=तहां हु

तौर्यत्रिकेन=नृत्य-गीत-वाद्यसों

धूपदीपादिना=धूप-दीप आदिसों

आर्तिकम्=आरती

(कुर्यात्)=करे.

भावार्थ : ता पाछें ऋतु-कालके अनुसार रंगे भये वस्त्र, विविध आभरण, सुन्दर मोरपंखके मुकुट, बंसी-छड़ी, सुन्दर माला अरु नवीन-नवीन आभूषण सों प्रभून्के शृंगार करे. उज्वल चंदोवा, बिछौना, पिछवाइ अरु जलक्रीडाकी वस्तु आदिकूं सजावे. ता पाछें नृत्य-गीत-वाद्य सहित धूप-दीप-आरती करती बिरियां यदि निजजन भक्त होंय तो तिनकों दर्शन कराने होंय तो कराने॥१०८॥

ते पछी ऋतु-कालना अनुसार रंगीन वस्त्र, विविध आभरण, सुन्दर मोरपंखनुं मुकुट, बंसी-छड़ी, सुन्दर माला अने नवीन-नवीन आभूषण थी प्रभुना शृंगार करवा. उज्वल चन्दोवा, बिछौना, पिछवाइ अने जलक्रीडानी वस्तु वगैरे सजावपी. ते पछी नृत्य-गीत-वाद्य सहित धूप-दीप-आरती करती वपते जे निजजन भक्त ढाबर होय तो तेओने दर्शन कराववा होय तो कराववा.

(६. भोग समर्पण, अवशिष्ट सन्ध्याजपादि)

ततो नानाविधैः शुद्धैश्चतुर्विध-सुभोजनैः॥

सम्भृतं स्वर्णपात्रन्तु हरेग्रे निवेदयेत्॥१०९॥

ततो=ता पाछें	स्वर्णपात्रं=सोनेके पात्रकों
नानाविधैः=विविध प्रकारके	तु=तो
शुद्धैः=शुद्ध	हरेः=हरिके
चतुर्विध-सुभोजनैः=चार प्रकारके	अग्रे=आगें
स्वादिष्ट भोजनसों	निवेदयेत्=पधरावे.
सम्भृतं=पूर्ण	

भावार्थ : ता पाछें विविध प्रकारके लेह्य, चोष्य, पेय अरु खाद्य एसैं चार्यों प्रकारके शुद्ध स्वादिष्ट भोजनसों पूर्ण सोनेके पात्रन्कों श्रीहरिके सम्मुख पधरावने॥१०९॥

ते पछी विविध प्रकारना लेह्य, चोष्य, पेय तेमळ भाद्य ऐभ यारे प्रकारना शुद्ध स्वादिष्ट भोजनथी पूर्ण सोनाना पात्रोने श्रीहरिनी सम्मुख पधराववा.

तुलसीं शंख-तोयेन गायत्यास्मिन् निधाय च॥

“एतत् समर्पितं देव भक्त्या मे प्रतिगृह्यताम्”॥११०॥

राजभोगं समर्प्येवं, बहिर्गोग्रासम् आचरेत्॥

ततोऽवशिष्टं जाप्यादि माध्याह्निकम् इहाचरेत्॥१११॥

अस्मिन्=यामें	निवेदनं=निवेदन
(पात्रे)=पात्रमें	कुर्यात्)=करे, एवं=अरु
शंख-तोयेन=शंखके जलसों	राजभोगं=राजभोग
गायत्या=गायत्रीमन्त्रसों	समर्प्यं=समर्पिके
तुलसीं=तुलसीकों	बहिः=बहार
निधाय=पधरायके	गोग्रासम्=गोग्रास
च=अरु, हे देव=हे देव	आचरेत्=देवे.
मे=मेरेद्वारा	ततः=ता पाछें
भक्त्या=भक्तिसों	अवशिष्टं=अपूर्ण रहे
समर्पितं=समर्पित	जाप्यादि=जप आदि
एतत्=ये	माध्याह्निकम्=मध्याह्नसन्ध्या
प्रतिगृह्यताम्=गृहण करो	इह=यहां
(इति=एसैं	आचरेत्=करे.

भावार्थ : ता पाछें गायत्री मन्त्रके उच्चारणपूर्वक शंखके जलसों भोगके पात्रन्में तुलसी पधरायके विज्ञप्ति करे : “हे देव मेरेद्वारा भक्तिभावसों समर्पित ये भोग-समग्रीको स्वीकार करो”. या प्रकारसों राजभोग समर्पिके (श्रीनन्दरायजी-श्रीयशोदाजी श्रीकृष्णकों भोजन करावेतें पहिले भूतयज्ञके शास्त्रीयविधानानुसार गोग्रास देत हें वा भावसों) बहार गोग्रास देनों. ता पाछें शेष रहे जप आदि करने॥११०-१११॥

ते पछी गायत्री मन्त्रना उच्यार पूर्वक शंभना बलथी भोगना पात्रोभां तुलसी पधरावीने विज्ञप्ति करवी : “हे देव ! माराद्वारा लक्तिभावथी पमर्षित आ भोग-सामग्रीनो स्वीकार करो”. आ प्रमाणे राजभोग समर्पिने (श्रीनन्दरायल-श्रीयशोदाल श्रीकृष्णने भोजन करववाथी पहेलां भूतयज्ञना शास्त्रीय विधान अनुसार गोआस आपे छे ते भावथी) अहार गोआस आपवो. ते पछी नियमानुसार करवाना आकी रही गयेला ४५ वगेरे करवा.

(७. राजभोग आरती अरु सेवानवसरके कार्य)

ततस्त्वाचमनं दत्वा ताम्बूलं माल्यजां स्रजम्॥
अपसार्य विशोध्यत्र नैवेद्यं जलमानयेत्॥११२॥

ततः=ता पाछे, तु=तो	दत्वा=देयके
आचमनं=आचमन	नैवेद्यम्=भोग
(कारयित्वा)=करायके	अपसार्य=सरायके
ताम्बूलं=बीरी	अत्र=यहां
माल्यजां=बेनीसों सिद्ध करी भई	विशोध्य=गीलो छन्ना फिरायके
स्रजं=माला	जलम्=जल, आनयेत्=लावे.

भावार्थ : ता पाछे समय भये प्रभूनों आचमन करायके बीरा पुष्पमाला-पुष्पगुच्छ समर्पिने. भोग धरे होंय सो सब सरायके वा स्थानकूं शुद्ध करनो. प्रभूनों अरोगायवेकूं जलकी झारी पधरावनी॥११२॥

ते पछी समय थये प्रभुने आचमन करावीने बीडां, पुष्पमाला-पुष्पगुच्छ समर्पवा. भोग समर्प्या होय ते सर्वे सरावीने ते स्थानने शुद्ध करवुं. प्रभुने आरोगवाना बलनी आरी पधराववी.

ततो राजविभूतीनाम् आदर्शैश्चामरैर्भजेत्॥

गीताद्युत्सवतो ह्येनं नीराज्यं च प्रणम्य च॥११३॥

हृदि कृत्वा पिथायास्य मन्दिरं बहिरात्रजेत्॥

स्रग्-गन्धादि शिरो-धृत्वा प्रणम्यैव गृहं व्रजेत्॥११४॥

माध्याह्निकं समाप्यैव श्रीमद्भागवतं पठेत्॥

ततो=ता पाछे	अस्य=इनके
राजविभूतीनां=राजविभूतिन्की	मन्दिरं=मन्दिरकों
न्याई, आदर्शैः=दर्पणसों	पिथाय=बन्द करिके
चामरैः=मोरछलचमरपंखान्सों	बहिः=बाहिर, आत्रजेत्=जाय
भजेत्=सेवा करे	स्रग्-गन्धादि=माला-चन्दनादि
गीताद्युत्सवतः=गीत-वाद्य-नृत्य	शिरो-धृत्वा=मार्थे चढ़ायके
उत्सव आदिसों, हि=हु	प्रणम्यैव=प्रणाम करिके
नीराज्यं=आरती करिके	गृहं=घरकों, व्रजेत्=जाय
च=अरु, प्रणम्य=प्रणामकरिके	माध्याह्निकं=मध्याह्नकालीन कर्मकों
च=अरु, एनं=ऐसेइनप्रभूनों	समाप्यैव=पूर्ण करिके
हृदि=हृदयमें	श्रीमद्भागवतं=श्रीमद्भागवत
कृत्वा=धारण करिके	पठेत्=बांचे.

भावार्थ : ता पाछे राजाधिराज प्रभूनों दर्पण दिखावे, चामर ढुरावे, प्रभूनों आगे नृत्य-वाद्य सहित कीर्तन गान करे. मध्याह्न आरती करिके प्रभूनों प्रणाम करे. प्रभूनों हृदयमें धारण करिके भगवन्मन्दिरके द्वारनों मङ्गल करिके बाहिर जाय. भगवत्प्रसादरूप माला-बीरा-चन्दनादिकों मार्थे चढ़ायके द्वारकों प्रणाम करिके (अपने ही घरपरिसरमें स्थित भगवन्मन्दिरसों भिन्न अपने) निवासस्थानकों जाय. मध्याह्नकालीन कर्मकों पूर्ण करिके श्रीमद्भागवत बांचे॥११४॥

ते पछी राजाधिराज प्रभुने दर्पण देखावुं, चामर करवी, प्रभुनी आगण नृत्य-वाद्य सहित कीर्तननुं गान करवुं. मध्याह्न आरती करीने प्रभुने प्रणाम करवा. भावनाथी प्रभुने हृदयमां पधरावीने भगवन्मन्दिरना द्वारोने मनल करीने अहार आपवुं. भगवत्प्रसादी माला-बीडां-चन्दन वगेरेने आहर पूर्वक भाथे चढ़ावीने द्वारने प्रणाम

करीने (पोताना ळ घरपरिसरमां स्थित भगन्मन्दिरथी ळुदा पोताना)
निवासस्थानमां ळुं. मध्याह्नालीन कर्मने पूर्णा करीने श्रीमद्भागवतवांयुं.

(८. भगवन्महाप्रसाद ग्रहण करिके पाछें करिवेके कृत्य)
ततो भक्तजनेभ्योऽस्य प्रसादं शक्तितो भजेत्॥११५॥
समागतेभ्यो विप्रेभ्यो दीनेभ्यश्च यथायथम्॥
दत्त्वा स्वीय-जनैर्भुक्तिः वैश्वदेवोऽपि तत्र वै॥११६॥

ततः=ता पाछें	यथायथम्=कलुक-कलुक
भक्तजनेभ्यः=भक्तजननकों	दत्त्वा=देयके
अस्य=याको	वैश्वदेवः=वैश्वदेव
प्रसादं=महाप्रसाद	अपि=हु
शक्तितः=शक्ति अनुसार	तत्र=तामेंसों, वै=ही
भजेत्=देय	(कृत्वा)=करिके
समागतेभ्यः=आये भये	स्वीयजनैः=परिवारजनके
विप्रेभ्यः=ब्राह्मणनकों	(सह)=सङ्ग, भुक्तिः=भोजन
दीनेभ्यः=गरीबनकों	(कार्या)=करे
च=हु	

भावार्थ : ता पाछें घर आये भक्तजननकों प्रभूको महाप्रसाद शक्ति अनुसार देय. एसें ही आये भये ब्राह्मणनकों अरु गरीबनकों हु यथायोग्य महाप्रसाद-दान-दक्षिणा देवे. वैश्वदेव हु महाप्रसादसों ही करे. ता पाछें परिवारजनके सङ्ग भगवन्महाप्रसादको भोजन करे॥११५-११६॥

ते पछी घरे आवेला लकतलनोने प्रभुनो महाप्रसाद शक्ति अनुसार आपवो.
ते ळ प्रभाणे अब्यागत आत्माए तेमल गरीब लनोने पाए यथायोग्य महाप्रसाद-

दान-दक्षिणा आपवा. वैश्वदेव पाए महाप्रसादथी करयो. ते पछी परिवारलनोनी
साथे प्रभुनो महाप्रसाद लेयो.

ततो वार्ता स्वकीयानां बहु-पापैरनाकुलाम्॥
यात्रार्थमेव सेवेत नाभिवेशोऽत्र सञ्चरेत्॥११७॥
सम्पन्न-वृत्तिः भक्तानां शास्त्राणि परिभावयेत्॥
सर्वथा वृत्यभावेतु याममात्रं भजेद् हरिम्॥११८॥
दरिद्रश्च कुटुम्बार्तः विद्वान् भागवतं पठेत्॥
अविद्वानस्य सेवायां साहाय्यं श्रवणं च वा॥११९॥

ततः=तापाछें	सेवेत्=कर
बहुपापैः=बहुत पापसों	अत्र=तामें
अनाकुलाम्=	अभिवेशः=अभिनिवेश/लगाव
चित्तकों व्याकुल न करे एसी	सम्पन्न-वृत्तिः=धनसम्पन्नहोयसो
स्वकीयानां=परिवारजनकी	भक्तानां=भक्तनके बीच
वार्ता=बातचीत	सञ्चरेत्=करे
(जीवन)यात्रार्थमेव=	न=नाहीं
जीवनव्यवहार चलायवेके अर्थे	शास्त्राणि=शास्त्रनको
परिभावयेत्=अवगाहन करे	विद्वान्=पढ्यो-लिख्योहोयतो
सर्वथा=पर्याप्त भलीभांति	भागवतं=भागवतको
वृत्यभावे=वृत्तिके अभावमें	पठेत्=पाठ करे.
तु=तो	अविद्वान्=पढ्यो-लिख्यो न
याममात्रं=एकयाम	होय तो, अस्य=विद्वान् भक्तकी
हरिं=प्रभूकी	सेवायां=सेवामें
भजेत्=सेवा करे	साहाय्यं=सहायता
दरिद्रश्च=अत्यन्त गरीब	च=अरु
च=अरु, कुटुम्बार्तः=	श्रवणं=श्रवण

भावार्थ : ता पाछें बहुत पापसों चित्तकों व्याकुल न करे एसी जीवनव्यवहार चलायवेमें उपयोगी अनिवार्य एसी परिवारजन सम्बन्धि बातचीत करे. परन्तु तामें अपने मनको अभिनिवेश/लगाव न राखे. धनसम्पन्न भक्तनों सेवाके अनवसरमें शास्त्रनको अवगाहन करनो. धनसम्पन्न न होय तो एक याम प्रभून्की सेवा करिके शेष समयमें आजीविकाके उपाय करने. तामें हु जो असमर्थ एसो कोई अत्यन्त गरीब भक्त होय अरु पारिवारिक प्रतिबन्धवारो होय तातें यदि एक समय हु भगवत्सेवा करि न सके तो, पढ़्यो-लिख्यो होय तो, भागवतको पाठ करे. यदि पढ़्यो-लिख्यो न होय तो जो विद्वान् भक्त प्रभुसेवा करतो होय वाकी परिचर्या करे अरु वो जब भगवद्गुणगान, भागवतपाठ आदि करे तब वाको श्रवण करे॥११९॥

ते पछी भुङ्ग पापथी चित्त व्याकुल न बने अेवी लुपनव्यवहारने यलाववांमां उपयोगी तेमज अनिवार्य होय तेवी परिवारजन सम्बन्धि वात-चीत करवी. तेमां पण, परन्तु, मननो अभिनिवेश / लगाव न राभवो. धनसम्पन्न भक्तोअे सेवाना अनवसरमां शास्त्रनुं अवगाहन करवुं. धनसम्पन्न न होय तो अेक समय प्रभुनी सेवा करीने बाकीना समयमां आलुविकानो उपाय करवो. तेमां पण जे असमर्थ अेवो कोरि अत्यन्त गरीब भक्त होय अने वणी पारिवारिक प्रतिबन्धवाणो होवथी जे अेक समय पण भगवत्सेवा करी शके तेम न होय तो, भणोवो-गणोवो होय तो, भागवतनो पाठ करे. जे भणोवो न होय तो कोरि परिचित विद्वान् भक्त प्रभुसेवा करतो होय तेनी परिचर्या करे अने ते ज्यारे भगवद्गुणगान, भागवतपाठ आदि करतो होय त्यारे तेनुं श्रवण करे.

(९. सायंकृत्यके पाछें प्रभून्के उत्थापनको प्रकार)

सायंसन्ध्याथ पुण्ड्राणि धृत्वा ताम्बूलतो मुखम्॥

संशोध्याचम्य शुद्धोऽसौ प्रभोरुत्थापनं चरेत्॥१२०॥

कन्दमूलैः फलैर्गव्यैः सुमाल्यैः सुजलैरपि॥

सन्तोष्य मुरजादीनां सङ्गीतेनापि तोषयेत्॥१२१॥

गायेद् भक्तकृतैः पद्यैः हृद्यैर्लीलारहस्यकैः॥

अथ=अब

ताम्बूलतः=बीरीसों

मुखं=मुखकों

संशोध्य=शुद्ध करिके

आचम्य=आचमन करिके

पुण्ड्राणि=ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक

धृत्वा=धारण करिके

सायंसन्ध्या=सायंकालीन सन्ध्या

(कार्या)=करनी

मुरजादीनां=मृदङ्ग आदिसों

सङ्गीतेन अपि=सङ्गीतसों हु

तोषयेत्=रिझावे

हृद्यैः=हृदयके भावसों

लीलारहस्यकैः=लीलारहस्यके

भक्तकृतैः=भक्तनके द्वारा रचित

शुद्धः=शुद्ध भयो भक्त

असौ=ये, प्रभोः=प्रभुके

उत्थापनं=उत्थापन

चरेत्=करे, कन्दमूलैः=कन्दमूल

फलैः=फल

गव्यैः=दूध-दही आदि

सुमाल्यैः=माला

सुजलैः अपि=जल हु सों

सन्तोष्य=प्रसन्न करिके

पद्यैः=पद्यनसों, गायेत्=गावे

ततः=ता पाछें

ब्रजमण्डले=ब्रजमण्डलमें

आयान्तं=पधारते भये

नाथं=प्रभून्की

नीराजयेत्=आरती करे.

भावार्थ : ता पाछें आचमन करिके, बीरीसों मुखकों शुद्ध करिके, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करिके सायंकालीन सन्ध्या करनी. एसें शुद्ध भयो भक्त प्रभुके उत्थापन समयकी सेवा करे. उत्थापन भोगमें कन्दमूल, फल, दूध-दही आदि समर्पे. माला धरावे. नवीन जलसों झारी भरे. मृदङ्ग आदि वाद्य-सङ्गीतसों प्रभून्को प्रसन्न करे. हृदयके भावसों भक्तनके द्वारा रचित लीला-रहस्यके पद्यनसों भगवल्लीलाको गान करे. ता पाछें ब्रजमण्डलमें पधारते भये प्रभून्की आरती करे॥१२२॥

ते पछी आयमन करीने, पान-पीडां वडे भुभशुद्धि करीने, उर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करीने, सायंकालीन सुध्या करवी. आ प्रमाणे शुद्ध भनीने प्रभुनी उत्थापन समयनी सेवामां जवुं. उत्थापन भोगमां कन्दमूल, इण, दूध-दही वगैरे समर्पवा. माला धराववी. नवीन जलथी ज़ारी भरवी. मृदन्न वगैरे वाध-सनीतथी प्रभुने पसन्न करवा. हृदयना भावथी भक्तोद्वारा रचित लीला-रहस्यना पद्योथी भगवल्लीलानुं गान करवुं. ते पछी प्रणमणुडलमां पधारी रहेला प्रभुनी आरती करवी.

(१०. शयनभोग, शयनारती आदि कृत्य)

सायंकालेऽपि नैवेद्यं यथा-विभव-विस्तरः॥

नीराजनं च शयनं यथायोग्यं विभावयेत्॥१२३॥

सायंकाले=संजाकालमें	नीराजनं=आरती
अपि=हु	शयनं=शयन
यथा-विभव-विस्तरः=	च=अरु
सामर्थ्यानुसार यथायोग्य विस्तारसों	यथायोग्यं=जेसें बनि आवे तेसें
नैवेद्यं=भोग	विभावयेत्=करे.

भावार्थ : संज्ञा समय हु सामर्थ्यके अनुसार विस्तारसों भोग धरावने, आरती करनी अरु प्रभूनों शयन करावने॥१२३॥

सांखना समये पण शक्ति अनुसार विस्तारथी भोग आदि धरवा, आरती करवी अने प्रभुने शयन कराववा.

(११. सोयवेसों पूर्वके कृत्य)

सायंसन्ध्या-ऽऽहुतीश्चापि कृत्वा भुक्त्वा निवेदितम्॥

कथयेद् शृणुयाद् वापि लीलां भगवतोऽन्वहम्॥१२४॥

ततः शयीत शुद्धोऽसौ भावयन् भगवत्पदम्॥

सुतार्थिनी स्वपत्नी चेद् व्रजेत् तां जेतुमिन्द्रियम्॥१२५॥

इत्येवं यस्य दिवसा यान्ति भक्तस्य भूतले॥

सएव कृतकृत्योऽस्ति हरिस्तमनुश्लिष्यति॥१२६॥

सायंसन्ध्याहुतीः=सांझके सन्ध्या-	होम लीलां=लीलाकों
चापि=हु	कथयेद्=कहे
कृत्वा=करिके	वा=अथवा
निवेदितं=निवेदित	शृणुयाद् अपि=सुने हु
भुक्त्वा=भोजन करिके	ततः=तार्ते
अन्वहं=दिनके पाछिले समयमें	शुद्धः=शुद्ध
भगवतः=भगवान्की	असौ=ये
भगवत्पदं=भगवान्के चरणको	भूतले=भूतलपें
भावयन्=भावन करत-करत	यस्य=जा
शयीत=शयनकरे	भक्तस्य=भक्तको
स्वपत्नी=पत्नी	दिवसाः=दिवस
सुतार्थिनी=पुत्रकी कामनावारी	यान्ति=व्यतीत होत हे
चेत्=यदि होय	सएव=वोही
इन्द्रियं=इन्द्रियकूं	कृतकृत्यः=कृतकृत्य
जेतुं=संयममें राखिवेकूं	अस्ति=हे
तां=वाकेनिकट	हरिः=हरि
व्रजेत्=जाय	तम्=वाकों
इत्येवं=या प्रकारसों	अनुश्लिष्यति=प्राप्त होत हैं.

भावार्थ : ता पाछें संज्ञा समयके सन्ध्या-होम करिके प्रभूनों निवेदित करे महाप्रसादको भोजन करिके दिनके पाछिले समयमें प्रभूनोंकी लीलानुको श्रवण-कीर्तन करे. या प्रकार दिनभर भगवदेकतान रह्यो शुद्ध भक्त भगवान्के चरणनुको

भावन करत-करत शयन करे. पत्नी यदि पुत्रकी कामनावारी होय तो अपनी इन्द्रियें असंयत न होय जांय एसी भावनासूं वाके निकट जाय. या प्रकारसों भूतलपें जा भक्तको दिवस व्यतीत होत हे वो निश्चय ही कृतकृत्य हे, श्रीहरि वाकों प्राप्त होवें हैं।।१२६।।

ते पछी सांखना समये सुध्या-होम करीने प्रभुने नवेदित करेल मलाप्रसादनं भोजन करीने दिवसना पाछला समयमां प्रभुनी लीलाओनुं श्रवण-कीर्तन करवुं. आ प्रकारे आओ दिवस भगवदेकतानतामां वीतावनारो शुद्ध भक्त भगवानना यरणोनुं भावन करतो-करतो शयन करे. पत्नी जो पुत्रनी कामनावाणी होय तो पोतानी इन्द्रियो असंयत अनी न जाय तेवी भावनाथी तेनी पासे जाय. आ प्रकारे भूतल उपर जो भक्त पोतानो दिवस व्यतीत करे छे ते थोक्कस कृतकृत्य अने छे, श्रीहरि तेने अवश्य प्राप्त थाय छे.

(ग्रन्थको उपसंहार)

इत्येवं भक्तिशास्त्रेषु यदाचारो निरूपितः।।

तदाचारं भजेदत्र नान्यथा गतिरिष्यते।।१२७।।

इति श्रीमद्भगवद्ब्रह्मवैवर्त-श्रीवल्लभदीक्षिततनुज-श्रीगोपीनाथ-दीक्षित-विरचिता

साधनदीपिका समाप्ता

इत्येवं=या प्रकारसों	तद् आचारं=वा आचारको
भक्तिशास्त्रेषु=भक्तिशास्त्रमें	भजेद्=अनुसरण करेतें
यद् आचारो=जो आचर	अन्यथा=अन्यथा
अत्र=यहां	गतिः=गति
निरूपितः=निरूपित भयो हे	न=नाहीं, इष्यते=इष्ट हे.

भावार्थ : या प्रकारसों या भक्तिशास्त्रमें जो आचार निरूपित भयो हे वा आचारको अनुसरण करनो. यासों अन्य प्रकारसों आचरण पुष्टिभक्तिमार्गीय भक्तनकों इष्ट सिद्धिप्रद नाहीं हे.

आ प्रकारे आ भक्तिशास्त्रमां जो आचारनुं निरूपण करवामां आव्युं छे ते आचारनुं अनुसरण करवुं. आथी अन्य प्रकारनुं आचरण पुष्टिभक्तिमार्गीय भक्तने माटे इष्टसिद्धि आपनारुं नथी.

इति श्रीमद्भगवद्-वदनावतार-श्रीवल्लभदीक्षित-तनुज-श्रीगोपीनाथ-दीक्षित-विरचित

साधनदीपिकाको ब्रजभाषा भावानुवाद समाप्त भयो

नित्यसेवा उत्सवसेवा विधिश्लोक विषयक किञ्चित् प्रास्ताविक

प्रकृति-विकृति यागवत् पुष्टिभक्तिसम्प्रदायमें भगवत्सेवाके भी नित्यसेवा और उत्सवसेवा इस तरह दो प्रकार प्रचलित हैं. सम्प्रदायके ग्रन्थसाहित्यमें सेवाविधि भी अतएव नित्य और उत्सव भेदसे द्विविध उपलब्ध होती हैं. इनमें प्रमुख सेवाविधि-सेवाभावना महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंके ज्येष्ठ आत्मज श्रीगोपीनाथप्रभुचरण, कनिष्ठ आत्मज श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण, श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरणोंके प्रथमपुत्र श्रीगिरिधरजी (अप्रकाशित), श्रीब्रजराजजी, श्रीहरिरायचरण, श्रीपुरुषोत्तमचरण, श्रीद्वारकेशजी (भावनावारे), श्रीब्रजवल्लभजीमहाराज (‘शुद्धाद्वैत’ श्रीवल्लभाब्द ४४८; वि.सं.१९८२ अम ३) आदि महानुभावोंद्वारा विरचित मानी जाती हैं.

जिस नित्य-उत्सवकी सेवाभावना एवं सेवाविधि पर एकमात्र संस्कृतव्याख्या सम्प्रदायके मूर्धन्य व्याख्याकार श्रीगोपेश्वरचरणोंकी उपलब्ध होती है उसमें श्रीगोपेश्वरचरण लिखते हैं : “अत्र समासः श्रीप्रभूणां, श्रीमद्गोपीनाथजितां, ब्रजराजजितां वा श्लोकानां ग्रन्थे”. तदनुसार व्याख्याकारके मतमें सेवोत्सवभावनाविषयक कारिकाओंके प्रमुख रचयिता श्रीप्रभु (= महाप्रभु), श्रीगोपीनाथप्रभुचरण एवं श्रीब्रजराजजी हैं. अपनी व्याख्यामें, स्वरचित कारिकाओंके पृथगुल्लेखपूर्वक, श्रीगोपेश्वरचरणोंने कहीं-कहीं तत्तत् कारिकाके रचयिताका भी नामनिर्देश किया है. श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंके सेवाविधि-श्लोक उपर्युक्त सव्याख्यग्रन्थमें उपलब्ध होते होनेसे उसके विवृत्यंशको छोड़कर उन नित्य-उत्सव सेवाविधि-श्लोकोंका प्रकाशन इस ग्रन्थमें किया जा रहा है.

इस ग्रन्थके प्रकाशनकी आनुपूर्वी प्राधान्येन इस तरह है.

वि.सं.१९६३ में ‘श्रीवल्लभपुष्टिप्रकाश’ नामक पुस्तकमें मथुरा निवासी मुखियाजी श्रीरघुनाथजी शिवजी ने पुष्टिमार्गीय नित्य-उत्सवकी सेवाविधिका प्रकाशन नि.ली.गो. श्रीदेवकीनन्दनाचार्यजी महाराजकी आज्ञासे करवाया था. इस पुस्तकमें गोस्वामी श्रीब्रजराजजी विरचित “पुष्टिमार्गीय आह्निकम्” के अन्तर्गत उक्त सेवाविधि-श्लोकोंका

सर्व प्रथम प्रकाशन हुआ था. ध्यातव्य है कि उक्त पुस्तकमें सेवाश्लोक तथा सेवाविधि के कर्ताके सम्बन्धमें कोई स्पष्टता की नहीं गयी है.

तत्पश्चात् वि.सं.१९७१; श्रीवल्लभाब्द ४३७ में ‘पुष्टिभक्तिसुधा’ नामक साम्प्रदायिक मासिकपत्रिकाके अम १२ में ‘सेवाश्लोकाः’ शीर्षकान्तर्गत उक्त सेवाविधि-श्लोकोंका पाठभेदके उल्लेख सहित प्रकाशन गो.वा. श्रीमग्नलाल शास्त्री द्वारा हुआ था. पाठभेदके उल्लेखसे यह स्पष्ट होता है कि उस ग्रन्थकी एकाधिक प्रतियां शास्त्रीजीको प्राप्त हुई होंगी. यद्यपि तद्विषयक किसी भी प्रकारकी स्पष्टता वहां नहीं की गई है. वहां इस ग्रन्थकी समाप्तिमें “इति श्रीप्रभुचरणविरचितसेवाश्लोकाः” लिखा गया है.

तत्पश्चात् वि.सं.१९७२; श्रीवल्लभाब्द ४३८ में ‘पुष्टिभक्तिसुधा’ मासिकपत्रिकाके अम ७-८ में गो.वा. श्रीमूलचन्द्र तेलीवाला द्वारा “श्रीमद्गोपीनाथानां पद्यानि” शीर्षकान्तर्गत श्रीगड्डुलालजीके हस्तलिखित ग्रन्थोंके सङ्गहालयसे प्राप्त एकमात्र प्राचीन प्रतिके आधारपर श्रीगोपीनाथजी विरचित कारिकाओंका प्रकाशन हुआ था. इन कारिकाओंको परिशिष्टमें यथावत् प्रकाशित किया गया है. यहां यह उल्लेखनीय है कि उक्त कारिकाओंमेंसे ६, १६, २०, २१ तथा २४-२६ कारिकाओंको छोड़कर सौन्दर्यपद्य सहित शेष १९ कारिकाएं नित्य और उत्सव सेवाभावनामें उपलब्ध होती हैं और उन पर श्रीगोपेश्वरचरणोंने विवृति भी लिखी है.

वि.सं.१९८५; श्रीवल्लभाब्द ४५१ में चतुर्थाध्याय भाष्यके तृतीय-चतुर्थ पादके परिशिष्टतया भगवत्सेवाविधि-भावना सम्बन्धित विधि-श्लोकोंका मुद्रण श्रीगोपेश्वरचरण विरचित विवरण सहित गो.वा. श्रीमूलचन्द्र तेलीवालाने करवाया था. इसीका यथावत् पुनर्मुद्रण भाष्यके परिशिष्टतया वि.सं.२०४१ में गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ - पार्ला) ने श्रीवल्लभविद्यापीठ-श्रीविट्ठलेश्वरप्रभुचरण-आश्रम-हो. ट्रस्ट, कोल्हापुर द्वारा करवाया था.

श्रीगोपेश्वरजीके “कारिकातिरिक्तं ग्रन्थमपि अत्रैव बोधाय समग्रं लिखामः” एवं “ “प्रातरुत्थाय सविधानं स्नात्वा” इत्यादि इत आरभ्य श्रीगोपीनाथजितां सेवाविधिकृतिः अस्ति”; और “ग्रन्थकर्तुः श्रीगोपीनाथजितो भक्तिमार्गीयत्वेन” कथनानुसार नित्यसेवाविधि-श्लोकोंका श्रीगोपीनाथप्रभुचरण विरचित होना सिद्ध होता है.

श्रीमूलचन्द्र तेलीवाला द्वारा प्रकाशित “श्रीगोपीनाथानां पद्यानि”में प्रकाशित श्लोकमेंसे अधिकांश श्लोक श्रीमग्नलाल शास्त्री द्वारा प्रकाशित गद्य-पद्यात्मक ‘सेवाश्लोकाः’ ग्रन्थमें उपलब्ध होते हैं जिसकी इति श्री...में उसका श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण विरचित होना लिखा गया है. इसी तरह अन्य भी प्रकाशित - अप्रकाशित सेवाश्लोकके ग्रन्थमें कहीं उसका श्रीवजराजजी विरचित होनेका तो कहीं श्रीमत्प्रभुविरचित होनेका उल्लेख प्राप्त होता है. यथा, उल्लिखित श्रीवल्लभपुष्टिप्रकाशमें मुद्रित २०४ श्लोकात्मक सेवाविधिकी भुवनेश्वरी पीठ, गोंडलके हस्तलिखित ग्रन्थागारसे प्राप्त गुटकाकार हस्तलिखित प्रतिकी इति श्री... में एवं हमारे माण्डवी घरके हस्तलिखितग्रन्थसंग्रहसे प्राप्त प्रतिकमें “इति श्रीपुष्टिमार्गीयाद्विकं श्रीवजराजजीकृतं सम्पूर्णम्” लिखा गया है. इसी तरह श्रीगायकवाड़के हस्तलिखित ग्रन्थोंके सङ्ग्रहालयसे गो. श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ-पार्ला) द्वारा प्राप्त ८३ श्लोकात्मक सेवाविधिकी फोटोकॉपी के उपक्रममें “श्रीमत्प्रभुकृतसेवाश्लोकाः सानुपूर्व्या लिख्यन्ते” जबकि उपसंहारमें “श्रीवजराजजीकृतसेवाविधिः” इस तरह उल्लेख मिलता है.

यह सब देखनेसे प्रतीत होता है कि ग्रन्थकी साङ्गोपाङ्ग पूर्विके उद्देश्यसे श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणोंने अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंके ग्रन्थमें आवश्यकतानुसार स्वरचित अंशोंको जोड़ा होगा. इस मान्यताका समर्थन नित्यसेवाविधिकी १२वीं कारिका “चिन्तासन्तानहन्तारो ... मुहुर् मुहुः” से होता है जो कि निर्विवादरूपसे श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणोंका ‘नवरत्न’ ग्रन्थकी टीकाका मङ्गलश्लोक है.

इसी तरह श्रीगोपेश्वरचरणोंकी ही तरह श्रीवजराजजीने भी अपनी सेवाविधिमें स्वरचित श्लोकोंका समावेश किया है.

दूसरी ओर श्रीगोपेश्वरजीके अनुसार नित्यसेवाविधिके अन्तर्गत प्रथम नव श्लोक अर्थात् “भगवद्भाम भगवन्” से लेकर “मां हि पालय” पर्यन्त एवं श्रीयमुनाजीकी स्तुतिके “हरितुर्य” से लेकर “भावमुत्तमम्” पर्यन्त दो श्लोक ‘श्रीमत्प्रभुविरचित’ हैं. “श्रीमत्प्रभुविरचितसेवाविधिः” इस नित्यसेवाविधिके शीर्षककी व्याख्या करते हुवे श्रीगोपेश्वरजी लिखते हैं : “ ‘प्रभु’पदं श्रीमदाचार्यपरं, “श्रीमत्प्रभूत्सवः” इति आचार्योत्सवे उक्तत्वात्”. इससे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त श्लोक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण विरचित हैं; और अन्य श्लोक यथायथ श्रीगोपीनाथप्रभुचरण एवं श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण विरचित हैं. इस मान्यता का समर्थन इन्ही ९ श्लोकोंके मध्यमें आते ५वें श्लोक “पानीयपात्रं हि तथा ... तद्रूपमेव तत्” की उत्थानिकामें श्रीगोपेश्वरजीके : “श्लोकान्तरं श्रीमत्प्रभुविरचितसेवाविधिः ग्रन्थकर्तुः

” इस कथनसे और वहीं श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणोंकी ‘नवरत्न’ ग्रन्थकी टीकाके मङ्गलश्लोक “चिन्तासन्तानहन्तारो ... मुहुर् मुहुः” तथा “८/११त्वमीश्वरोसि गीतं ते क्षुद्रोहं न विदामि हि (७३), “१/११कियान् पूर्वं जीवस् तदुचितकृतिश्चापि कियति ... १/१२स्वदोषान् जानामि ... शोचामि मुदितः (७६)” विज्ञप्तिके श्लोकोंके उपलब्ध होनेसे होता है. यदि ऐसा हो तो स्वीकारना पड़ता है कि श्रौत परम्परासे श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंको महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंसे उल्लिखित सेवाश्लोक प्राप्त हुवे होंगे जिसके शीर्षकतया गद्य विध्यंशको जोड़कर शेष सेवाविधिको आपने पूर्ण किया हो; और तत्पश्चात् श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणोंने भी उसमें आवश्यक अंशोंको जोड़ा हो.

वस्तुस्थिति यदि यह है तब विचारमात्रसे आश्चर्य होता है कि भगवत्सेवा जैसे महत्वपूर्ण विषयपर आचार्यचरणोंकी कारिकाएं होने पर भी उस पर श्रीगोपेश्वरजीको छोड़कर अन्य किसी पूर्वाचार्योंकी विवृति क्यों उपलब्ध नहीं होती है!

उत्सवसेवाभावनाके श्लोकोंका भी क्योंकि इस ग्रन्थमें प्रकाशन किया जा रहा है अतः उसके विषयमें भी कुछ बातें विचारणीय बनती हैं।

सुरतसे वि.सं. २००५ में श्रीचिमनलाल शास्त्री द्वारा प्रकाशित “उत्सवनिर्णयग्रन्थसमुच्चयः” नामक ग्रन्थमें उत्सवभावनाकी जिन कारिकाओंको प्रकाशित किया गया है उनको वहां गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित कहा गया है। सम्भव है कि उक्त कारिकाएं उनको श्रीपुरुषोत्तमचरणोंके हस्ताक्षरोंमें उपलब्ध हुई हों। वहां भी, किन्तु, पवित्रोत्सवकी कारिका “पितृपादरजो जातु ह्युत्तमैः विस्मृतं न यैः, तेषामेव हि मार्गोऽयं फलिष्यति न चान्यथा” के अर्थतात्पर्यका विचार करने पर; और रक्षाबन्धनकी कारिका “श्रीवल्लभो हि निजभक्तहितैकबन्धुराविश्चकार तनयं किल विद्वलं यः, तस्यैव पादयुगलं सततं नमामि प्रेम्णा तदस्तु हृदये मम सर्वदैव” की विवृतिमें श्रीगोपेश्वरजीका “विशेषणप्रतिपादनार्थं ज्येष्ठभ्रातरोनुजस्य स्वनामापि गृहीतवन्तः” यह लिखना; श्रीगोपीनाथप्रभुचरण एवं श्रीविद्वलनाथप्रभुचरण के उत्सवोंका आश्चर्यजनक अनुल्लेख और “श्रीमद्गोपीनाथानां पद्यानि” में उपलब्ध होती “त्वदाज्ञप्तस्वयागात्मान्कूटस्य समर्पणाद्, गोवर्धनाचलाधीश ! प्रसीद सततं मयि, यथेन्द्रयागभङ्गस्य स्वयागस्य च कारणात्, नन्दादीनामनन्यत्वं कृतं मयि तथा कुरु” कारिकाओंका उस ग्रन्थमें उपलब्ध होना उत्सवभावनाका श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित होना सन्दिग्ध बनाती हैं।

एक अन्य दृष्टिसे विचार किया जाय तो श्रीगोपेश्वरचरणद्वारा ग्रन्थारम्भमें की गई प्रतिज्ञा “अत्र समासः श्रीप्रभूणां श्रीमद्गोपीनाथजितां ब्रजराजजितां वा श्लोकानाम्” में श्रीपुरुषोत्तमचरणोंका उल्लेख न होनेसे श्रीगोपेश्वरचरणोंके मतानुसार उत्सवभावनाविषयक कारिकाओंका श्रीब्रजराजजी विरचित होना सिद्ध होता है। इस स्थितिमें भी उपर्युक्त शमाएं तो असमाधेय ही रहती हैं। किञ्च, यदि उपर्युक्त ब्रजराजजी और श्रीब्रजराजचरण भिन्न-भिन्न न हों तो; और श्रीब्रजराजजीने

उत्सवभावना विषयक दो-दो ग्रन्थोंकी रचना की न हो तो, ‘उत्सवनिर्णयग्रन्थसमुच्चय’में श्रीब्रजराजचरण विरचित ‘संवत्सरोत्सवकल्पता’ नामक एक स्वतन्त्रग्रन्थकी उपलब्धि श्रीगोपेश्वरजीकी प्रतिज्ञामें भी संशय उत्पन्न करती है।

इस प्रसङ्गमें श्रीगोपीनाथप्रभुचरणोंकी जिन कारिकाओंका समावेश सेवाविधि-श्लोकमें नहीं हुवा है वे इस प्रकार हैं :

पयःपत्रादिमात्रेण पूजितो यः परं पदं ।
 प्रागेव दिशति प्रीतः स कृष्णः शरणं मम ॥६॥
 स्वरूपरसदानार्थं निष्पीडाब्रह्मविद्यया ।
 यदुच्छिष्टं मे ददासि कृतार्थोऽस्मि ततः प्रभो ॥१६॥
 यथा स्वान्तस्थबालानां कृतार्थत्वाय सर्वदा ।
 स्वोच्छिष्टं कृपया दत्तं हरे देहि तथैव मे ॥२०॥
 ताम्बूलचर्वितमिव मुख्योच्छिष्टं ब्रजाधिप ।
 गृह्णामि कृपया दत्तम् अस्तु मे फलितं तथा ॥२१॥
 समुल्लसति कमुमछुरितपुष्पमालां यदा
 ददासि हसिता सती सखि कृपाकटाक्षैर्मुदा ।
 समीक्षसि यदा वदिष्यसि मुदा तदाहं तदा-
 त्मतामपि हि मुक्तितोप्यधिकतुच्छमुक्तिं ब्रुवे ॥२४॥
 यदा सखि रतिश्रुतिप्रथितबन्धरीत्या रमक्य
 तिश्रमजशी(शरी ?)रं स्मरसि मां समीक्ष्य प्रियं ॥
 तदा व्यजनवीजनार्थमपि चेन्मे पुण्यगम् ।
 सुरेशसदनं न वा भवतु मोक्ष एष स्फुटम् ॥२५॥
 न मे कस्यापीप्सा त्रिजगति वरीवर्त्यतिपरं-
 त्विदं त्वेकं तिष्ठत्यति मम मनस्यालि सततम् ॥
 चिरप्रार्थ्यं यत्स्वं ब्रजपतिमुतस्तत्प्रियतमा ।

मुदा राधा चोभौ मत्कृतनिकुञ्जेषु रमणम् ॥२६॥

इतने ऊहापोहके अन्तमें यह कहा जा सकता है कि सेवाविधि-श्लोकोंपर श्रीगोपेश्वरचरणोंके अतिरिक्त अन्य किसीकी भी विवृतिके उपलब्ध न होनेके कारण और सेवाविधि-श्लोकके कर्ताके सम्बन्धमें प्राचीनतम अभिप्राय श्रीगोपेश्वरचरणोंका ही उपलब्ध होनेसे तत्काल तो अनन्यगतिकतया आपकेद्वारा निर्दिष्ट व्यवस्था ही स्वीकार्य बनती है. अपरञ्च इस विश्लेषणके अन्तर्गत उत्थित आशमाओंके समाधानार्थ, सम्प्रदायके प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके सङ्गहालयोंसे सहयोग प्राप्त कर, इस दिशामें ओर अधिक शोधकार्य होना चाहिये ऐसा भी प्रतीत होता है.

गोस्वामी शरद्
(माण्डवी-कच्छ)

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण विरचित नित्यसेवाविधिश्लोक

(बेग सवरे उठिके विधिपूर्वक स्नान करीके आचार्यजीके स्मरण पूर्वक प्रभून्के मन्दिरकों नमस्कार करीके प्रार्थना करनी)

५. “प्रातरुत्थाय सविधानं स्नात्वा श्रीमदाचार्यान् स्मृत्वा
भगवन्मन्दिरं प्रार्थयित्वा नमस्कृत्य मार्जनादिकं कुर्यात्”.

भगवद्धाम ! भगवन् ! नमस्तेऽलमरोमि तत् ॥
अङ्गीकुरु हरेरर्थे क्षान्त्वा पादोपस्पर्शनम् ॥१॥

(ता पाछें भगवन्मन्दिरमें बुहारी-मन्दिरवस्त्र करने)
मार्जनं कृष्णगेहस्य मनोविक्षेपकं रजः ॥
नाशमेति तदर्थं च मार्जयामि तथास्तु मे ॥२॥
आत्मनोऽज्ञानरूपस्य दुरितस्य क्षयाय हि ॥
करोमि सेकोपलेपौ त्वद्गृहे गोकुलेश्वरः ॥३॥

(ता पाछें प्रभून्कों बिराजवेकुं सिंहासनादिक तैयार करने)

२. “ततः सिंहासनास्तरणं कुर्यात्”.

सिंहासनं मद्भुत्पद्म - रूपं सज्जीकरोम्यहम् ॥
श्रीगोपीशोपवेशार्थं तथा तद्योग्यतां भज ॥४॥

(ता पाछें प्रभून्के जलपानकी झारी एवं अरोगवेके पात्रादिक साजने)

३. “ततः पात्राणि सज्जीकुर्यात्”.

इदं पानीयपात्राणि व्रजनाथाय कल्पितम् ॥
राधाधरात्मकत्वेन भूयात् तद्रूपमेव तत् ॥५॥
स्वामिनीकररूपाणि भावस्वर्णमयानि वै ॥
श्रीकृष्णभोज्यपात्राणि सन्तु ते मत्कृतानि हि ॥६॥

(ता पाछें विज्ञप्ति करीके प्रभूंकुं शय्यापेसुं जगावने)

४. “ततः शय्यातो विज्ञाप्य उत्थापयेत्”.

उदेति सविता नाथ ! प्रियया सह जागृहि ॥
अङ्गीकुरुष्व मत्सेवां स्वकीयत्वेन मां वृणु ॥७॥

(ता पाछें प्रभूंकुं सिंहासनपें पधरावने)

५. “ततः सिंहासने उपवेशयेत्”.

क्रीडात्मसाधनयुत मद्बुद्धामाक्षरात्मकम् ।
आस्थाय गोकुलाधीश ! रमस्व कृपया मयि ॥८॥
भावात्मकतया क्लृप्त स्वोत्तरीयात्मकासने ॥
सिंहासने गोकुलेश ! कृपयोपविश प्रभो ॥९॥

३. (“पानीयपात्रम्” इत्याख्यं) श्लोकान्तरं श्रीमत्प्रभुविरचितसेवाविधेः ग्रन्थकर्तुः”
-म श्रीगोपेश्वरचरणाः.

४. “श्रीमत्प्रभुविरचितसेवाविधिः श्लोकः स्वामिनि इति” -म श्रीगोपेश्वरचरणाः.

(ता पाछें नमन करनो)

६. “ततो नमस्कुर्याद्”.

यादृशोऽसि हरे ! कृष्ण ! तादृशाय नमोनमः ॥
यादृशोऽस्मि हरे ! कृष्ण ! तादृशं मां हि पालय ॥१०॥

(दास्यभक्तिको निरूपण करत हें. तहां प्रथम श्रीस्वामिनीजीकों नमन)

नमो नमोऽस्तु ते राधे ! श्रीकृष्णरमणप्रिये ! ॥
स्वपादपद्मरजसा सनाथं कुरु मच्छिरः ॥११॥

(ता पाछें श्रीआचार्यजीकों नमस्कार करनो)

७. “ततः श्रीमदाचार्यान् नमस्कुर्यात्”.

चिन्तासन्तानहन्तारो यत्पादाम्बुजरेणवः ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥१२॥

(ता पाछें मङ्गलभोग आरोगवेकों विज्ञप्ति करनी)

८. “ततः पात्रे सामग्रीं संस्थाप्य, विज्ञाप्य समर्पयेत्”.

व्रजस्त्रीकरयुग्मात्म - यन्त्रे पात्रं च तन्मयम् ॥
स्थापितं ते भोजनार्थं योग्यभोज्यान्नसम्भृतम् ॥१३॥
भुङ्क्व भावैकसंशुद्ध - दधिदुग्धादिमोदकान् ॥

प्रियं ते नवनीतं च राधया सहितो हरे ! ॥१४ ॥

५. “एवं श्रीमत्प्रभुविरचितसेवाविधि नवश्लोकयुक्तवन्दनभक्तिः इति उक्तं ... वन्दनभक्तिः नवश्लोक्या विवृता. अधुना दास्यभक्तिः सिद्धान्तमुक्तावल्युक्ता वितन्यते स्म “हरितुर्यप्रिय” इति श्लोकद्वयं मर्यादीकृत्य ग्रन्थकर्तृभिः” - म श्रीगोपेश्वरचरणाः

भाषणं मा त्यज प्राणप्रिये गोपवधूपतेः ॥
त्वन्मुखामोदसुरभि - भोज्यं भुंक्तेऽधिकं प्रियः ॥१५ ॥
राधाधरसुधापातुः किमन्यन् मधुरायतिम् ॥
यन्निवेद्यं तदप्येतन् नामसम्बन्धतो भवेत् ॥१६ ॥
प्रियामुखाम्बुजामोद-सुरभ्यन्नम् अतिप्रियम् ॥
अङ्गीकुरुष्व गोपीश तदीयत्वान् निवेदितम् ॥१७ ॥
निजास्य नवलास्येऽस्मिन् चारुभोज्यं मदर्पितम् ॥
भुङ्क्ष्व श्रीगोकुलाधीश ! स्वाधिव्याधी निवारय ॥१८ ॥
यशोदारोहिणीभावाद् बलेन सह बालकैः ॥
भुक्तं यथा बाल्यभावप्राकट्याद् भुङ्क्ष्व मे तथा ॥१९ ॥
सेवार्थं दत्तगेहस्य निजदासस्य मे प्रभो ।
आगन्तव्यं भोजनार्थं श्रीकृष्ण ! कृपया गृहे ॥२० ॥
देवकीवसुदेवश्री - बलरोहिणीसंयुतः ।
श्रीमन्नदयशोदाभ्यां समं मयि कृपां कुरु ॥२१ ॥
निःकिञ्चनस्य दीनस्य गुणहीनमपि प्रभो ! ॥
शुद्धान्नं तत् स्वदत्तत्वाद् भुङ्क्ष्वगोकुलनायक ! ॥२२ ॥

(स्वदासको उच्छिष्ट प्रदान करिवेकी प्राथना)

भुक्त्वा दत्त्वाऽतिप्रियेभ्यो भक्तेभ्योऽतिप्रियं सदा ॥

तदात्मशोधकोच्छिष्टं कृतकृत्यं च मां कुरु ॥२३ ॥
श्रीकृष्णान्तरस्वरूप ! स्वकीयस्य गृहे मम ।
आगत्य भोजनं कृत्वा कृतार्थं कुरु मां प्रभो ! ॥२४ ॥

(जल अरोगायवेकी भावना)

८. “ततो जलम् अर्पयेत्”.

प्रियारतिश्रमपरि - मलितं वारि यामुनम् ॥
समर्पयामि तत्पानं कुरु श्रीकृष्ण ! तापहृत् ॥२५ ॥

(आचमन करावनो तथा वाकी भावना)

९. “ततो आचमनं कारयेद्”.

कुरुष्व्वाचमनं कृष्ण ! प्रिययामुनवारिणा ॥
स्नेहात्मदन्तसक्तान्य - भावापाकरणात्मकम् ॥२६ ॥

(मुखवस्त्र करावनो तथा वाकी भावना)

स्नेहाद् रतिश्रमजल - प्रोज्झद् राद्राधाकराञ्चलम् ॥
स्मृत्वा-ऽऽनन्दभरान् नाथ ! कुरु श्रीमुखमार्जनम् ॥२७ ॥

(बीरी अरोगावनी तथा वाकी भावना)

१०. “ततः ताम्बूलम् अर्पयेत्”.

ताम्बूलं स्वप्रियावक्त्र – सौरभ्यरतिसंयुतम् ॥
गृहाण गोकुलाधीश ! तत्कपोलाभपाण्डुरम् ॥२८ ॥

(ता पाछें मङ्गला समयकी आरती उतारिके, शृङ्गार वडे करीके, शृङ्गार धरवेकी विज्ञप्ति करिके स्नानादिक करावने)

११. “ततः आरात्रिकं कृत्वा शृङ्गारार्थं विज्ञाप्य स्नानादिकं कारयेद्”.

रमणातिभराद् रात्रौ वस्त्राण्याभूषणानि हि ।
मृगजानि च वस्त्राणि प्रसीदोत्तारयामि ते ॥३० ॥
प्रियाङ्ग-सङ्ग-सम्बन्धि-गन्ध-सम्बन्धतो भवेत् ॥
कदाचित् कस्यचिद् भावो यतः स्नानं समाचर ॥३० ॥
स्नेहात्मगन्धतैलेन प्रियागन्धातिचारुणा ॥
अभ्यक्तो मङ्गलस्नानं कुरु गोकुलनायक ! ॥३१ ॥
स्नेहात्मगन्धतैलस्य लापनाद् गोकुलाधिप ! ॥
वितरात्यन्तिकीं भक्तिं मयि स्नेहात्मिकां विभो ॥३२ ॥
श्रीसुगन्धोद्वर्तनेन निशाश्रमनिवारणात् ।
उद्वर्तितः कृष्ण ! भक्तिदानेन कुरु मे कृपाम् ॥३४ ॥
दिवा त्वद्वनगमन – स्मरणात् तापभावतः ॥
गोपिकास्पर्शनोष्णेन वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥३५ ॥

(स्नान भये पाछें श्रीअङ्ग पोंछनो तथा वाकी भावना)
स्नानार्द्रतानिवृत्यर्थं प्रोज्जिताङ्ग ! विभो मम ॥
दूरीकुरुष्व गोपीश ! कृपया लौकिकार्द्रताम् ॥३५ ॥

(शृङ्गारकी भावना)

गोपिकावद् विप्रयोगे कालक्षेपाय सर्वथा ॥
कृष्णमूर्तिं प्रियां कृत्वा भजेत् तत्-तत्स्वभावतः ॥३६ ॥

भावोत्थविप्रयोगेऽपि न स्थातुं शक्यते यतः ॥
अतः स्वहृद्गतैर् भावैः भूषयेत् तं मनोमयम् ॥३७ ॥
ब्रजेश ! रसरूपात्मन् ! शृङ्गारं रचयाम्यहम् ॥
स्वीकुरुष्व त्वदीयत्वात् स्वप्रियावत् कृतं निशि ॥३८ ॥

(अङ्गराग धरायवेकी भावना)

कुचकुमुमगन्धाढ्यम् अङ्गरागम् अतिप्रियम् ॥
श्रीकृष्णतापशाक्त्यर्थम् अङ्गीकुरु मदर्पितम् ॥३९ ॥

(वस्त्र धरायवेकी भावना)

प्रियाङ्गतुल्यवर्णानि वस्त्राणि ब्रजनायक ! ॥
समर्पयामि कृपया परिधेहि दयानिधे ! ॥४० ॥

(अलमार धरायवेकी भावना)

भूषणान्यवतारात्मकान्येतान्यर्पयामि ते ॥
प्रियाङ्गतुल्यकान्तीनि प्रसीद ब्रजसुन्दर ! ॥४१ ॥
प्रियानासाभूषणस्थ – बृहन्मुक्ताफलाकृतिम् ॥
समर्पयामि राधेश ! गुञ्जाहारम् अतिप्रियम् ॥४२ ॥
मिलितान्योन्याङ्गकान्ति – चाकचक्यसमं विभो ! ॥
अङ्गीकुरुष्वोत्तमाङ्गे केकिपिच्छम् अतिप्रियम् ॥४३ ॥
गोपस्त्रीदृक्स्थितं श्रीमच्छृङ्गारात्मकमञ्जनम् ॥
शोभार्थं मातृवद् दत्तम् अङ्गीकुरु ब्रजाधिप ! ॥४४ ॥
कस्तूरीतिलकं भाले चित्रं चारु कपोलयोः ।
दृष्ट्वा प्रियाकृतं हृष्टः तथा मुदम् अवाप्नुहि ॥४५ ॥
मुखाब्जमकरन्दापति – लोभेन रसभावतः ॥
मधुपायितचित्तानि ब्रजरत्नानि तानि ते ॥४६ ॥

(माला धरायवेकी भावना)
कुसुमान्यर्पितानीश ! प्रसीद मयि सन्ततम् ॥
कृपासंहृष्टदृग्वृष्ट्या तदङ्गीकृतिशोभितः ॥४७॥

(वेणु धरायके वेणुवादनकी विज्ञप्ति)
प्रियाकारणदौत्यैक – भावेनातिप्रियं सदा ॥
वेणुं धृत्वाधरे कृष्ण ! पूरय स्वामृतस्वरैः ॥४८॥

(आरसी दिखावनी तथा वाकी भावना)
प्रियानखात्मकादर्शो विलोक्य वदनाम्बुजम् ॥
व्रजाधीश ! प्रमुदितः कृपया मां विलोकय ॥४९॥

(गोपीवल्लभभोगको निरूपण. तामें प्रथम शृङ्गार धरायके सिंहासनपें श्रीकुं पधारायके श्रीके सम्मुख सामग्री साजनी)

१२. “एवं शृङ्गारं कृत्वा सिंहासने उपवेश्य सामग्रीम् अग्रे स्थाप्य
“व्रजस्त्रीकर ...” इत्यादिसार्धपद्येन विज्ञाप्य “भाषणम्...”
इत्यादिपद्यद्वयेन विज्ञाप्य अनेन पद्येन समर्पयेद्”.

गोपिकाभावतः स्नेहाद् भुक्तं तासां गृहे यथा ॥
मदर्पितं तथा भुङ्क्ष्व कृपया गोपिकापते ! ॥५०॥

(ता पाछें आचमन-मुखवस्त्र करायके बीरा समर्पिके दुग्धफेन-घैया अरोगायके दूध समर्पनो)

१३. “ततो यथावद् आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयेत्. ततो
दुग्धफेनं दुग्धञ्च अर्पयेत्”.

स्वर्णपात्रे पयःफेन – पानव्याजेन सर्वतः ॥
अभ्यस्यति प्राणनाथः प्रियाप्रत्यङ्गचुम्बनम् ॥५१॥
गोपार्पितपयःफेन – पानं यद्भावतः कृतम् ॥
मदर्पितपयःफेन – पानं तद्भावतः कुरु ॥५२॥

(ता पाछें फेरि आचमनादिक करायके खीर आदि भोग धरायकेको तथा वाकी भावनाको निरूपण)

१४. “ततः पुनः आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयेत्. ततः
पायसादिकम् अर्पयेत्”.

व्रजस्त्रीकृतशृङ्गारा – नन्तरं तद्गृहे यथा ॥
अभोजि पायसं ताभिः सह भुङ्क्ष्व तथैव मे ॥५३॥

(ता पाछें पुनः आचमनादिक करायके आरती उतारनी)

१५. “ततः पुनः आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयित्वा
‘आरात्रिकं कुर्यात्”.

अमङ्गलनिवृत्त्यर्थं मङ्गलावाप्तये तथा ॥
कृतम् आरात्रिकं तेन प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥५४॥

(बाल भगवत्स्वरूपकुं पलना झुलावने)

प्रेम्णा मत्प्रेखशयन – दोलने श्रीयशोदया ।
सिताद्यम् अर्पितं भुक्तं भुङ्क्ष्वेदं च तथैव मे ॥५५॥

(ता पाछें खिलाना साजिके प्रभूनों खिलावने)

१६. “ततो अग्रे क्षणं क्रिडार्थम् अक्षादीन् निवेदयेत्”.

क्रीडारूपात्मकैर् अक्षैः क्रीडार्थं स्थापितैः प्रभो ॥

क्रीडां कुरु महाराज ! गोपिकाभिश्च राधया ॥५६ ॥

(पाछें माला वडी करीके धूप-दीप करीके राजभोग समर्पने)

१७. “ततो राजभोगं समर्पयेत्”.

श्रीमद्राधाङ्गसौगन्ध्या - गरूधूपार्पणाद् विभो ! ॥

भावात्मकृतसामग्र्यां भोगेच्छां प्रकटीकुरु ॥५७ ॥

दीपः समर्पितो भोग्य - रूपान्नार्थप्रदीपने ॥

६. “तृतीयम् आरात्रिकम् इदं क्वचित् लुप्तम्” -
म श्रीगोपेश्वरचरणाः

तद्दीपनेन चोद्दीप्त - भावो भोजनमाचर ॥५८ ॥

(सुवर्णादि विभिन्न भोजनपात्रन्की भावना)

व्रजस्त्रीकरयुगमात्म - यन्त्रे पात्रं च तन्मयम् ॥

स्थापितं ते भोजनार्थं भोग्यभोज्यान्नसम्भृतम् ॥५९ ॥

स्वर्णपात्रेषु दुग्धादि दध्याद्यं राजतेषु च ॥

मृत्पात्रेषु रसालाद्यं भोज्यं सद्रोचकादिकम् ॥६० ॥

राजते नवनीतं च पात्रे हैमे सिता तथा ॥

यथायोग्येषु पात्रेषु पायसव्यञ्जनादिकम् ॥६१ ॥

सूपौदनं पोलिकादि तथान्नं च चतुर्विधम् ॥

भुंक्ष्व भावैकसंशुद्धं राधया सहितो हरे ! ॥६२ ॥

(दृष्ट्यादिदोषन्के निवारणार्थं शमोदकको प्राक्षण)

कम्बुनाम्नातिप्रियश्री - शप्नन्तर्गतवारिणा ॥

दृष्ट्यादिदोषाभावाय सामग्री प्रोक्षिता विभो ! ॥६३ ॥

(भोगमें तुलसी समर्पनी^०. परम्परानुसार आचार्यपादुकानकुं भोग समर्पने)

१८. “ “भाषणं मा त्यज” इति श्लोकचतुष्टयेन समर्पयेद्. ततः
श्रीमदाचार्येषु समर्पयेद्”.

प्रक्षिप्ता तुलसी तेऽति - प्रियगन्धा तथैव च ।

कुरुष्व तेनातितुष्टो भोजनं व्रजनायक ! ॥६४ ॥

स्वार्थप्रकटसेवाख्य - मार्गे श्रीवल्लभप्रभो ! ॥

७. “भाषणं मा त्यज” इति श्लोकचतुष्टयेन समर्पयेद्” इति मूलम्.
“ततः श्रीमदाचार्येषु समर्पयेद्” इति” -म श्रीगोपेश्वरचरणाः.

निवेदितस्य मे भोज्यं स्वास्ये कुरु हुताशन ! ॥६५ ॥

(ता पाछें आचमनादिक करायके, बीरी अरोगायके भगो पधराय होंय तहां
मन्दिरवस्त्र करनो)

१९. “ततो यथावद् आचमनं कारयित्वा ताम्बूलम् अर्पयेत्. ततो
भोजनपात्रस्थले मार्जनं कुर्याद्”.

गोकुलेश तवोच्छिष्ट – लेपात् पात्रप्रमार्जनात् ॥
त्वत्सेवान्तरधर्मेषु रतिर् भवति निश्चला ॥६६ ॥

(पाछें भगवच्चरणारविन्दन्में महामन्त्रोच्चारण पूर्वक तुलसी समर्पनी)

२०. “ततः चरणयोः तुलसीं समर्पयेत्”

प्रियाङ्गन्धसुरभि – तुलसीं ते पदप्रियाम् ॥
समर्पयामि मे देहि हरे देहम् अलौकिकम् ॥६७ ॥
प्रसीद पूजितो भक्त्या तुलस्या प्रियगन्धया ॥
निःकिञ्चनाधीश नान्यत् कर्तुं शक्नोमि सर्वथा ॥६८ ॥

(पाछें सिंहासनके आगे पादपीठिका-सीढ़ी साजनी)
हृत्पमजात्मकं स्वर्णं पादपीठं समर्पितम् ॥
पादौ धृत्वा गोकुलेश हृत्पापं समपाकुरु ॥६९ ॥

(पाछें माला धरायके, आरती उतारिके विज्ञप्ति करनी)

२१. “ततो आरात्रिकं कृत्वा विज्ञापयेद्”.

भक्तार्थाविर्भूतरूप कृष्ण ! ते चरणाब्जयोः ॥
सर्वाशुभविनाशार्थं न्यस्तः पुष्पाञ्जलिः शुभः ॥७० ॥
अमङ्गलनिवृत्त्यर्थं मङ्गलावाप्तये तथा ॥
कृतम् आरात्रिकं तेन प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥७१ ॥

(मध्याह्न समयमें शयन तथा गोचरण की भावना)

प्रीतो देहि स्वदास्यं मे पुरुषार्थात्मकं स्वतः ॥
त्वद्दास्यसिद्धौ दासानां न किञ्चिद् अवशिष्यते ॥७२ ॥
एतावदेव विज्ञाप्यं सर्वथा सर्वदैव मे ॥

त्वमीश्वरोसि गीतं ते क्षुद्रोहं न विदामि हि ॥७३ ॥

परमकारुणिको न भवत्परः परमशोच्यतमो न हि मत्परः ॥

इति विचिक्त्य सदा मयि किमरे यदुचितं ब्रजनाथ ! तवाचर ॥७४ ॥

कियान् पूर्वं जीवस् तदुचितकृतिश्चापि कियति ॥

भवान् यत् सापेक्षो निजचरणदास्ये बत भवेत् ॥

अतः स्वात्मानं स्वं निरुपममहत्त्वं ब्रजपते ॥

समीक्ष्यास्मन् नेत्रे शिशिरय निजास्याम्बुरसैः ॥७५ ॥

स्वदोषान् जानामि स्वकृतिविहितैः साधनशतैर् –

अभेदांस्त्यक्तुं चापटुतरमना यद्यपि विभो ॥

तथापि श्रीगोपीजनपदपरागाञ्चितशिराः ॥

त्वदीयोऽस्मीति श्रीब्रजनृप न शोचामि मुदितः ॥७६ ॥

प्रियासमेतकुञ्जीय – वृक्षमूलेषु पल्लवैः ॥

कृतेषु भावतल्पेषु क्रीडन् गोचारणं कुरु ॥७७ ॥

सेवितोऽत्र हरे रन्तुं गृहे मद्हृदयात्मके ॥

निमीलयामि दृग्द्वारं विलसैकान्तसद्मनि ॥७८ ॥

(ता पाछें प्रभून्के वस्त्रादिक धोवने)

२२. “ततो वस्त्रप्रक्षालनादिकं कुर्याद्”.

वस्त्रप्रक्षालनाद् दुष्ट – संसर्गजमनोमलम् ॥

महत्सेवाबाधरूपं मम कृष्ण ! निवारय ॥७९ ॥

(ता पाछें संजा समे उत्थापन करायके फलादिक समर्पने)

२३. “ततः चतुर्थप्रहरे प्रसुप्तं प्रबोध्य फलादिकम् अर्पयेत्”.

यथा गोवर्धने भुक्तं फलमूलादिकं हरे ॥

रामेण सखिभिः सार्धं पुलिन्दीभिः समर्पितम् ॥८०॥

तथा फलादिकं सर्वं भुङ्क्ष्व भावार्पितं मया ॥

पुलिन्दीवद् भावदानात् सार्धकं जन्म मे कुरु ॥८१॥

(पाछें भोग सरायके आचमनादिक करायके ब्रजमें पधारते प्रभून्की विज्ञप्ति करनी)

२४. “ततो ब्रज आगच्छन्तं विज्ञापयेद्”.

बलभद्रादयो गोपा गावश्चाग्रे च पृष्ठतः ॥

गोपिकावेष्टितो मध्ये रणद्वेणुर् ब्रजागमात् ॥८२॥

दिवा विरहजं तापं ब्रजस्थानां यथा हृतम् ॥

तथा मल्लोचने नाथ ! शिशिरीकुरु सन्ततम् ॥८३॥

(ता पाछें यथाशक्ति दूधघर-बालभोगकी सामग्री समर्पनी)

२५. “ततो यत्किञ्चिन् मोदकादि समर्पयेत्”.

श्रीमन्नन्दयशोदादि - प्रेम्णा भुक्तं ब्रजे यथा ॥

भोजनं कुरु गोपीश ! तथा प्रेमार्पितं हरे ॥८४॥

(ता पाछें संजा समयकी आरती उतारीके, शृङ्गारादिक वड़े करिवेकी बिनती करीके, शृङ्गार वड़े करीके घैया तथा दूध अरोगावने)

२६. “ततो आरात्रिकं कृत्वा शृङ्गारोत्तारणार्थं विज्ञाप्य, उत्तार्य, पयःफेनं पयो वा समर्पयेत्”.

राधिकाश्लेषान्तराय - भूषणोत्तारणात् प्रभो ! ॥

निशि तत्कृतशृङ्गारा - झीकारार्थं प्रसीद मे ॥८५॥

ब्रजे स्वानन्दतो दोहं बलेन सह गोपकैः ॥

कृत्वा पीतं पयःफेनं तथा पिब ब्रजाधिप ! ॥८६॥

(ता पाछें तमोदीप समर्पिके, शयनभोगमें दूध-अन्नादि समर्पने)

२७. “तमोदीपं निवेद्य, निशि दुग्धान्नादि समर्पयेत्”.

वासरीयवियोगार्त - राधिकास्यावलोकने ॥

दीपार्पणाद् गोपिकेश ! प्रसीद करुणानिधे ॥८७॥

दुग्धान्नादि यथा भुक्तं रोहिण्युपहृतं निशि ॥

ब्रजनायक भोक्तव्यं तथैव हि मदर्पितम् ॥८८॥

(ता पाछें शयनभोग सरायके, आरती करीके, पौढवेकी बिनती करीके प्रभून्को पौढावने)

२८. “ततः ताम्बूलाचमनादिकं विधाय, आरात्रिकं कृत्वा, शयनार्थं विज्ञाप्य, शयनं कारयेद्”.

भावात्मकास्मद्हृदय - पर्यमे शेषरूपके ॥

रमस्व राधया कृष्ण ! शयानो रसभावतः ॥८९॥

(रात्रि अनवसरकी भावना)

अयि ब्रजसखि ब्रज ब्रजवधूकदम्बाम्बिका-
समर्हणफलीभवच्चरणपमजस्यान्तिकम् ॥
नितम्बमिलदम्बरक्वणितहेमदामाङ्गना-
वृतस्य नलिनावलीप्रतिभटप्रभस्य द्रुतम् ॥१० ॥
निर्भरं क्रीडतोरालि ! कुञ्जे विगतवाससोः ॥
अन्योन्यप्रभयैवासीद् अन्योन्यस्योचितांशुकम् ॥११ ॥
रतिश्रमशयानयोरलसलोचनाम्भोजयोः ॥
कलं किमपि कूजतोरभिमुखं मिथः सस्मितम् ॥
रताङ्गभरितामयोर् मिलितजानुसंवाहने ॥
पदाम्बुजतलानि मद्दहदि लुठन्तु राधेशयोः ॥१२ ॥
केलिश्रान्तशयानश्रीराधाश्रीशपदसरोजानि ॥
कृपया कृतानि मदुरसि कदा नु संलालयिष्येऽहम् ॥१३ ॥
प्रातः कुञ्जगृहाद् बहिर्यदि समागत्य स्थिता त्वं
भवस्यम्भोजाक्षि ददासि चर्वितमिदं चाकार्य हस्तेन तु ।
ताम्बूलस्य यदा पुनस्तदिह सच्छिद्रस्य मुक्त्यापि च
कार्यं किं सततं प्रसीदसि यदि त्वं स्वामिनीत्थं तदा ॥१४ ॥

*

(सम्प्रदायके अनुसार साधन-फलके निर्देश पूर्वक उपसंहार)

श्रीवल्लभाचार्यमते फलं तत्प्राकट्यमत्राव्यभिचारिहेतुः ॥
प्रेमैव तस्मिन् नवधोक्तभक्तिः तत्रोपयोगोऽखिलसाधनानाम् ॥१५ ॥
ततो यदिन्दीवरसुन्दराक्षीवृतस्य वृन्दावननन्दितांहेः ॥
सर्वात्मभावेन सदास्यलास्यमस्थानिंशं सानु फलानुभूतिः ॥१६ ॥

(आचार्यसेवन)

श्रीमदाचार्यपादाब्जं भवेद् येषां हृदि स्थिरम् ॥
सदा श्रीराधिकाकान्तः तत्र तिष्ठति सुस्थिरः ॥१७ ॥
अतः पितृपदाम्भोज - भजनं सर्वथा मतम् ॥
उत्तमानामितो नान्या कृतिः काचन विद्यते ॥१८ ॥
मानुष्यप्राप्तिसाफल्यं यत् संसारविरागिता ।
सात्त्विकत्वस्य साफल्यं श्रीकृष्णस्यानुरागिता ॥१९ ॥

(पञ्चामृतकी भावना)

पञ्चामृतेन भावात्म - रूपेणातिप्रियेण ते ।
स्नापयामि ततः स्नात्वा हृदि मे सुस्थिरो भव ॥१०० ॥
प्रियाहास्यप्रभातुल्य - रूपेण पयसा गवाम् ।
स्नानं समाचर विभो कम्बुस्थेन ब्रजेश्वर ! ॥१०१ ॥
राधिकास्यामृतकर - चन्द्रिकाविशदेन वै ।
सरसेन घनेनेह दध्ना स्नानं समाचर ॥१०२ ॥
प्रियाधरामृतस्पन्द - मधुरेण महाप्रभो ।
शर्फस्थितेन मधुना स्नात्वा मुदम् अवाप्नुहि ॥१०३ ॥
प्रियास्नेहैकरूपेण घृतेन ब्रजनायक ! ।
स्नानं स्नेहात्मकं कृत्वा स्निग्धतां प्रकटीकुरु ॥१०४ ॥
प्रियाप्रत्यङ्गसौन्दर्य - माधुर्यसमतां गतम् ।
तया शर्करया स्नात्वा प्रत्यङ्गोच्छूनतां ब्रज ॥१०५ ॥

(दीनता पूर्वक प्रार्थना)

हा नाथ ! हा रमण ! हा करुणैकसिन्धो !
हा कृष्ण ! हा पतितपावन ! दीनबन्धो ! ॥
संसारसागरमहोर्मिषु मज्जमानं
माम् उद्धर प्रणतपालक ! बालकृष्ण ! ॥१ ॥

* “एतावती श्रीगोपीनाथजितां पद्धतिरूपा कृतिः” -म श्रीगोपेश्वरचरणाः.

(नामसेवा)

‘श्रीबालकृष्णे’ति नाम सकलाभीष्टदं कलौ ॥
जिह्वाग्रे वर्ततां तेन सदा मे कृतकृत्यता ॥२॥
अप्रियं सप्रियं वापि धनहीनस्य मे प्रभो ॥
मद्गृहे भोजनार्थाय ह्यागन्तव्यं महाप्रभो ॥३॥
या प्रीतिर्विदुरार्पिते मुररिपो कुक्त्यर्पिते यादृशी
या गोवर्द्धनमूर्ध्नि या च पृथुके स्तन्ये यशोदार्षिते ॥
भारद्वाजसमर्पिते शबरिकादत्तेऽधरे योषितां
या प्रीतिर् मुनिपत्निभक्तरचिते ह्यत्रापि तां तां कुरु ॥४॥
यशोदायाः स्तन्ये तदनु नवनीते ब्रजगवां
विहारे दध्यन्ने द्विजयुवतिदत्ते बहुगुणे ॥
तथा मित्रात् प्राप्ते पृथुकवर-मुष्टौ मुरहरे
यथा प्रीतिस्तां मे प्रकटय सुनैवेद्यनिचये ॥५॥
विदुरस्य गृहे प्रीत्या यथा भुक्तं निजेच्छया ॥
तथैव भुंक्ष्व नैवेद्यं मयि नाथ ! कृपां कुरु ॥६॥
यथा त्वं गोपिकादिभ्यो निजानन्दं प्रयच्छसि ॥
तथैव भुक्तशिष्टान्नं भक्तेभ्यो यच्छ पुष्कलम् ॥७॥

(श्रीयमुनाजीकी स्तुति)

वृन्दारण्यगतं रास - रसोन्मत्तमतं गजम् ॥
बबन्ध गोपबालैका बहु शृफलया निशि ॥१॥
‘हरितुर्यप्रिये ! कृष्णे ! प्रेम्णा भोज्यं मदर्पितम् ॥
अङ्गीकुरुष्व कृपया सफलं जन्म मे कुरु ॥२॥
नमस्ते सच्चिदानन्द - रसरूपिणि सूरजे ! ॥
कुमारीष्विव मे देहि श्रीकृष्णे भावमुत्तमम् ॥३॥

८. “ ‘हरितुर्य’ इति आरभ्य “भावमुत्तमम्” इत्यन्तं श्लोकद्वयं च श्रीमत्प्रभुविरचितसेवाविधिः” विवृतिके अनुसार ये दो श्लोक श्रीप्रभुविरचित हैं.

(विज्ञप्ति)

त्वदीयमधुसूक्तिभिर् ब्रजजनेशसङ्गाशया
मनोजशरपीडिताः कथमपि स्थिता मेऽसवः ॥
अतः परमये यदि प्रियतमाङ्गसङ्गो भवेत्
तदैव मम जीवितं विरहितादशाहीकरम् ॥१॥
श्रीगोकुलनाथोऽस्माकम् ऐहिकं पारलौकिकं च ॥
स्वयमेव जातोस्तीति किमस्माकं विचारणीयमस्ति ॥२॥
“चिन्ता कापि न कार्या” गोवर्द्धननाथो
अस्मत्कुलपतिः, अस्मद्धितमेव करिष्यति” ॥३॥
किं ब्रुवाणि सखि प्रेष्टविरहानलदाहिता ॥
जीवामीत्येतदेवालं निरपत्रपतास्पदम् ॥४॥
सख्येतल्लेखनीयं त्वयातियत्नेन राधिका (कान्तः) ॥
किं कृपयिष्यत्यथवा मनोरथेनैव जन्मनिर्वाहः ॥५॥
मदन्तः स्नेहवशतो मच्छरीरव्यवस्थितिम् ॥
जानन्तोऽपि न जानन्ति तत्तूचिततरं हि वः ॥६॥
यथा नर्तयति स्वामी वस्तुतस्त्वपराधिनम् ॥
मां तथाहं तु नृत्यामि भृशं क्लिष्टोऽस्मि तेन हि ॥७॥
त्रपावैराग्यराहित्याद् भवदार्तिजिहीर्षया ॥
पुनस्तत्रागताविच्छां करोमि स्नेहयन्त्रितः ॥८॥
परं तु तदनु रूपं शरीरं नैव वर्तते ॥
तथापि यदि पञ्चम्यां स्वास्थ्यं किञ्चिद् भविष्यति ॥९॥
तदा समागमिष्यामि दुःखं मा कुरुत प्रियाः ॥
सर्वेशे गोकुलाधीशे शरणाएव सर्वतः ॥१०॥
अतश्चिन्ता न कर्तव्या भवद्भिः कृष्णसात्कृतैः ॥११॥
श्रीगोकुलजीवनः सर्वं भद्रमेव करिष्यति ॥
अहं यथा शीघ्रं दर्शनं प्राप्नोमि तथा विधेयं प्रत्यहम् ॥१२॥
ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः ॥
सम्पत्स्वापत्स्वपि सदा शरणं हरिरेव हि ॥१३॥

॥ वर्षोत्सव सेवाकी भावना ॥

(महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणनको ध्यान)

‘सौन्दर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्रीगूढभावात्मकं
पुंरूपञ्च पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशत् स्वप्रिये ॥
संश्लिष्टावुभयोर्बभौ रसमयः कृष्णो हि तत्साक्षिकं
रूपं तत्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम् ॥१॥

(श्रीयशोदाजीकी स्तुति)

अहो भाग्यवती देवी ! यशोदा ! नन्दगेहिनी ।
गोविन्दममारोप्य मुखं चुम्बति सादरम् ॥२॥

(श्रीकृष्णसेवार्थ स्नानकी अलौकिक भावना)

श्रीराधे प्रियतमदृक्सङ्गमसञ्जातहासरुक्तरलैः ।
भवदीयैः स्नानं मे भूयात् सततं न पाथोभिः ॥१॥^२

(भावात्मक स्वरूपको ध्यान)

भावात्मकत्वात् तद्रूपं गुणातीतं सदैव हि ।

१. ये श्लोक गो.वा.श्रीमूलचन्द्र तेलीवाला द्वारा साम्प्रदायिक मासिकपत्रिका
‘पुष्टिभक्तिसुधा’ वि. सं. १९७२-७३ में “श्रीमद्गोपीनाथानां पद्यानि” शीर्षकान्तर्गत
प्रकाशित भयो हे.

२. यहांसू सात पत्र त्रुटित होयवेसूं विवृतिकारद्वारा प्रतिज्ञात अधोनिर्दिष्ट अंश
त्रुटित पत्रनमें होयवेकी सम्भावना है : “जप-नामप्रशंसा-प्रातःकृष्णनमन-
सकध्या-होम-ब्रह्मयज्ञ-गौणकालिक-लौकिकवैदिककर्म-अभ्यवहार-
पान-तत्फल-स्वोच्छिष्ट-दानविधि-तद्ग्रहण-प्रतिमाभावना”.

ध्येयं तद्रूपभावेन शुद्धैर् जीवैर् न चान्यथा ॥१५॥

(भगवत्सेवासूं ब्रह्मबोधरूप अवान्तर फल तथा मानसीसेवारूपा मुख्य भक्तिकी
प्राप्तिको कथन)

लीलारूपैश्च तत्सेव्यं तदीयत्वाय सर्वदा ।
एतत् संसेवनाद् ब्रह्मभूतो भक्तिं लभेत् पुनः ॥१६॥

(पुष्टिभक्तिके फलको कथन)

भक्तिं लब्ध्वा च विशते कृष्णलीलास्वसंशयम् ।
नातः परतरं किञ्चित् प्राप्यम् अस्तीह कर्हिचित् ॥१७॥

(ब्रह्मवादको जानिके सात्त्विक भगवद्भक्तनको श्रीआचार्यचरणद्वारा श्रुति-
सूत्र-गीतादि शास्त्रसों सुनिश्चित पुरुषोत्तम ब्रजाधिप श्रीकृष्णको मनोयोग पूर्वक
भजन करना)

एतद्रूपं समास्थाय श्रीवल्लभसुनिश्चितम् ।
सात्त्विकैर् भगवद्भक्तैः स्थेयं कृत्वा दृढं मनः ॥१८॥
श्रीकृष्णविरहानन्दानुभवाय विशेषतः ।
श्रुत्युक्तरीत्या सर्वत्र पश्यद्भिः पुरुषोत्तमम् ॥१९॥
अनया पुष्टिपद्धत्या ससूत्र-श्रुति-गीतया ।
ज्ञात्वानन्दमयत्वं हि भजनीयो ब्रजाधिपः ॥२०॥
इति स्वरूपसर्वस्वं धारयेद् यः समाहितः ।
स बुद्ध्वानन्दरूपं तु मुच्यते सर्वसंशयात् ॥२१॥

(उपर्युक्त आनन्दमय स्वरूपको भजनीयत्वेन निरूपण करवेकेलिये
आचार्यनमनात्मक मङ्गलाचरण)

जयत्याचार्यपादाब्ज – रेणुर् यल्लाभतः स्वयम् ।
 तुरीयं पुरुषार्थं हि प्रीतः कृष्णः प्रयच्छति ॥१॥
 शब्दार्थयोर् नित्यता तद् भक्तिरात्यन्तिकी हरौ ।
 उदेति 'श्रीवल्लभे'ति – नामोच्चारणमात्रतः ॥२॥
 आनन्दमयतानन्द – सन्दोहो यत् प्रवेशतः ।
 आनन्दरूपे भवति स वै श्रीवल्लभः प्रभुः ॥३॥
 सिद्धिदा यादृशी प्रोक्ता जीवानां सेवना कृता ।
 तादृशीं स्वीयशिक्षार्थं दर्शयामास वाक्पतिः ॥४॥

(षड्गुण विशिष्ट धर्मी श्रीकृष्ण भजनीय)
 षड्गुणैः सहितो धर्मी कृष्णः सेव्यः परः प्रभुः ।
 गुणाश्च भगवद्रूपाः रूप-लीलाविभेदतः ॥५॥
 तज्ज्ञात्वा सेवना कार्येत्येवंरूपविभेदतः ।
 सेवयामास वागीशो बहुरूपाणि वै हरेः ॥६॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुमें करिवेकी विविध लीलास्वरूपनकी भावनानके निरूपणके अन्तर्गत स्वसेव्य प्रभुमें श्रीगोवर्धनाधीशकी भावनाको निरूपण)

गोवर्धनाधीशरूपं मूलरूपानुकारतः ।
 शरणीयं च सेव्यं च भक्तिमार्गानुसारतः ॥७॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुके ऐश्वर्य गुण एवं विनमें श्रीनवनीतप्रियजीकी भावना को निरूपण)

कृष्णः स्वैश्वर्यरूपेण प्रकटो बाललीलया ।
 नवनीतादिचौर्येण स सेव्यः तत्प्रभावतः ॥८॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुके वीर्य गुण एवं विनमें श्रीमथुरानाथजीकी भावना को निरूपण)

वीर्यरूपेण मथुरां गत्वा भक्ताधिमर्दनम् ।
 कृत्वा गतः स्वप्रिययालिङ्गितो भक्ततापहृत् ॥९॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुके यशो गुण एवं विनमें श्रीविठ्ठलनाथजीकी भावना को निरूपण)

यशोरूपेण भक्तार्तिं हृतवान् स्वप्रयासतः ।
 सर्वशक्तियुतः प्रेम्णा स सेव्यो विट्ठलेश्वरः ॥१०॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुके श्री गुण एवं विनमें श्रीद्वारिकानाथजी भावना को निरूपण)

विरहे भावितप्रेम्णा प्रियया द्वारिकास्थितः ।
 मार्गतोङ्गीकृतः सेव्यः श्रियया द्वारिकेश्वरः ॥११॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुके ज्ञान गुण एवं विनमें श्रीगोकुलचन्द्रमाजीकी भावना को निरूपण)

कदाचित् युमुनातीरे ज्ञानरूपेण वेणुना ।
 प्रियाम् आकारयन् सेव्यः त्रिभङ्गो गोकुलाधिपः ॥१२॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुके वैराग्य गुण एवं विनमें श्रीगोवर्धनधरजीकी भावना को निरूपण)

स्वीयविद्वेषिवैराग्य – लीलयाधारयद् गिरिम् ।
 तद्रूपेणार्तिहृत्सेव्यः प्रभुः गोवर्धनेश्वरः ॥१३॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य प्रभुमें शृंगारभावात्मक श्रीमदनमोहनजीकी भावनाके निरूपण पूर्वक उपसंहार)

मदनं कामरूपेण स्त्रीभावाद् भावितो हरिः ॥
 मोहयन् मूलरूपेणावतीर्णः सेव्य एव सः ॥१४॥
 एवंविधानेकलीला – रूपैः तद्भावभाविताः ।
 सेवयेद् अन्यथा तु स्याद् अपराधो न तत्फलम् ॥१५॥

(सर्वविध अलौकिक लीला एवं गुण विशिष्ट स्वसेव्य पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी शङ्गारसात्मकताको निरूपण)

कन्दर्पकोटिलावण्यं नत्वा गोपीजनप्रियम् ।
शृङ्गारसरूपं हि यादृक् तादृक् निरूप्यते ॥१॥
स्वच्छो मरकतश्यामः स्त्री-पुम्भावात्मकः पटुः ।
अनन्य-परतन्त्रश्च रसः 'शृङ्गार' उच्यते ॥२॥
गाढत्वाद् व्यापकत्वाच्च ब्रह्मत्वात् 'श्याम' उच्यते ।
स्त्री-पुं-प्रेमविहारात्म - गाथानन्दविभावतः ॥३॥
प्रादुर्भवति कृष्णात्मा हृदि भावामुरात्मकः ।
अनिर्वाच्यानन्दरूपा - नन्दानुभवसाक्षिकः ॥४॥
भावाभास-रसाभासौ पोषकौ तस्य सम्मतौ ।
संयोगो विरहश्चापि तस्यावस्थाद्वयं मतम् ॥५॥
अवस्थाद्वयपूर्णो हि स्वकार्यकरणक्षमः ।
भावोद्बोधं विना भाव - सम्पत्त्यर्थं तु या कृतिः ॥६॥
हास्य-स्पर्शादिरूपा हि भावाभासः स उच्यते ।
रसोद्गमक्रिया काचिद् व्याजवाक्यादिसंयुता ।
करोत्यानन्दमन्तर्हि 'रसाभासः' स उच्यते ॥७॥
श्रीकृष्णगोपिकाप्रौढ - विलासकथयोद्गतम् ।
रससंयोगभावं हि श्रीकृष्णे साधयेद् ध्रुवम् ॥८॥
ततश्चातितरं वृद्धो निमेषाद्यन्तरायकम् ।
विरहं साधयित्वा च पुष्टः स्यात् स्वस्वरूपतः ॥९॥
एवं चेत् पुष्टताम् एति भावात्मा स रसस् तदा ।
श्रीकृष्णभजने योग्यं कुर्याज् जीवं निवेदितम् ॥१०॥

(आत्मनिवेदन पूर्वक रसात्मक श्रीकृष्णके भजनमें ही कृतार्थताके निरूपण पूर्वक श्रीकृष्णके शृङ्गारसात्मक स्वरूपके निरूपणको उपसंहार)

कृष्णे निवेदनाज् जीवः कृतकृत्यो भवेद् इह ।
अतः सर्वात्मना कुर्याद् विधित्वेन निवेदनम् ॥११॥
शृङ्गे भावामुरः प्रोक्तः शृङ्गारस् तद्गतो रसः ।

स वै कृष्णात्मको ज्ञेयः श्रुतिवाक्यानुसारतः ॥१२॥
समर्प्य तत्र सर्वं हि दृढविश्वासतो भजन् ।
ऐहिके पारलोके च चिन्तां त्यक्त्वा सुखी भव ॥१३॥

वर्षोत्सवकी भावना

(प्रधान उत्सवन्को निरूपण करत हैं. तामें प्रथम श्रीकृष्णजन्माष्टमीकी भावना कहत हैं)

३“अथ जन्माष्टम्युत्सवः”

येन दुःखेन गोपीनां यशोदानन्दयोस् तथा ।
प्रकटोभून् निरोधार्थं तथा मयि कृपां कुरु ॥१॥
निवेदितात्मभावेन महतां कृपया तथा ।
देहि स्वानन्दरूपं स्वदास्यं श्रीपुरुषोत्तम ॥२॥
हरे करुणया कृष्ण ! मदर्थं प्रकटो भव ।
अहं यथा निरोधस्य पदवीं याम्यसंशयम् ॥३॥
इति विज्ञाप्य श्रीकृष्ण - मूर्त्यग्रे प्राञ्जलिः स्थितः ।

३. “कारिकातिरिक्तं ग्रन्थमपि अत्रैव बोधाय समग्रं लिखामः” विवृतिकारके कथनानुसार ये ग्रन्थ विधिभागरूप गद्य एवं मन्त्रभागरूप कारिका एसें गद्य-पद्यात्मक हे. ग्रन्थकूं सुबोध बनायवेके अर्थ विवृतिकारने गद्यांशको संयोजन अपनी व्याख्यामें कियो हे. उन विधिभागनकूं तिरछे अक्षरन्में मुद्रित कियो हे.

यशोदा-नन्द-गो-गोपी-गोप-सङ्घसमन्वितम् ॥४॥
 व्रजं भावनया सिद्धं कृत्वा हृदि विभावयेत् ।
 स्वार्थं प्रकटितं कृष्णम् आनन्दाकारम् उत्तमम् ॥५॥
 ततः सम्पूजयेद् भक्त्या यथालब्धोपचारकैः ।
 प्रत्यब्दं कार्यमेवं हि लीलानित्यत्वतः सदा ॥६॥

‘लोके सर्वं परित्यज्य लीलासिद्धिम् अचीकृत्पः ।
 प्रभूपरिकृता दृष्टिः तथा मयि कृपां कुरु ॥२(?)॥

वामनजयन्ती

यथा स्वदासवंशीय - बलेर् अर्थार्थसिद्धये ।
 अङ्गीकृतं तत् सर्वस्वं तथैव कुरु मे प्रभो ॥१॥

विजयादशमी

प्रतिबन्धासुरं दूरी - कृत्य भक्तमनोरथः ।
 पूरितः स्वप्रियां नीत्वा तथा मेऽस्तु मनोरथः ॥१॥
 श्रीकृष्ण पूरयान्तःस्था - सुरभावविनाशनात् ।
 दर्शनं देहि रासस्थ - स्वप्रियासङ्गतं स्वकम् ॥२॥

दीपोत्सवः

यथा श्रीमन्नन्दकृत - दीपावलि विधानकम् ।
 लौकिकं स्वीकृतं स्वात्म - प्रवेशार्थं व्रजेश्वर ! ॥१॥
 कृपया स्वीयतासिद्ध्यै पूर्वविस्मरणेन हि ।
 तथा दीपादिकं सर्वम् अङ्गीकुरु मदर्पितम् ॥२॥

४. “ममेयं कृतिर्न प्राचाम्” विवृतिके अनुसार ये श्लोक विवृतिकार विरचित हे.

अन्नकूटः

स्वशक्तिहृदयाद्रूपं स्वं यथा प्रकटीकृतम् ।
 तथैव प्रकटीभूय गिरौ पूजां गृहाण मे ॥१॥
 गिरिच्छत्रेण दृक्पात - चामरैः स्नेहवारिभिः ।
 केवलस्वीयताराज्ये - ऽभ्यषिञ्चद् व्रजमीश्वरः ॥२॥

(अन्नकूट भोग समर्पवेके समय बोलिवेके श्लोक)

‘त्वदाज्ञप्तस्वयागात्मान्नकूटस्य समर्पणात् ।
 गोवर्धनाचलाधीश ! प्रसीद सततं मयि ॥१॥
 यथेन्द्रयागभङ्गस्य सयागस्य च कारणात् ।
 नन्दादीनाम् अनन्यत्वं कृतं मयि तथा कुरु ॥२॥

प्रबोधिनी

क्रीडता योगनिद्राङ्गी - कारणे रससागरे ।
 तत्रस्थाङ्गीकृता मासैः पुमर्थप्रतिपादकैः ॥१॥
 तथाधुनोत्तिष्ठ कृष्ण ! याहि स्वात्मनिवेदितान् ।
 तदङ्गीकृतिमात्रार्थं जगद्रसमयं सृज ॥२॥

मार्गशिरः

स्वनाथप्रापिकां देवीं सन्तुष्टां कृष्णरूपिणीम् ।
 भावयित्वात्मभजनी - ये रूपे पूजयेच् च ताम् ॥१॥

वसन्तोत्सव

कामेपि प्रमदाभाव - करणं कामसुन्दरम् ।

५. ये दो श्लोक गो.वा.श्रीमूलचन्द्र तेलीवाला द्वारा मासिकपत्रिका: ‘पुष्टिभक्तिसुधा’ वि.सं. १९७२-७३ में “श्रीमद्गोपीनाथानां पद्यानि” शीर्षकान्तर्गत प्रकाशित भये हैं.

तदर्थं सेवयेत् कृष्णं कैशोरे वयसि स्थितम् ॥१॥
एवं संसेवितः काम – पञ्चम्यां कामदोसि यत् ।
गोपीनां कृपया देहि तथा मे काममद्भुतम् ॥२॥

दोलोत्सवः

प्रियोरुरूप-भावात्म – स्तम्भयुग्म-समन्विताम् ।
श्रीकृष्णस्मृतिसौख्यां यद् – दोलाम् आरोपयाम्यहम् ॥१॥
प्रियाबाहुलताभावा – त्मिकायाम् अनुरागतः ।
दोलायां दोलयामि त्वां प्रसीद पुरुषोत्तम ! ॥२॥

रामनवमी

श्रीकृष्णहास्यरूपेण प्रमदाभावकारकः ।
तदर्थं प्रकटाय त्वां भजामि रघुनायक ! ॥१॥
यथैवाग्निकुमाराणां भावम् उत्पाद्य दत्तवान् ।
वरं मे कृपया देहि तथा देव नमोऽस्तु ते ॥२॥

(महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणनके उत्सवकी भावना कहत हैं)

श्रीमत्प्रभूत्सवः

श्रीकृष्णान्तरकृष्णास्य – खरूपविहारकृत् ।
तदर्थप्रकटः स्वीय – दास्ये माम् अनुभावय ॥१॥

चन्दनयात्रा

कुच-कुमुम-गन्धाढ्यम् अङ्गरागमपि प्रियम् ।
श्रीकृष्ण तापशाक्त्यर्थम् अङ्गीकुरु मदर्पितम् ॥१॥

नृसिंहजयन्ती

श्रीवारूपं श्रीनृसिंहं स्वभक्त्यतिशयाद् यथा ।

प्रकटीकृतवान् कृष्ण ! तां भक्तिं वितरस्व मे ॥१॥

ज्येष्ठाभिषेकः

प्रियारतिविहारोत्थ – श्रमवारि-सुगन्धिना ।
शृङ्गाररसरूपात्म – यामुन-ब्रह्मवारिणा ॥१॥
स्वरूपरसदानार्थं तापानन्तरभावनात् ।
प्रियाङ्गरसनीरेण स्वभिषिक्तो भव प्रभो ॥२॥
स्नातस् तद्रसदानार्थं स्वसृष्टिं कारणात्मिकाम् ।
सृष्ट्वा वितर सत्क्रीडां तद्दास्ये स्वीकुरुष्व माम् ॥३॥

रथोत्सवः

मनोरथात्मकरथे रथात्मात्मन् हरे मम ।
श्रीकृष्णस्योपवेशार्थम् अधिवासं कुरु प्रभो ॥१॥
मनोरथात्मकः कृष्ण ! कल्पितोयं रथस् तव ।
पूरयात्रोपसंविश्य गोपीवन् मन्मनोरथम् ॥२॥
श्रीकृष्ण ! रथमारुह्य सरामेण सुभद्रया ।
पाहि मां भक्तिदानेन दुःखसंसारसागरात् ॥३॥

हिन्दोलोत्सव

अक्षरे लीनतासिद्धयै भृशं लक्ष्मीर्यथाकरोत् ।
दोलिकारोहणं स्वप्रियकर्म गायती तथा ॥१॥
प्रतिमुखे मुखान्दोलैर् अक्षराद् अभयं कुरु ॥

पवित्रोत्सवः

या कृता वार्षिकी सेवा सा मूलफलदा मता ।
प्रत्यहं सूत्ररूपेण सैकीभूतानुभावनात् ॥१॥

६. “मम कृतिरियं न मूलग्रन्थकृताम्” के अनुसार ये डेढ़ श्लोक विवृतकारकी कृति हैं.

पवित्रं तज्ज्ञापकं हि प्रेषितं हरिणा ततः ।
 अतस् तदारोपणं तु श्रीकृष्णे सन्मतं सदा ॥२॥
 तदारोपाद् भक्तिभावा मूले सर्वे समर्पिताः ।
 त्वत्प्रेषितं पवित्रं हि मूलसेवाफलात्मकम् ॥३॥
 समर्पयामि तत्प्रीतः कृपयाङ्गीकुरु प्रभो ।
 तत्समर्पणतो भाव – सेवायाः फलरूपता ॥४॥

रक्षा

पूतनायां संस्थितायां गोपिकाभिर् यथा कृतम् ।
 तथा रक्षाबन्धनं प्रेम्णाङ्गीकुरु कृतं मया ॥५॥

(उत्सवसेवाके फलको एवं तदर्थ आचार्याश्रयकी आवश्यकताको निरूपण करते भये प्रकृत प्रकरणको उपसंहार)

प्रत्यब्दमेवं करणाद् उत्सवानां विधानतः ।
 श्रीमदाचार्यमार्गोक्त – सेवायाः फलरूपता ॥६॥
 सा काय-वाङ्-मनोभिश्च दृढप्रेम्णा कृता सती ।
 दृढमूली लतावच्च वृद्धा कृष्णं फलिष्यति ॥७॥
 व्यस्तैस्तैः सुदृढैर् हीन – मध्य-मोत्तम-भेदतः ।
 कृता जीवैः स्वमार्गस्थैः फलिष्यत्युत्तरोत्तरम् ॥८॥
 पितृपादरजो जातु ह्युत्तमैर् विस्मृतं न यैः ।
 तेषामेव हि मार्गोयं फलिष्यति न चान्यथा ॥९॥

(विरहावस्थामें करिवेकी भावनाको मङ्गलाचरणपूर्वक निरूपण करत हें)

श्रीवल्लभो जयति भक्तहितैकबन्धुः
 आविश्चकार तनयं किल विट्ठलं यः ।
 तस्यैव पादयुगलं सततं नमामि
 प्रेम्णा तदस्तु हृदये मम सर्वदैव ॥१॥

श्रीवल्लभाचार्यमार्गे स्मरणात् सेवनाद् हरेः ।
 तत्कथाश्रवणात् चापि न कालो बाधते क्वचित् ॥२॥
 वैराग्य-प्रेमयोगेन स्मरणादि-त्रिकात् पुनः ।
 प्रसीदति हरिः शीघ्रं कालश्चानुगुणो भवेत् ॥३॥
 व्रजे मधुवने चापि द्वारकायां तथैव च ।
 गोपीषु कुब्जादिषु च रुक्मिण्यादिषु या कृता ॥४॥
 प्रकटानन्दरूपेण स्वकीया रसरूपता ।
 प्रकटीकृत्य कृपया तां चेत् कारयते मयि ॥५॥
 तदा निरोधः सुदृढो जायते नान्यथा क्वचित् ॥
 निरोधेच्छुभिरैतावदेव प्रार्थ्यं हरौ ततः ॥६॥
 अक्रूरे श्रुतदेवे च विदुरेऽथोद्धवे च या ।
 कृता दासार्पितकृपा तां कृपां वितर प्रभो ! ॥७॥
 श्रीमदाचार्यपादाब्ज – रेणोर् न स्मरणं त्यजेत् ।
 तत्त्यागे महती हानिर् मानुष्यं निष्फलं भवेत् ॥८॥

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीमद्गोपीनाथानां पद्यानि॥

गोपिकावद् विप्रयोगे कालक्षेपाय सर्वथा।
कृष्णमूर्तिं प्रियां कृत्वा भजेत् तत्तत्स्वभावतः॥१॥
भावात्मविप्रयोगेऽपि न स्थातुं शक्यते यतः।
अतः स्वहृद्गतैः भावैः भूषयेत् तं मनोमयम्॥२॥
शब्दार्थयोर्नित्यतावद् भक्तिरात्यन्तिकी हरौ।
उदेति श्रीवल्लभेति नामोच्चारणमात्रतः॥३॥
स्वार्थप्रकटसेवाख्यमार्गे श्रीवल्लभप्रभोः।
अङ्गीकृतस्य मे भोज्यं स्वास्ये कुरु हुताशन॥४॥
सौंदर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्रीगूढभावात्मकम्।
पुरुषं च पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशत् स्वप्रिये॥
संश्लिष्टावुभयोर्बभौ रसमयः कृष्णो हि तत्साक्षिकं।
रूपं तत्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम्॥५॥
पयःपत्रादिमात्रेण पूजितो यः परं पदं।
प्रागेव दिशति प्रीतः स कृष्णः शरणं मम॥६॥
स्नेहात्मगन्धतैलेन प्रियागन्धातिचारुणा।
अभ्यक्तो मङ्गलास्नानं कुरु गोकुलनायक॥७॥
दिवा त्वद्गमनस्मरणात् तापभावतः।
प्रियास्पर्शोष्णनीरेण स्नातो भव ब्रजाधिप॥८॥
स्नार्द्रतानिवृत्यर्थं प्रोञ्छिताङ्गविभो मम।
दूरीकुरुष्व गोपीश कृपया लौकिकार्द्रताम्॥९॥
प्रियाङ्गसङ्गसम्बन्धि-गन्धसम्बन्धतो भवेत्।
कदाचित् कस्यचिद् भावो ह्यतः स्नानं समाचर॥१०॥
भावात्मकतया क्लृप्त-स्वोत्तरीयात्मकासने।

सिंहासने गोकुलेश कृपयोपविश प्रभो॥११॥
उदेति सविता नाथ प्रियया सह जागृहि।
अङ्गीकुरुष्व मत्सेवां स्वकीयत्वेन मां वृणु॥१२॥
प्रसीद पूजितो भक्त्या तुलस्याः प्रियगन्धया।
निःकिञ्चनाधीश नान्यत् कर्तुं शक्नोमि सर्वथा॥१३॥
मुखाब्जमकरन्दाप्ति-लोभेन रसभावतः।
पर्युपासितचित्तानि व्रजरत्नानि तानि मे॥१४॥
कुसुमान्यर्पितानीश प्रसीद मयि सन्ततम्।
कृपासंहृष्टदृग्वृष्ट्या तदङ्गीकृतिशोभिनः॥१५॥
स्वरूपरसदानार्थं निष्पीडाब्रह्मविद्यया।
यदुच्छिष्टं मे ददासि कृतार्थोऽस्मि ततः प्रभो॥१६॥
प्रियासङ्केतकुञ्जीय-वृक्षमूलेषु पल्लवैः।
कृतेषु भावतल्पेषु क्रीडन् गोचारणं कुरु॥१७॥
प्रियानखात्मकादर्शं विलोक्य वदनाम्बुजम्।
ब्रजाधीश प्रमुदितः कृपया मां विलोकय॥१८॥
भावात्मकास्मद्हृदय-पत्पङ्के शेषरूपके।
रमस्व राधया कृष्ण शयानो रसभावतः॥१९॥
यथा स्वान्तस्थबालानां कृतार्थत्वाय सर्वदा।
स्वोच्छिष्टं कृपया दत्तं हरे देहि तथैव मे॥२०॥
ताम्बूलचर्वितमिव मुख्योच्छिष्टं ब्रजाधिप।
गृह्णामि कृपया दत्तमस्तु मे फलितं तथा॥२१॥
त्वदाज्ञप्त-स्वयागात्मान्नकूटस्य समर्पणात्।
गोवर्धनाचलाधीश प्रसीद सततं मयि॥२२॥
यथेन्द्रयागभङ्गस्य स्वयागस्य च कारणात्।
नन्दादीनाम् अनन्यत्वं कृतं मयि तथा कुरु॥२३॥
समुल्लसति कङ्कुमछुरितपुष्पमालां यदा

ददासि हसिता सती सखि कृपाकटाक्षैर्मुदा।
समीक्षसि यदा वदिष्यसि मुदा तदाहं तदा-
त्मतामपि हि मुक्तितोप्यधिकतुच्छमुक्तिं ब्रुवे॥२४॥
यदा सखि रतिश्रुतिप्रथितबन्धरीत्या रमन्त्य
तिश्रमजशीरं स्मरसि मां समीक्ष्य प्रियं॥
तदा व्यजनवीजनार्थमपि चेन्मे पुण्यगम्।
सुरेशसदनं न वा भवतु मोक्ष एष स्फुटम्॥२५॥
न मे कस्यापीप्सा त्रिजगति वरीवर्त्यतिपरं-
त्विदं त्वेकं तिष्ठत्यति मम मनस्यालि सततम्॥
चिरप्रार्थ्यं यत्स्वं व्रजपतिमुतस्तत्प्रियतमा।
मुदा राधा चोभौ मत्कृतनिकुञ्जेषु रमणम्॥२६॥

॥इतिश्रीगोपीनाथप्रभुचरणानां पद्यानि॥

(एतत्पद्यानाम् एकपुस्तकतः शोधित्वात् शोधनादिकार्यं केषाञ्चित् श्लोकानां मम मनसि असन्तोषं जनयति, तथापि एतेषां पद्यानां दुर्लभत्वाद् अतिसुन्दरत्वाच्च मुद्रणन्तु अवश्यं वैष्णवानां फलप्रदम् इत्यतः तानि मया प्रकाश्यन्ते. अत्र विद्यमाना याः काश्चन अशुद्धयः ताः साम्प्रदायिकविद्वांसः प्राचीनपुस्तकतः शोधयित्वा मां ज्ञापयिष्यन्ति इति प्रार्थयेऽहम्).

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण विरचित

॥ सौन्दर्यपद्य ॥

सौन्दर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्रीगूढभावात्मकं
पुंरूपञ्च पुनस्तदन्तर्गतं प्रावीविशत् स्वप्रिये।
संश्लिष्टावुभयौ बभौ रसमयः कृष्णो हि यत् साक्षिकं
रूपं तत् त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम्॥

निज=अपने	कृष्णः=श्रीकृष्ण
(कृष्ण)हृद्गतं=हृदयमें रहेभये	बभौ=शोभायमान भये
स्त्रीगूढभावात्मकं=गूढ स्त्री भावात्मक	हि=यासूं
प्रकटितं=प्रकट	(तस्मात् कारणात्)
सौन्दर्यं=सौन्दर्य	यद्=जो
पुनः=फेरि	रूपं=रूप
तद्=वो-(स्वामिनी)	साक्षिकं=साक्षी
अन्तर्गतं=अन्दर रह्योभयो	(आसीत्)
पुंरूपं=पुरुषरूप	तत्=वो
(प्रकटितं सौन्दर्यं)	त्रितयात्मकं=तीनों रूपवारो
च=अरु	(भूत्वा=होयके)
स्वप्रिये=अपने प्रियमें	सदा=सदा
प्रावीविशद्=प्रविष्ट करायो(इति)	वल्लभं=श्रीमहाप्रभुजीको
उभयौ=दोनोंको	परम्=आछीभांतिसों
संश्लिष्टौ=संयोग भयेसूं	अभिध्येयं=ध्यान करनों
(सन्तौ पुनः)	(प्रकटितम् अभवत्)
रसमयः=रसात्मक	

भावार्थ : सर्वरसभोक्ता श्रीकृष्णके भीतर अपने स्वरूपानन्दके दानार्थ एक गूढ भोग्यभावात्मक सौन्दर्यहु हे- तेसेई अपने स्वरूपानन्दके उपभोगार्थ प्रकट किये स्वामिनीरूपमेंहु भगवत्स्वरूपानन्दके उपभोग करिवेके भाववारो एक गूढ भोक्तृभावात्मक सौन्दर्यहु हे. सो ये भगवान्में रह्यो गूढ भोग्यभावात्मक सौन्दर्य अरु स्वामिनीमें रह्यो गूढ भोक्तृभावात्मक सौन्दर्य आत्यन्तिक रसोद्बोधनकी अवस्थामें कबहुक प्रकट (उच्छलित) ह्वे जात हे. अन्यथा गूढ ही रहत हे. सो उभयत्र स्थित गूढ सौन्दर्य कबहुक उच्छलित ह्वे के अपनी एसी रसात्मिका लीलाके परिकर एसे साक्षीभूत स्वरूपको पात्रतया अवलम्बन करत हे. सो या रसलीलामें उच्छलित गूढ भावात्मक, भगवत्सौन्दर्य तथा स्वामिनीसौन्दर्य के मिश्रणसों प्रकट रसात्मक कृष्णके प्रिय पात्र बनिवेके कारण

(१) गूढ स्त्री(भोग्य)भाव

(२) गूढ पुं(भोक्तृ)भाव तथा

(३) साक्षिभाव

-यों त्रितयात्मक रूप सर्वदा ही पुष्टिजीवनों

निरतिशय प्रिय होयवेतें सर्वोत्कृष्टतया अभिध्यान करिवे

योग्य हे।।९।।

टीका : “बर्हापीडं नटवरवपुः...” श्लोकमें भगवान्को जेसो प्रमेयरूप निरूपित कियो ताके प्रमाणरूप (साक्षिरूप) स्वयमेव महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण हैं. सो या श्लोकमें महाप्रभुके एसे स्वरूपको वर्णन श्रीगोपीनाथप्रभुचरणने कियो हे. सो काहेतें जो प्रमाणके बिना प्रमेय सिद्ध होत नाहिं. तेसैं महाप्रभु यदि प्रकट न होवते तो पुष्टिभक्तिभावको अवलम्बन बनिवेवारे श्रीकृष्णको एसो गूढ सौन्दर्यहु पुष्टिजीवन्के काज प्रकट न होतो.

कछुक पाखंडी जीव या श्लोकमें वर्णित महाप्रभुकी त्रितयात्मकताके व्याजतें श्रीकृष्णकी अनन्यभक्तिके महाप्रभुके उपदेशसों अपनो प्रच्छन्न द्वेष प्रकट करि देत हैं:जो श्रीकृष्णको मूलरूप तो एकात्मक हे अरु त्रितयात्मक होयवेतें भजनार्थ उत्कृष्टतर स्वरूप तो श्रीमहाप्रभुको हे. सो एसे श्रीमहाप्रभुके प्रच्छन्न द्वेषी

जनन्के पाखण्डको खण्डन याही श्लोकतें ह्वे जात हे जो त्रितयात्मक रूप तो केवल ध्यान करिवेके काज हे सेवाके काज नाहिं

लोकमें जेसे कोउ कछुक धर्माचरण किंवा अधर्माचरण करत होय तहां जो साक्षी बनि ठाड़ो रहे ताकोहु धर्म अथवा अधर्म को कछु फललेश होत हे. परि मुख्य फल तो धर्मकर्ता अथवा अधर्मकर्ता कोहि मिलत हे. परि वाके धर्माचरण किंवा अधर्माचरण को जो साक्षी बनत हे सो प्रमाण तो मान्यो जात हे. तेसेई स्वामिनीजीमें प्रकट-भोग्यभाव अरु गूढ-भोक्तृभाव अंशीभूत हे ताके अंशभूत प्रकट-भोग्यभाव अरु गूढ-भोक्तृभाव सबहि पुष्टिजीवनों प्रभुने प्रदान किये हैं. ताको प्रमाणित करिवेके काज लीलापरिकरमें साक्षीभूत प्रमाणस्वरूपको प्रभुने भूतलपे पुष्टिभक्तिमार्गके आचार्य बनायके प्रकट किये हैं. सो प्रकट होयके आपनेहु प्रकटमें भोक्तृभावात्मक परि गूढतया भोग्यभावात्मक श्रीकृष्णके स्वरूपानन्दको दान करिवेवारे पुष्टिभक्तिमार्गको उपदेश कियो.

तब श्रीकृष्णकी पुष्टिभक्तिके आपके उपदेशसों द्वेष करिवेवारेन्की ओर कछु तो चली नाहिं. तब श्रीकृष्णभजनते पुष्टिजीवको विमुख करिवे श्रीमहाप्रभुकी त्रितयात्मकताकी बातको उलटो अर्थघटन करि त्रितयात्मक रूप धारण करिवेवारे श्रीमहाप्रभुकी सेवा करनी, मूलस्वरूप श्रीकृष्णकी सेवा नाहिं करनी-एसे पाखण्डको प्रचार करि देत हैं. सो तो रूपदर्शनार्थ विधाताने नेत्र दिये सो तिन नेत्रनों रूपदर्शन न करिके दर्पणमें स्वनेत्रदर्शन ही करते रहिवेकी सी मूढता जाननी. तासों सिद्ध होत हे जो गूढ-भोग्य-भोक्तृ-रूपनों उभय-भावात्मक रसमय श्रीकृष्ण तो अपने पात्रस्थानीय महाप्रभुके हृदयमेंहु गूढभावतयाही बिराजत हैं. अरु प्रकटमें तो आप ता गूढभावन्के साक्षीरूप-प्रमाणरूप ही हैं- कछु अर्धनरनारी जेसे रूपते आप प्रकट नाहीं भये हैं. सो “दैवोद्धारप्रयत्नात्मा... भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डः... अङ्गीकृत्यैव गोपीशवल्लभीकृतमानवः... सान्निध्यमात्रदत्तश्रीकृष्णप्रेमा... भक्त्याचारोपदेष्टा... भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत्... तत्कथाक्षिप्तचित्तः तद्विस्मृतान्यः” नामन्तें सिद्ध होत हे जो आप पुष्टिभक्तिमार्गाचार्य हैं. तासों जो जीव आपके उपदेशानुसार श्रीकृष्णभक्ति नाहिं करत हैं तिनको दैवी न जाननो. सो काहेते जो सूर्योदयको प्रकाश होतही कमलको फूल तो खिलि जात हे परि रात्रीके अन्धकारमें खिलिवेवारे फूल मुरझावन् लागत

हैं. तेसैं महाप्रभून्के उपदेशतैं दैवीजीवन्के हृदयकमल तो श्रीकृष्णभक्तिके रूपमें खिलि जात हैं परि आसुरीन्के अन्धकारी फूल मुरझावन् लागत हैं. सो काहेतैं जो आप जा जीवको अङ्गीकार करत हैं वाकों तो आपको सान्निध्य मिलत हे. अरु जाकों आपको सांचो सान्निध्य मिलत हे तामें अविलम्ब श्रीकृष्णप्रेमहु प्रकट ह्वे जात हे. सो वोहु जीव गोपीपति श्रीकृष्णकों वल्लभसम लागत हे. याही प्रयोजनतैं तो आपने अपनी वाणी अरु वंशजहु प्रकट किये जो पुष्टिजीव पुष्टिप्रभुके स्वरूपानन्दके अनुभवमें सेवा-कथाकी प्रणालीसों आक्षिप्तचित्त होयके अन्य सब कलुकों विस्मृत करि देवें. तासों जो जीव आपके उपदेशानुसार पुष्टिभक्तिमार्गपि चलत नाहिं ताकों श्रीमहाप्रभुहु बिसारी देत हैं, यह दृढ़ करि जाननों. यामें नादसृष्टि अथवा बिन्दुसृष्टि को कछु भेदभाव नाहिं हे।।

॥ एसे गोस्वामी श्रीदीक्षितात्मज श्याम मनोहर द्वारा विरचित
सौन्दर्यपद्यकी व्याख्या सम्पूर्ण भई ॥

॥ श्रीकृष्णो विजयते ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

श्रीमद्गोपीनाथप्रभुचरणानां जन्मकुण्डली

चिन्तासन्तानहन्तारो यत्पादाम्बुजरेणवः।

स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर् मुहुः॥

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत्।

तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम्॥

स्वस्ति श्रीनृपविक्रमार्कसमयातीत संवत् १५६७ दक्षिणायने शरदृतौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमेमासे भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे तिथौ १२ चन्द्रे पुष्यनक्षत्रे पद्मयोगे कौलवर्णे एवं पञ्चाङ्गशुद्धौ अत्र दिने शुभसमये सर्वग्रहानुकूल्ये श्रीमदाचार्यमहाप्रभूणां गेहे श्रीमद्गोपीनाथानां प्राकट्यम् अभूत्. तद्यथा विश्वोद्धारकृते स्फुटो अभवद् इह श्रीगोपीनाथाभिधः. शुभं भवतु. वंशो विस्तरतां यातु.

અમૃતવચનાવલી

(૧)જો કટોરી (ગિરવિ) ધરિકે સામગ્રી આઈ સો તો ભોગ શ્રીઠાકુરજી આપ હી કે દ્રવ્યકો આરોગે સો આપ હી કો ભયો. જો શ્રીઠાકુરજીકો દ્રવ્ય ખાયગો સો મેરો નાહીં અરુ મેરો સેવક ભગવદીય હોયગો સો દેવદ્રવ્ય કબહૂં ન ખાયગો. જો ખાયગો સો મહાપતિત હોયગો. તાતે વા પ્રસાદમંતે ભોજન કરિવેકો અપનો અધિકાર ન હતો; યાકેલિએ ગોઅનકો ખવાયો અરુ શ્રીયમુનાજીમં પધરાયો(યહ સુનિકે સબ વૈષ્ણવ યુપ હોય રહે).

(મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય: ધરુવાર્તા-૩).

(૨)ધન વિ.ની કામનાઓને પૂર્ણ કરવામાટે જે શાસ્ત્રવિહિત શ્રવણ-કીર્તન-અર્ચન વિ. કરવામાં આવતાં હોય તો તેવા અનુષ્ઠાનને કર્મમાર્ગીય જાણવું. પોતાની આજીવિકા ચલાવવામાટે જો શ્રવણ-કીર્તન-અર્ચન વિગેરે કરવામાં આવતાં હોય તો તેમને તો કૃષિની માફક ‘લૌકિક કર્મ’જ કહેવા. જાજરુ જઈને મલપ્રકાલનાથ ગંગાજલ વાપરવા જેવું તે નિષિદ્ધ આચરણ છે; અને આવા દુષ્કૃત્યને કારણે પાપજ લાગતું હોય છે.

(શ્રીવિલનાથ પ્રભુચરણ: ભક્તિહંસ).

(૩)અપને સેવ્ય સ્વરૂપકી સેવા આપુહી કરની. ઓર ઉત્સવાદિ સમય અનુસાર, અપને વિત્ત અનુસાર, વસ્ત્ર-આભૂષણ ભાંતિ-ભાંતિકે મનોરથ કરિ સામગ્રી કરની.

(શ્રીગોકુલનાથજી-ચતુર્થેશ: ૨૪ વચનામૃત).

(૪)જબ સંતદાસકો સગરો દ્રવ્ય ગયો તબ શ્રીઠાકુરજીકી સેવામં મંડાન શ્રીઠાકુરજીકે દ્રવ્યસોં રાખે ઓર શ્રીઠાકુરજીકે દ્રવ્યમંતે ચોબીસ ટકા પૂંજ કરિ કોડી બેચતે. સો શ્રીઠાકુરજીકી પૂંજમંતે તો કાસિદ્ધકો દિયો ન જાઈ સો કમાઈકો ટકા દિયે. તબ ઈનકી મજૂરીકો રાજભોગ ન ભયો સો મહાપ્રસાદ હૂ ન લિયો. ટકાકે ચૂનકો ન્યારો ભોગ ધરતે સો રાજભોગ જાનતે=મહાપ્રસાદ લેતે; ઓર નિત્યકો નેગ બહોત શ્રીઠાકુરજીકે દ્રવ્યસોં હોતો. તાતે આપુની રાજભોગકી સેવા સિદ્ધ ન ભઈ (જાને).

કાસિદ્ધકો દિયે સો નારાયણદાસકોં લિખે જો તુમહારી પ્રભુતાતેં એક દિન રાજભોગકો નાગા પર્યો જો મેરી સત્તાકો ભોગ ન ધર્યો! યા પ્રકાર સન્તદાસ વિવેકઘૈર્યાશ્રયકો રૂપ દિખાયે. વિવેક યહ જો=શ્રીગુસાંઈજીકો હૂંડી પઠાઈદ્વદ્વ આપુની સેવા ન ભઈ, રાજભોગકો નાગા, માને. ઘૈર્ય યહ જો=શ્રીઠાકુરજીકે દ્રવ્યકો ખાનપાન ન કિયે. આશ્રય યહ જો=મનમં આનંદ પાયેદ્વદ્વદ્વ:ખકલેશ ન પાયે.

(શ્રીહરિરાયજી-દ્વિતીયેશ: ભાવપ્રકાશ.૮૪ વૈષ્ણવવાર્તા-૭૬).

(૫)પારિશ્રમિક (ન્યોછાવર-ભેટ-પગાર-મજૂરી) તરીકે વિત્ત આપીને બીજા કોઈ પાસેથી સેવા કરાવવામાં આવતી હોય તો તેથી ચિત્તમાં અહંકાર વધે પણ ચિત્ત કદિ ભગવાનમાં ચોટે નહીં. જો ભગવત્સેવા કરવામાટે બીજા પાસેથી પારિશ્રમિક ધન લેવામાં આવે તો ગોર-મહારાજને જેમ યજ્ઞયાગનું ફળ ન મળે પણ યજ્ઞમાનનેજ મળે તેવી રીતે સેવાકર્તાની પણ ભગવત્સેવા નિષ્ફલ જાય. દક્ષિણા આપીને યજ્ઞમાન, ગોર-મહારાજદ્વારા, જેમ યજ્ઞયાગ કરાવે તેમ ભગવત્સેવા (હાલમાં જેમ વૈષ્ણવો ભેટ-સામગ્રી-મનોરથો નોંધાવીને ગોસ્વામિ-મહારાજોદ્વારા કરાવે છે તેમ: અનુવાદક) કરાવી લેવામાં શો વાંધો? કર્મમાર્ગમાં તેવું કરવાનું શાસ્ત્રમાં કહ્યું હોવાથી તેમ કરી શકાય છે. ભક્તિમાર્ગમાં, પરંતુ, તેવી વિધિ ઉપદેશાયેલી ન હોવાથી, આવી રીતે ધન આપીને ભગવત્સેવા કરાવવી નહીં. ભક્તિમાર્ગમાં તો ભગવદ્દુક્ત પ્રકારે (પોતાના તન-મન-ધનથી પોતાના ઘરે પોતાના પરિવારજનોના સહયોગથી) જ ભગવત્સેવા કરવી જોઈએ.

(સુરતસ્થ ૩/૨ ગૃહાધિપતિ શ્રીપુરુષોત્તમજી: સિદ્ધાં. મુક્તા. વિવૃ. પ્રકા. ૨)

(૬)“ અત્ર ગૃહસ્થાન-વિધાનેન, સ્વગૃહાધિષ્ઠિત-સ્વરૂપ-ભજન-પરિત્યાગેન અન્યત્ર તત્કરણે ભક્તિ: ન ભવતિ, ઈતિ સૂચિતં ભવતિ: અહીંયાં સેવોપયોગી સ્થાન તરીકે ધરનું વિધાન કરવામાં આવ્યું છે તેથી, જો પોતાના ઘરમાં બિરાજતા પ્રભુનું ભજન છોડીને બીજે કશે ભજન (ભેટ-સામગ્રી-મનોરથ-ઝાંખીરૂપે) કરવામાં આવે તો ભક્તિ થઈ ન કહેવાય”.

(શ્રીવલ્લભાત્મજ-શ્રીબાલકૃષ્ણજી: ભક્તિવર્ધિ. વ્યા. ૨).

(૭)જે શ્રીવલ્લભકૃણ છે તે પોતાના સેવ્યસ્વરૂપ ઉપર કેવો સ્નેહ રાખે છે કે એક બાજુ દ્રવ્યનો ઢગલો કરો અને એક બાજુ શ્રીઠાકોરજીને પધરાવો તો શ્રીવલ્લભકૃણ એ દ્રવ્ય સામું જોશે પણ નહિ; અને શ્રીઠાકોરજીને અતિસ્નેહ કરી પધરાવી લેશે. પણ જે આ કળિનો જીવ છે તેને તો દ્રવ્ય ઘણું પ્રિય છે. માટે તે તો શ્રીઠાકોરજી સામું જોશે નહિ. અને કેવળ વૈભવ સામું જોશે અને તરત મોહ પામશે...

(શ્રીમદ્વૃજી મહારાજનાં ૩૨ વચનામૃતો: ૫).

(૮)લૌકિક કામનાઓને પૂર્ણ કરવાની ઇચ્છાથી જે ભગવદ્ભજનમેં પ્રવૃત્ત થાય છે તે દરેક પ્રકારે કલેશ પામે છે. તેથી, કંઈક ભેટ-સામગ્રી મળી રહે તેવી કામનાથી જે સેવા વગેરે કરે તે પાખંડી અને દેવલક કહેવાય છે.

(શ્રીનૃસિંહલાલજી મહારાજ : સિદ્ધા.મુક્તા.ટી.૨લો.૧૬-૧૭).

(૯)શ્રીઉદ્દયપુર દરબારને આશીર્વાદ. આથી જણાવવામાં આવે છે કે મેં સ્થાવર-જંગમ સંપત્તિના આર્થિક તથા માલિકીય વહિવટ અંગે, મને સલાહ આપવામાટે, યોગ્ય વ્યક્તિઓની એક સમિતિની નીમણૂક કરી છે. સેવા વિગેરે બાબતમાં પુરાતન તેમજ પ્રવર્તમાન પ્રણાલીના અનુસાર કાર્ય કરવામાં આવશે. તથા જો પુરાતન પરંપરાનો બાધ ન થતો હોય અને સમિતિ જો કોઈ સુધારાની ઇચ્છા રાખતી હોય તો તે સુધારાઓ સ્વીકારવામાં આવશે. તથા શ્રીઠાકોરજીનું દ્રવ્ય અમારા વ્યક્તિગત વપરાશમાં નહીં આવે, જેવી કે પરંપરા આજે પણ છે; અને તેને જાળવવામાં આવશે. તે છતાં પણ મારા વડવાઓના સમયથી ચાલ્યા આવતાં મારા માલિકીના હક્કો તેજ પ્રમાણે કાયમ રહેશે. આ મુજબજ જમા-ઉધારની નોંધો પણ તે-તે ખાતામાં ચાલુ રહેશે, જે મુજબ ચાલુ ખાતામાં હાલ નોંધાઈ રહ્યું છે.

(નિ.લી.ગોસ્વામિતિલકાયિત શ્રીગોવર્ધનલાલજી મહારાજ : ડેકલેરેશન મિતિ દ્વંદ્વભાદ્ર-શુકલા પંચમી સં.૧૯૮૯ = તા.૫-૯-૧૯૩૨).

(૧૦)મહારાજને જે આવક વૈષ્ણવો વિગેરેમાંથી આવે તેમાથી ઘર-ખરચ તરીકે ઠાકોરજીનો ખરચ મહારાજ ચલાવે છે. ઠાકોરજીનેમાટે સ્થાવર કે જંગમ અમુક મિલ્કત જુદી કાઢી તેમાંથી ખરચ ચલાવતા નથી. ઠાકોરજીના વૈભવનો, ભોગનો, આભૂષણ-વસ્ત્ર વિગેરેનો ખરચો મહારાજ કરે છે. પોતાની આવકઉપર એ સરવે ખરચ કરે છે...

ઠાકોરજીની સન્મુખ ભેટ ધરી શકાતી નથી...ઠાકોરજીની ભેટ દેવમંદિરમાંજ મોકલવી પડે. મહારાજથી તે ભેટનો ઉપયોગ થઈ શકે નહિ.

(નિ.લી. અમરેલીવાળા શ્રીવાગીશલાલજીના આમ-મુખત્યાર : ગાયકવાડી વડોદરા રાજ્યની કોર્ટમાં જુબાની).

(૧૧)જેવી રીતે અમારા પૂર્વપુરુષો પોતે આપણા ધર્મનું સત્ય સ્વરૂપ તથા શુદ્ધાદ્વૈતસિદ્ધાંત સંપૂર્ણરીતે સમજીને વૈષ્ણવધર્મનો યથાર્થ ઉપદેશ લોકોને કરતાં હતા; અને વચલા કાળમાં, જે સંપત્તિ વિગેરે કારણોથી અમે ઘણે દરજજે છોડી દીધો છે, તેથી ઘણા ખરાં લોકોને સાધારણ સેવા અને કોરી વિક્તજ ભક્તિનુંજ રૂઢિ અનુસાર જ્ઞાન રહ્યું છે.

(નિ.લી.શ્રીદેવકીનન્દનાચાર્યજી-પંચમેશ : 'આશ્રય'એપ્રિલ૮૭).

(૧૨)આપણો પ્રમુખ સિદ્ધાન્ત છે 'અસમર્પિતનો ત્યાગ'. ઉત્તમ ઉપાય તો તે જ છે કે ઘરમાં જે પણ રસોઈ બને તે પ્રભુને ભોગ ધરીને પછી જ મહાપ્રસાદ લેવો. ... જ્યાં સુધી અસમર્પિતનો ત્યાગ નહીં થાય ત્યાં સુધી બુદ્ધિ ઉત્તમ નહીં બને. સાનુભાવતા ક્યારે સિદ્ધ થઈ શકે ? જ્યારે આપણી બુદ્ધિ નિર્મળ બને. ...આજે આપણે (ઘરમાં બિરાજતા સેવ્ય) હીરાને પારખી નથી શકતા. સાચા હીરાને ઝવેરી જ પારખી શકે. સ્થિતિ કેવી છે કે આપણે ખોટા હીરાને સાચો માનીને તેની પાછળ (હવેલી-મન્દિરોમાં ?) ભાગી રહ્યા છીએ. શ્રીમહાપ્રભુજીએ તો નિઠિરૂપી સાચો હીરો જ આપણને આપ્યો છે. ભગવાન્ ગીતામાં કહે છે કે "દિવ્યં દદામિ તે ચક્ષુઃ પશ્ય મે યોગમીશ્વરમ્". ભગવાનને ઓળખવામાટે તો દિવ્યતા પ્રાપ્ત થવી જોઈએ. દિવ્યતા જ આત્મબળ છે. ... તેથી મારો તો આપ લોકોથી સાગ્રહ અનુરોધ છે કે આત્મબળને પ્રાપ્ત કરવામાટે પોતાનો કંઈક દૈનિક નિયમ બનાવો. પોડશાગ્રન્થના પાઠનો નિયમ લો...

(નિ.લી.ગો. શ્રીગિરિધરલાલજી મહારાજ, ઇન્દૌર-નાથદ્વારા, દ્વિતીયગૃધીશ : શ્રીમદ્વલ્લભ અને શ્રીહરિરાયજી જીવનદર્શન, ભાગ-૨, વચનામૃત ૭મું, પૃષ્ઠ ૧૨૪).

(૧૩)વકીલ : જો પુષ્ટિમાર્ગીય, કોઈપણ, મંદિરમાં વૈષ્ણવો શ્રીઠાકુરુની સેવા તેમજ નેગ-ભોગમાટે અને શ્રીઠાકુરુની સેવાના નભાવમાટે ભેટ વિગેરે આપી વિક્તજસેવા કરતા હોય તો અને તે મંદિરમાં તનુજસેવા કરતા હોય તો તે મંદિર પુષ્ટિમાર્ગીય નથી એમ આપનું કહેવું છે ?

પૂ.પા.મહારાજશ્રી : પુષ્ટિમાર્ગીય વૈષ્ણવોની તનુજ કે વિક્તજ સેવા સ્વતંત્ર કરવાની પ્રક્રિયા નથી અને તેવી સેવા કરે તો તે સાંપ્રદાયિક મંદિર નકહેવાય.

(નિ.લી.ગોસ્વામી શ્રીવ્રજરત્નલાલજી મહારાજ સુરતસ્થ ૩/૨ ગૃહાધીશ : જુબાની, નડિયાદના કેસમાં).

(૧૪)...તેવીજ રીતે આપણે ત્યાં સન્મુખભેટ થાય છે તે પણ દેવદ્રવ્ય છે; અને તે સામગ્રીના કામમાં નથી આવતી. શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીચન્દ્રમાજી ના ઘરમાં હજી આ નિયમનું પાલન થાય છે. ત્યાં જે સન્મુખભેટ થાય તે કીર્તનિયો લઈ જાય છે. એ કીર્તનિયો મહાવનિયો હોય છે. તે વલ્લભકુલનો, યમુનાજીનો ગોર હોય છે. બીજો તેનું અનુકરણ કરે તે ખોટું...અમે શ્રીનાથજી અગાડી જે સન્મુખભેટ ધરીએ છીએ તે શ્રીમહાપ્રભુજીની પાદુકાજીને ધરીએ છીએ છતાં તે અલંકારાદિકમાં વપરાય છે, સામગ્રીમાં નહિ. સન્મુખભેટ ઘરવામાં ઘણો અનાચાર થાય છે...શ્રીઠાકોરજી-નિમિત્તે કાંઈ મંગાય નહીં કે કાંઈ અપાય નહીં. એ રીતે આવેલ દ્રવ્ય દેવદ્રવ્ય બને...તે લેનારની બુદ્ધિ બગડ્યા વગર ન રહે.

(નિ.લી.શ્રીરણછોડલાલજી, રાજનગરના વચનામૃત=૪૮૪-૮૭).

(૧૪/૬)વૈષ્ણવોની પાસે જે કાંઈ પરમ પદાર્થ છે, તેનું અસ્તિત્વ આજનાજ શુભ દિનને આભારી છે. કાળની ભીષણતા અને પરિસ્થિતિની વિષમતાના અત્યંત વિકટ યુગમાં શ્રીમત્પ્રભુચરણના દિવ્ય સિદ્ધાંતોઉપર અટલ રહેવામાંજ જીવમાત્રનું ઐહિક અને પારલૌકિક કલ્યાણ રહેલું છે. અન્યાશ્રયનો ત્યાગ એ ભાવનાઉપર જગતના જીવો દબ રહે તો, જે વૈષ્ણવ હવેલીઓના વૈભવોને કારણે વૈષ્ણવો ઘરસેવા ભૂલી ગયા હતા, સંજોગવશાત્ તે હવેલીઓમાં શ્રીના દર્શન આજે બંધ થતાં વૈષ્ણવોના ઘર શ્રીઠાકુરુની સેવાથી કિલ્લોલતા થશે. એ લાભ સંપ્રદાય અને સંપ્રદાયીઓ માટે નાનોસૂનો નથી. ઈશ્વરેચ્છા અકળ છે. મને શ્રદ્ધા છે કે આ આકરી કસોટીમાંથી આપણું સર્વનું શ્રેયજ સધનાડું છે.

(૧૪/ખ)મેરે અનુયાયીઓનો દો પ્રકારસે દીક્ષા દેતા હું. પ્રથમ કંઠી બાંધના તથા દૂસરી બ્રહ્મસમ્બન્ધદીક્ષા દેના. કંઠી બાંધના સાધારણ વૈષ્ણવોનો હી દી જાતી છે. તથા બ્રહ્મસમ્બન્ધ વિશેષરૂપસે ઉન અનુયાયીઓનો જો સેવામેં વિશેષરૂપસે બઢના ચાહતે હૈં. પહેલી દીક્ષાકો 'શરણ-દીક્ષા' કહતે હૈં તથા દૂસરી દીક્ષાકો 'આત્મનિવેદન' કહતે હૈં. શરણ દીક્ષામેં વૈષ્ણવ સિદ્ધિ નામસ્મરણ કરનેકા હી અધિકારી છે. તો સેવાવાલે વૈષ્ણવકો બ્રહ્મસમ્બન્ધદીક્ષા લેનેકે બાદ હી અધિકાર હોતા છે. બ્રહ્મસમ્બન્ધવાલા વૈષ્ણવ અપને ઘરમેં હી સેવાકા અધિકારી હોતાહે... હમ સ્વરૂપકી સેવા નન્દાલયકી ભાવનાસે કરતે હૈં. ઈસલિયે હમ સાતોકે સાત પુત્રોકે ઘર 'ઘર' હી કહલાતે હૈં ઔર હમારા ઘર 'તીસરા-ઘર' કહલાતા હૈં ઔર હમારે ઘરકી સૃષ્ટિ 'તીસરે ઘરકી સૃષ્ટિ' કહલાતીહે.

(૧૪/ગ) શ્રીઆચાર્યચરણના સિદ્ધાન્તોમાં ભગવત્ સમ્બન્ધ અને ભગવત્ સેવા ને જ પ્રધાનતા આપવામાં આવી હતી. બાદમાં પરિલક્ષિત થાય છે કે આમાં પણ કંઈક અંતર આવી ગયું. ... શ્રીઆચાર્યચરણના ને શ્રીપ્રભુચરણના સેવકો, આપણે જોઈએ છીએ કે સર્વ પ્રકારનાં છે. એવું નથી કે અમુક વિશિષ્ટ વ્યક્તિ જ ભગવત્સેવાને યોગ્ય હોઈ શકે છે અને અમુક પરિસ્થિતિમાં જ ભગવત્સેવા થઈ શકે છે. આવો કોઈ જ ઉલ્લેખ નથી મળતો. અનેક પ્રકારના જીવો ભગવત્સેવા કરતા હતા. જેમાં સ્મશાનવાસી, વેશ્યા વગેરેથી લઈને સારા વિદ્વાન્ બ્રાહ્મણો પણ હતા. આજના સમયમાં, મને એવું પ્રતીત થાય છે કે આપણે તે ચરિત્રને ભૂલી અને પાછળથી મુખ્ય બનેલા કેવળ ભાવાત્મરૂપને લઈ બેઠા છીએ કે જે આજે પણ વૈષ્ણવોમાં પ્રચલિત છે. ... હું માનું છું કે ચરિત્રોનો વિચાર કરવામાં સિદ્ધાન્તોની આવશ્યકતા રહે છે.

(નિ.લી.ગો.શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ તૃતીયેશ : ૧૫/ક : તા.૨૪-૧૨-૪૮ ના દિને મુંબઈના વૈષ્ણવોની જાહેર સભામાં શ્રીમત્પ્રભુચરણના પ્રાકટ્યોત્સવપ્રસંગે અધ્યક્ષસ્થાનેથી કરેલ વચનામૃત 'વૈશ્વાનર' અંક-૩૧ સન્-૪૮ :: ૧૫/ખ : બ્યાન મૂર્તિબા કાર્યા. સહા. કમિ. દેવસ્થાનવિભાગ ખંડ ઉદયપુર એવં કોટા બજારિયે કમિશન મુ.કાંકરોલી. ફાઈલ સંખ્યા.૧-૪-૬૪. શ્રીદ્વારકાધીશમંદિર દિનાંક ૭/૧૧/૬૫ :: ૧૫/ગ : શ્રીમદ્વલ્લભ અને શ્રીહરિરાયજી જીવનદર્શન, ભાગ-૨, વચનામૃત ૨૦ મું, પૃષ્ઠ ૧૪૬,૧૪૯).

(૧૫)આજ મુઝે અપને હૃદયકે ઉદ્ધાર કહને દો, મેરા હૃદય જલ રહા હૈ, મંદિરોમેં દ્રવ્યસંગ્રહકી પ્રવૃત્તિ માત્ર રહ ગઈ હે ઔર વહી અનર્થોકી જડ હૈ. ઐસે મંદિરોકે

અસ્તિત્વસે કોઈ લાભ નહીં. હમારા સંપ્રદાય સામુહિક નહીં વૈયક્તિક છે. સાર્વકાલિક તથા સાર્વદેશિક અવશ્ય છે પરંતુ સાર્વજનિક નહીં. “ કરત કૃપા નિજ દૈવી જીવનપર ” ઈસ ઉક્તિમાં ‘નિજ’ શબ્દકા પ્રયોગ ક્રિયા ગયા છે. દૈવી જીવ કહીં બી હો સકતે હૈં પરંતુ સાર્વજનિક રૂપસે નહીં. આજ હમ ‘પુષ્ટિ’કા નામ લેનેકે બી અધિકારી નહીં હૈં ! હમારે મંદિર કહાં હૈં ! આજકા હમારા જીવન ચાર્વાક-જીવન હો રહા છે. ક્યા હમ, આજ જિસ પ્રકારકા સંપ્રદાય છે, ઉસે જિવાના ચાહતે હૈં ? યદિ સચ્ચે સંપ્રદાયકો ચાહતે હો તો સ્વરૂપસેવા ઘર-ઘરમેં પધરાઓ એવં નામસેવાપર ભાર રખો... ભક્તિકી પ્રાપ્તિ સ્વગૃહોમેં સેવા કરનેસે હી હોગી. આજકે ઈન મંદિરોસે કોઈ લાભ નહીં છે, ક્યોંકિ ઈનમેં દ્રવ્યસંગ્રહકી પ્રધાનતા આગચી છે ઓર જહાં દ્રવ્ય ઈકઠા હોતા છે વહીં અનર્થ હોતે હૈં. આજ સંપ્રદાયકા વિકૃત સ્વરૂપ ઈસીસે છે.

(નિ.લી.ગો.શ્રીકૃષ્ણજીવનજી-મહારાજ, મુંબઈ-મદ્રાસ : વલ્લભવિજ્ઞાન સં.પ-૬ વર્ષ ૧૯૬૫).

(૧૬/ક)હમ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીકી આજ્ઞાકા પાલન કહાં કર રહે હૈં ? હમારે યહાં ગૃહસેવા કહાં રહી છે ? કેવલ મંદિરોકે દર્શનોસે ક્યા લાભ છે ? શ્રીમહાપ્રભુજીકી આજ્ઞા છે “કૃષ્ણસેવા સદા કાર્યા”. યદિ શ્રીમહાપ્રભુજી મંદિરકો મુખ્ય માનતે તો અપની ત્રીન પરિક્રમાઓમેં અનેક મંદિર સ્થાપિત કર દેતે. શ્રીગુસાંઈજીને શ્રીગિરધરજીકો સાતસ્વરૂપકા મનોરથ કરતે સમય ઈસી પ્રકારકી ચેતાવની દી થી. મન્દિરસ્થાપન કરતે સમય ઉનકો ડર થા કિ ઘરમેંસે ઠાકુરજી મન્દિરમેં પધાર જાએંગે. મેરે પિતાજીને કલ (ઉપર ટકિલ ૧૫ મા વચનમાં) જો કહા વહ અક્ષરશઃ સત્ય છે. તુમ અપને ઘરોમેં ઠાકુરજીકો પધરાઓ ઓર સેવા કરો.

(૧૬/ખ)પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રણાલિકામાં ટ્રસ્ટ ખરૂં ઉતરતું નથી. શ્રીઆચાર્યચરણે દરેક બ્રહ્મસંબંધી જીવને આજ્ઞા કરી છે કે “ગૃહે સ્થિત્વા સ્વધર્મતઃ” (ભક્તિવર્ધિની) અર્થાત્...ગૃહમાં રહીને સ્વધર્માચરણ કરવું. ગોસ્વામિબાલકો પણ આચાર્ય હોવાથી વૈષ્ણવ પણ છે. એટલે આચાર્યશ્રીની ઉપરોક્ત આજ્ઞા પાલન કરવાની તેમની પણ ફરજ છે...માટે મારું માનવું તો આજ છે કે આચાર્યચરણનાં સિદ્ધાંતપ્રમાણે વૈષ્ણવો પોતાના ઘરે શ્રીઠાકોરજીની સેવા કરે અને ધર્મગ્રન્થોનું વાંચન કરે, નહિ કે મન્દિરોમાં જઈને...ટ્રસ્ટ એ પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રણાલિકામાં બંધ-બેસતું નથી બલકે આપણી પ્રણાલીનો ભંગ કરે છે.

(દહીસરમાં શ્રીગોવર્ધનનાથ-હવેલીટ્રસ્ટના સંસ્થાપક નિ.લી.ગો.શ્રીવ્રજધીશજી મહારાજ : ૧૭/ક ‘વલ્લભવિજ્ઞાન’ અંક ૫-૬ વર્ષ ૧૯૬૫, ૧૭/ખ : ‘નવપ્રકાશ’ અંક ૮ વર્ષ ૮).

(૧૭/ક)ઓર જબ જનરલ પબ્લિક-ટ્રસ્ટ છે, તબ ઠાકુરજીકો ગોસ્વામી-સંબંધસે પૃથક્ કર, ઠાકુરજીકો સબ સંપત્તિ અર્પણ કર, અર્થાત્ ભેટ કરકે, રિલીજિયસ ઍડમીનિસ્ટ્રેશન ટે રૂપમેં હુએ વહ ટ્રસ્ટ હૈં. એસી અવસ્થામેં ઈન ટ્રસ્ટોસે જો નેગ-ભોગ ચલાયા જાતા છે વહ દેવદ્રવ્યસે ચલાયા જાતા છે. દેવદ્રવ્યકા ઉપભોગ કરનેવાલે અંતમેં દેવલક (નરકમાં પડનાર પાપી)હી હૈં. શ્રીમદાચાર્યચરણને પ્રભુકી સોનેકી કટોરી ગિરવી રખ કર જબ ભોગ અરોગાયા તબ આપને ઉક્ત દ્રવ્યસે સમર્પિત સબકા સબ પ્રસાદ ગાયોંકો દિયા. યહ છે સામ્પ્રદાયિક સિદ્ધાંત. ઈસ પ્રકારકે આદર્શરૂપ સિદ્ધાંતોંકા જિસ પ્રથાસે વિનાશ હો કર આચાર્યોંકો દેવલક બનાયા જાય, ઉસ પ્રથાકો જિતની શીઘ્ર સમ્પ્રદાયસે હટા દી જાય ઉતના હી શ્રેય ઈસમેં ગોસ્વામિ-સમાજ તથા વૈષ્ણવ-સમાજ કા નિહિત છે.

(૧૭/ખ)ભગવત્સેવા સંપ્રદાયકી આત્મરૂપ પ્રવૃત્તિ છે. આચાર સેવાકા અંગ છે સેવાકી અનુકૂલતાકે અનુરૂપ હી આચારકા પાલન ક્રિયા જાના ચાહિયે. આચાર-પાલનકો પ્રમુખતા દે કર ભગવત્સેવાકા ત્યાગ ઉચિત નહીં છે. ભગવત્સેવા જૈસે બી બને કરો...ગુરુઘરોમેં મત ભેજો...યદિ હમ ભગવદ્દ્રવ્યકો પેટમેં ડાલેંગે તો વહ અપરાધ છે. ગ્રન્થોંકે અધ્યયનકે પ્રતિ હમેં સમાજકો આકર્ષિત કરના ચાહિયે.

(નિ.લી.ગો. શ્રીદીક્ષિતજી મહારાજ મુંબઈ-કિશનગઢ : ૧૮/ક : ‘આચાર્યોચ્છેદક ટ્રસ્ટ-પ્રથાસે પુજારીપનકી સ્થાપના ઘોર સિદ્ધાન્તાહાનિ એવં ઘોર સ્વરૂપચ્યુતિ’લેખ પૃષ્ઠ ૭.; ૧૮/ખ : ‘શ્રીવલ્લભવિજ્ઞાન’ અંક ૫-૬ વર્ષ ૧૯૬૫).

(૧૮/ક)જેમ સ્વરૂપસેવા સ્વાર્થબુદ્ધિથી અને લૌકિક કાર્ય સમજીને ન કરવાની શ્રીમહાપ્રભુજીની આજ્ઞા છે, તે પ્રમાણે નામસેવા પણ વૃત્તિ અર્થે ન કરવી એવી આજ્ઞા શ્રીમહાપ્રભુજી નિબન્ધમાં કરે છે...વૃત્તિ અર્થે સેવા કરવાથી પ્રત્યવાય (દોષ)લાગે. જેમ ગંગા-જમુનાજળનો ઉપયોગ ગુદાપ્રક્ષાલનાર્થ ન થાય, તેમ સેવાનો ઉપયોગ પણ વૃત્ત્યર્થ ન કરાય.

(૧૮/ખ)તન અને વિત્ત જો પ્રભુમાં વપરાય તો મન પ્રભુમાં જરૂર લાગે છે. માટેજ શ્રીવલ્લભે ઉપદેશ કર્યો છે કે “તત્સિદ્ધ્યૈ તનુવિત્તજા”. માનસી જે પરા છે

તેને સિદ્ધ કરવા તનુ-વિત્તજ્ઞ સેવા જરૂરી છે. તન અને વિત્ત બન્ને ક્યાંય એક સ્થળે લગાડો તો ચિત્ત તેમાં રાત-દિવસ રહે છે. દલાલનો વ્યવસાય કરનાર વ્યવસાયમાં કેવલ તનથી શ્રમ કરે છે પણ તેમાં વિત્ત પોતાનું જરાય લાગતું નથી. આથી જો બજારભાવ વધે કે ઘટે તો તેનાથી તેને મનથી ચિંતા થતી નથી...અને છોકરાનો પિતા એકલી વિત્તજ્ઞ તરીકે ટ્યુશન ફી આપીને સમજે છે કે છોકરો પાસ થવાનોજ છે. આ ત્રણેને ફલ પ્રાપ્તિ નહીં થાય કારણકે તનુજ્ઞ-વિત્તજ્ઞ બન્ને લાગતા નથી. હવે તનુવિત્તજ્ઞ બન્ને લગાડે તો ચિત્ત પરોવવાના દાખલા જોઈએ: એક દુકાનદાર દુકાન અને માલ ની ખરીદીમાં મૂડી લગાડી વેપાર શરૂ કરી અને સવારથી રાત સુધી હાજરી આપી તન પણ વેપારમાં લગાડે છે તો તેથી રાત-દિવસ દુકાન અને વેપાર ના જ વિચારો આવે છે: કેમ વેપાર સારો થાય, કેમ વધે...માટે પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રભુમાં આસક્તિ સિદ્ધ થવામાટે મનોવૈજ્ઞાનિક પ્રક્રિયા બતાવી છે કે તેણે તનુ-વિત્તની સેવા ભાવપૂર્વક કરવી.

(નિ.લી.ગો.શ્રીગોવિંદરાયજી મહારાજ પોરબંદર : ૧૯/ક : સુધાધારા ૧૧૪ દ્વં ૧૯/ખ : સુધાબિન્દુ ૭૩).

(૧૯)વલ્લભમતમાં યહ સિદ્ધાંતત: ગલત હૈ ઓર ઐસે દેવસ્થાનોકે ચઢાવેકા પ્રસાદ ભી ખાયા નહીં જા સકતા હૈ, ક્યોંકિ વહાં દેવલક્ત્વ હી પ્રધાન હૈ. આજકે યુગકો દેખતે હુએ જહાં ન્યાસ કરના આવશ્યક હૈ વહાં ઉપર્યુક્ત સિદ્ધાંતોંકો ધ્યાનમં રખ કર હી ન્યાસ કરના આવશ્યક હૈ, જિસસે દેવલકવૃત્તિસે બયા જા સકે. યદિ ઐસી વ્યવસ્થા નહીં કી જાતી તો દેવદ્રવ્ય હોતા હૈ, જિસકા સેવન કરનેસે આચાર્ય સ્પષ્ટ કહતે હૈં કિ નર્કપાત હોગા.

(નિ.લી.ગો.શ્રીરણછોડાચાર્યજી પ્રથમેશ: “હમારી ધાર્મિક સ્થિતિકા વર્તમાન સ્વરૂપ એવં ભવિષ્યકી વ્યવસ્થાકે હેતુ પ્રતિવેદન”).

(૨૦)ક્યોંકિ શ્રીનાથજી સ્વયં ઉસકે ભોક્તા હૈં કિન્તુ વૈષ્ણવવૃંદ તથા સેવકગણ ભી ઉસકે મહાપ્રસાદ લેને તકકે અધિકારી નહીં હૈ. યહ આચાર્યચરણકે ઈતિહાસસે પ્રત્યક્ષ પ્રમાણભૂત હૈ. ઉસકે મહાપ્રસાદ લેનેકા કેવલ ગાયકો હી અધિકાર હૈ. અન્યથા ઉસ દેવદ્રવ્યકે ઉપભોગ કરનેસે નિશચય હી અધ:પતન હૈ...સબ પ્રકારકે દાન ચઢાવોં વ વસૂલ વસૂલી કરનેકા ઉલ્લેખ કિયા ગયા હૈ, વહ ભી સંપ્રદાયકે સિદ્ધાંતસે નિતાંત વિરુદ્ધ હૈ. હમારે સંપ્રદાયકી પ્રણાલીકે અનુસાર જો હમારે સંપ્રદાયકે સેવક હૈં, ઉનકા

હી દ્રવ્ય ગુરુ-શિષ્યકે સંબંધસે લેકર સેવામં ઉપયોગ કરાયા જા સકતા હૈ. સંપ્રદાયમં સબ પ્રકારકે દાન-ચઢાવેકા ઉપયોગ સેવામં નહીં કિયા જાતા હૈ. ઔર કદાચિત્ કહીં કિયા જાતા હો તો વહ સંપ્રદાયકે નિયમોંસે વિરુદ્ધ હોનેકે કારણ બંદ કર દેના ચાહિયે.

(પૂ.પા.ગો.શ્રીઘનશ્યામલાલજી-સપ્તમેશ: શ્રીનાથદ્વારા ઠિકાનેકે પ્રબંધકી દિલ્લીયોજનાકી આલોચના તા.૧-૨-૫૬).

(૨૧/ક)પ્રશ્ન: દેવદ્રવ્ય કોને કહેવાય? દેવદ્રવ્ય એટલે દેવનું દ્રવ્ય દેવને ઉદ્દેશીને અર્પણ કરાતું દ્રવ્ય કે કોઈ પદાર્થ ‘દેવદ્રવ્ય’ કહેવાય. તે જ પ્રકારે ગુરુને ઉદ્દેશીને અર્પણ કરાતું દ્રવ્ય ‘ગુરુદ્રવ્ય’ કહેવાય. પ્રભુની પ્રસાદી વસ્તુને ‘મહાપ્રસાદ’ કહેવાય...આ પ્રકારનાં મંદિરોમાં તો સન્મુખમાં ભેટ ધરાતું દ્રવ્ય તેમજ ટ્રસ્ટની ઓફિસમાં આવતું દ્રવ્ય તેને સ્પષ્ટ ‘દેવદ્રવ્ય’ કહી શકાય અને તે દ્રવ્યથી સિદ્ધ થતી સામગ્રીમાં ભગવત્પ્રસાદી થયા પછી મહાપ્રસાદપણું તો આવે છે પરંતુ તેની સાથે તેમાં દેવદ્રવ્યપણું તો રહેજ છે. તેથી વૈષ્ણવોએ એ મહાપ્રસાદને દેવદ્રવ્ય સમજીનેજ વ્યવહાર કરવો જોઈએ. તે મહાપ્રસાદ લેવામાં દેવદ્રવ્યનો બાધ તો રહેલોજ છે.

(૨૧/ખ)મંદિરના સ્થળ ફેરફાર અંગે શ્રી ગો.પૂ.૧૦૮ શ્રીબાલકૃષ્ણલાલજીએ કહ્યું કે પુષ્ટિમાર્ગમાં સાર્વજનિક મંદિરની પરંપરાજ નથી. એમા વ્યક્તિગત સ્વરૂપ, નિજ સ્વરૂપ, ની જ વાત છે. અને તેથી તેનો સેવાપ્રકાર દેવાલયપ્રકારનો નથી. મંદિરની બાંધણી પણ ઘર જેવીજ થાય છે. ક્યાંય ધ્વજ-ધુમ્મટ હોતા નથી. વૈષ્ણવો પણ ઘરમાં સેવા કરે છે, તેને ‘મંદિર’જ કહે છે...

(‘સેવા-દેવદ્રવ્ય-વિમર્શ’ ગ્રંથના સહલેખક નિ.લી.ગો.શ્રીબાલકૃષ્ણલાલજી મહોદય, સૂરત: ૨૨/ક: વૈ.વા.અંક.૩.વર્ષ.માર્ચ ૧૯૮૩ દ્વં ૨૨/ખ: ‘ગુજરાત સમાચાર’ અંક ૨૫-૫-૯૩માંથી સાભાર).

(૨૨)...બ્રહ્મસંબન્ધ લે કર સેવા કરનેસે પ્રત્યેક ઈન્દ્રિયોંકા ભગવાનમં વિનિયોગ હોતા હૈ...મન્દિર-ગુરુધર કેવલ ઉપદેશ ગ્રહણ કરનેકેલિયે હૈં. સેવા હમં અપને ઘરોંમે કરની હૈ.

(પૂ.પા.ગો.શ્રીમથુરેશ્વરજી, સંસ્થાપક-શ્રીગોવર્ધનનાથજી મંદિર, હ્યુસ્ટન ટેક્સાસ યુ.એસ.એ.: વલ્લ.વિજ્ઞા. અંક ૫-૬ વર્ષ ૧૯૬૫).

(૨૩) પ્રશ્ન : આપણા સંપ્રદાયમાં મંદિરને ‘મંદિર’ ન કહેતાં ‘હવેલી’ શામાટે કહેવામાં આવે છે ? ઉત્તર : સામાન્યરીતે ઇતર હિંદુ સંપ્રદાયમાં ‘મંદિર’ શબ્દ દેવાલયના અર્થમાં વપરાય છે પરંતુ આ રીતે દેવાલયના રૂપમાં મંદિર જેવી સંસ્થાનું પુષ્ટિમાર્ગમાં અસ્તિત્વ નથી. કારણ કે પુષ્ટિમાર્ગમાં જે પ્રભુ આપણા માથે પધરાવવામાં આવે છે તે પ્રભુ-સ્વરૂપ અને તેમની સેવા દરેકના વ્યક્તિગતરૂપે તેમની ભાવના અનુસાર પધરાવી આપવામાં આવે છે. પોતાના શ્રીઠાકોરજીની સેવા પુષ્ટિમાર્ગીય જીવનું એકમાત્ર પોતાની ફરજ બની જતું પોતાનુંજ ધર્માચરણ છે. પુષ્ટિમાર્ગમાં સેવા સામુહિક જીવનનો વિષય નહિ પણ વ્યક્તિગત જીવનનો વિષય છે. જેમ લોકમાં પત્ની અથવા માતા નો પતિ અથવા પુત્ર ની સેવાનો કે વાત્સલ્ય આપવાનો તેનો વ્યક્તિગત ધર્મ ફરજ અને અધિકાર હોય છે, તે જ પ્રમાણે જે સેવકનું જે સેવ્ય સ્વરૂપ હોય તે સેવ્યની સેવાનો તેનો વ્યક્તિગત ધર્મ અને અધિકાર છે. સેવા એ જાહેર કાર્ય કે જાહેર પ્રવૃત્તિ નથી પરંતુ સેવા એ પોતાના આંતરિક જીવન સાથે સંબંધ ધરાવતી હોવાથી તે આપણા જીવનની આપણા નિજઘરમાં થતી સ્વધર્મરૂપ પ્રવૃત્તિ છે... માટે ઈતર હવેલીઓની જેમ ‘શ્રીનાથજીનું મંદિર’ શબ્દ રૂઢ થઈ ગયેલો હોવાથી તે વપરાય છે. હકીકતમાં સામુહિક દર્શન કે સેવા જ્યાં થતી હોય તેવા અન્યમાર્ગીય જાહેર દેવસ્થાન જેવું એ મંદિર નથી.

(‘સેવા-દેવદ્રવ્ય-વિમર્શ’ ગ્રંથલેખક અ.સો.વા.ગો.પૂ.પા.શ્રીવલ્લભરાયજી, સુરત : પુષ્ટિ.શીત.છાંય. પાનાં નં.૧૫૭-૧૫૮).

(૨૪) શ્રીમહાપ્રભુએ જુદા-જુદા મંદિરોની પ્રણાલી ઊભી કરી નથી; પણ એમાં જગદ્ગુરુ શ્રીવલ્લભાચાર્યનો એક લાંબો દષ્ટિકોણ હતો : પ્રત્યેક વૈષ્ણવનું ઘર નન્દાલય બનવું જોઈએ ... એક મંદિરની બાજુમાં એક બહેન રહે. એમને ત્યાં ઠાકોરજી બિરાજે. મંદિરની આરતીના ઘંટા એમને સંભળાય. સેવા કરતા બેઠેલી એ બહેન ઠાકોરજીના વસ્ત્રો કાઢી સ્નાન કરાવતી હતી ત્યાં આરતીના ઘંટા પડ્યા. પેલી ઠાકોરજીને પડતા મુકીને મંદિરે દોડી. થોડી વારે ઘેર આવી. હવે વિચાર કરો, આવી રીતે કોઈ સેવા કરે તો એમાં સેવાનો આનંદ આવે ખરો ? અહીં તો પ્રત્યેક વૈષ્ણવનું ઘર નન્દાલય છે.

(શ્રીમદ્ભાગવતતત્ત્વમર્મજ્ઞા પૂ.પા.સુશ્રીઈન્દિરા બેટીજી :વૈ.પ.અંક જૂન ૧૯૯૦).

(૨૫) “અતિ ધન્યવાદાહ હૈ કિ આપને ઇતની મેહનત કરકે સમ્પ્રદાયકે સિદ્ધાન્તનકૂં કોર્ટમેં સમજાયે ” દ્વં “હમારા ઇસમેં પૂરા સહયોગ હોગા, તનમનઘનસે...હમારે સભી ચિ.બાલક ઇસ કાર્યમેં સહયોગ કરનેકો તૈયાર હૈં”.

(જામનગરસ્થ ચિ.હરિરાયજીના સિદ્ધાંતનિષ્ઠ પિતૃચરણ નિ.લી.ગો.શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ : ગો.શ્યા.મ.ને મોકલાવેલ તા.૨૬-૧૦-૮૬ અને ૭-૧૧-૮૬ ના પત્રોમાં).

(૨૬)

ગો.શ્રીહરિરાયજી : જરા ધ્યાનથી સાંભળજો ... “તત્ર અચમ્ અર્થઃ. લાભપૂજ્ઞર્થયત્નસ્ય ઉપધર્મત્વ-દેવલકત્વાદિ” સ્પષ્ટ સાંભળજો, “સમ્પાદકત્વાત્” ...લાભ-પૂજ્ઞર્થ યત્ન કરે છે જે સેવા કરીને, જ્યારે તે લાભ-પૂજ્ઞર્થ પ્રયત્ન કરે છે તો તે ઉપધર્મ થયું; દેવલકત્વ વગેરે જે દોષો છે તે તેની અંદર પ્રવેશે છે.

...

ગો.શ્રીશ્યામમનોહરજી : એટલે ખાસ ધ્યાનમાં રાખજો હોં, કે ભાવપ્રતિષ્ઠા જે સ્વરૂપની થઈ હોય તે સ્વરૂપની પણ લાભ અથવા પૂજા માટે જે સેવા કરવામાં આવે તો સેવાકર્તા દેવલક (પાપી) થઈ રહ્યો છે ...

ગો.શ્રીહરિરાયજી : અને ઉપધર્મત્વ આવી રહ્યું છે ... અને આ નિષિદ્ધ છે.

...

ગો.શ્રીશ્યામમનોહરજી : આ સ્થિતિમાં ગુરુ પોતાની લાભ કે પૂજાને માટે શિષ્યથી કાંઈ પણ ઠાકોરજી માટે માંગતો હોય તે ... શાસ્ત્રનિષિદ્ધ હોવાથી ... દાન હોવાથી દેવદ્રવ્ય હોવાથી ઉપયોગ કરવાયોગ્ય હોતું નથી.

ગો.શ્રીહરિરાયજી : હા, બિલકુલ. ... આ તો બિલકુલ સ્પષ્ટ છે. ... ‘સ્વવૃત્તિવાદ’થી પણ સ્પષ્ટ થાય છે.

પૂ.પા.ગો.શ્રીહરિરાયજી મહારાજ, જામનગર પુષ્ટિસિદ્ધાન્તચર્યાસભા, વિસ્તૃત વિવરણ પૃષ્ઠ ૧૬૪, ૧૯૩

(૨૭) આ કાર્યક્રમ દ્વારા બને એટલો પ્રયાસ આપશ્રીએ મુંઝવણ દૂર કરવાનો કર્યો છે; બીજો કોઈ આમાં આશય મને દેખાતો નથી. અંતમા હું તો એક જ વસ્તુ કહીશ કે સમાજની અંદર; અને આપણા સંપ્રદાયમાં એટલું બધું સિદ્ધાન્તવૈપરીત્ય થઈ ગયું છે કે ગુજરાતના એક ગામમાં હું ગયેલો દ્વં હું તો પ્રવાસ ખુબ કડું છું દ્વં

એ ગામમાં પુષ્ટિમાર્ગના જ આપણા સંપ્રદાયના બે મંદિરો છે અને મંદિરોની દિવાલ પણ એક જ છે. પરંતુ લોકાર્થિત્વ, જેમ આપે આજ્ઞા કરી ગઈ કાલે “લોકાર્થી ચેદ્ ભજેત્ કૃષ્ણાં કિલિષ્ઠો ભવતિ સર્વથા”, એટલું બધું લોકાર્થિત્વ સમાજમાં ઉત્પન્ન થયું છે. પરિણામ એ આવ્યું કે બન્ને મંદિરોની દિવાલો એક જ. મંગલાના દર્શનમાં વૈષ્ણવો; એક મંદિર તો બાલકૃષ્ણલાલનું છે અને બીજું મંદિર ચન્દ્રમાજીનું છે. સવાર પડે એટલે ચન્દ્રમાજીવાળા વૈષ્ણવો બાલકૃષ્ણલાલનો જે મેવો હોય તે ચન્દ્રમાજીમાં લઈ જાય અને બાલકૃષ્ણલાલજીવાળા જે વૈષ્ણવો હોય એ ચન્દ્રમાજીનો જે મેવો અને પ્રસાદ હોય તે બાલકૃષ્ણલાલજીમાં લઈ આવે! આવી જબરદસ્ત હોંસાતોસી વૈષ્ણવસમાજમાં ઉત્પન્ન થઈ; જાણે એકબીજાની સ્પર્ધા કરતા હોય એમ. ઇર્ષા-દ્વેષનું વાતાવરણ જ્યારે સેવાના ક્ષેત્રમાં ઉત્પન્ન થાય એનાથી મોટું લોકાર્થિત્વ ક્યું હોઈ શકે! આ બધા કેટલાક વિચારો અને જે શો-બીઝનેસ સંપ્રદાયમાં થયો એ બધાનું નિવારણ થાય એ માટે આ આખું એક સુંદર ચર્ચાસભાનું આયોજન થયું. અને મારી તો ખાસ વિનંતી છે કે આવા બધા સિદ્ધાન્તવૈપરીત્યનો ભવાડો જો વધારે થતો હોય તો ગુજરાતમાં થાય છે. ભાગવતજીમાં પણ લખ્યું છે “ગુજરે જીર્ણાંતાં ગતાઃ” ભક્તિ જો જીર્ણ થઈ હોય તો ગુજરાતમાં. ગાડરિયો પ્રવાહ વધ્યો હોય તો ગુજરાતમાં. એટલે સિદ્ધાન્તની સત્યનિષ્ઠાને ... અને મહાપ્રભુજીના પુષ્ટિસિદ્ધાન્તોનું સદ્જાગરણ ... એમાં મારાથી બનતો સહકાર હું આપવા તૈયાર છું.

(પૂ. પા. ગો. ચિ. શ્રીદ્રુમિલકુમારજી મહોદય : “પુષ્ટિસિદ્ધાન્ત-ચર્ચાસભા તા. ૧૦-૧૩ જાન્યુવારી ૯૨ પાર્લા, મુંબઈ, વિસ્તૃત વિવરણ પૃ. ૩૧૭-૩૧૮).

(૨૮) પુષ્ટિમાર્ગ ગુપ્ત છે, દેખાડો કરવા માટે તો છે જ નહીં, ભક્ત અને ભગવાન વચ્ચે આંતરિક સમ્બન્ધ દઢ કરવાનો માર્ગ છે... બન્નેના સમ્બન્ધો એવા હોવા જોઈએ કે કોઈ ત્રીજા વ્યક્તિને એની જાણકારી ન થાય. આપણો આપણા ભગવાન સાથે કેવો સમ્બન્ધ છે, તે બીજી કોઈ વ્યક્તિને જણાવવાની જરૂરત શું? નામના મેળવવા માટે? પોતાનું મહાત્મ્ય વધારવા માટે? આ તો બધું બાધક છે.

(પૂ. પા. ગો. ચિ. શ્રીદ્વારકેશલાલજી મહોદય શ્રીવલ્લભાચાર્યપ્રાકટયપીઠ અમરેલી-કાંઠીવલી-ચમ્પારણ-સૂરત : ‘પુષ્ટિનવનીત’ પૃ. ૧૨).

(૨૯/ક) પ્રશ્ન : આજ ચલ રહે જો ડિસ્પ્યુટ હોઈ વામ કિતનેક સિદ્ધાન્ત ચર્ચિત હો રહે હો જૈસે કિ નયે મન્દિર નહીં ખોલને, ટ્રસ્ટ મન્દિર નહીં બનાવે, ઠાકુરજીકે

નામપે દ્રવ્ય નહીં લેનો, ઠાકુરજીકે દર્શન નહીં કરાવે, તથા બિના સમજે-સોચે કોઈકું બ્રહ્મસમ્બન્ધ નહીં દેનો. ઇન સબ વિષયમેં આપકો અભિમત કયા હૈ ?

ઉત્તર : દેખો મન્દિરકી જહાં તક સ્થિતિ હૈ તો યે બાત સત્ય હૈ કે પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રકારસું મન્દિર તો માત્ર એક હી હૈ; ઓર સબ ઘરકી સ્થિતિ હતી. ... આજ મન્દિર જિતને હૈ અથવા જિન સ્થાનનકું અપન મન્દિર સમજે હૈ વો સ્થાન ... વાકુ અપન મર્યાદાપુષ્ટિ મન્દિર કહ સકે હૈ, પુષ્ટિમન્દિર નહીં. પુષ્ટિકો પ્રકારતો માત્ર ગૃહસેવામેં હી હૈ.

(૨૯/ખ) આજથી દોઢસો વર્ષ પૂર્વે, શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયથી ત્યાં સુધી, પુષ્ટિમાર્ગમાં કોઈ ભગવદ્ મન્દિર ખોલવાનો ક્રમ ન હતો. પ્રત્યેક વૈષ્ણવને ઘર-ઘરે સેવા થાય તેનો આગ્રહ રખાતો. વૈષ્ણવો પોતાને ઘરે શ્રીઠાકોરજીના સ્વરૂપને સેવ્ય કરી પધરાવી ગુરુઘરની પ્રણાલિકા મુજબ સેવા કરતા.

(પૂ. પા. ગો. શ્રીવ્રજેશકુમારજી તૃતીયેશ ૩૦/ક : ‘આચાર્યશ્રીવલ્લભ’ ઑગસ્ટ ૧૯૯૪, અંક ૫, પુષ્ટિમાર્ગવર્તમાન, પ્રશ્ન-ઉત્તર ૪, પૃ. ૭. ૩૦/ખ : બ્રજ મોહે બિસરત નાહી, પૃ. ૧૪૦-૪૧)

(૩૦) શ્રીમહાપ્રભુજી આજ્ઞા કરે છે કે દુનિયામાં ભટકતું રહેતું આપણું મન-ચિત્ત શ્રીઠાકોરજી સાથે જોડીને તેમની તનુવિત્તજ્ઞ સેવા કરવી. ... તનુવિત્તની સેવા એટલે આપણે કમાયેલા પોતાના ધનથી, પોતાના ઘરમાં શ્રીઠાકોરજીની પોતાના શરીરથી સેવા કરવી તે.

(પૂ. પા. ગો. ચિ. શ્રીવાગીશકુમારજી ‘વલ્લભીય ચેતના’, ઓક્ટોબર ૧૫, ૨૦૦૩, પૃ. ૪)

(૩૧) ચિત્ત ભગત્પ્રેમમાં પરિપૂર્ણ થઈ જાય છે, પૂર્ણતઃ ભગવાનમાં જોડાઈ જાય છે, તન્મય અને તલ્લીન થઈ જાય છે ત્યારે પરાસેવા થાય છે. આને માનસી સેવા કહેવાય છે. આની સાથે મનુષ્યે શરીરથી પણ સેવા કરવી જોઈએ. ... તનુજ્ઞ સેવાથી શરીરની શુદ્ધિ થાય છે. અહંતા-હુપણા નો નાશ થાય છે. ધનથી કરાતી સેવા ‘વિત્તજ્ઞ’ સેવા છે. તેનાથી મમતા-મારાપણાનો નાશ થાય છે. અહંતા અને મમતા એકબીજા સાથે જોડાયેલા રહે છે આથી તનુજ્ઞ અને વિત્તજ્ઞ સેવા સાથે

થવી જોઈએ. આમાં પ્રધાનતા તનુજા સેવાની છે. કેવળ ધન આપી દેવાથી સેવા થતી નથી. એનાથી રાજસી વૃત્તિ આવે છે.

(પૂ.પા.ગો.ચિ.શ્રીદ્વારકેશલાલજી મહોદય, ષષ્ટેશ, વડોદરા: 'શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતા પુષ્ટિદર્શન' પૃ.૧૨૫)

(૩૨)આજે ફરીથી એ સમય આવ્યો છે. તેનાથી પણ મુશ્કેલ સમય આવ્યો છે. તે સમયે તો અન્યમાર્ગીય લોકો મતોને પ્રસ્તુત કરીને ભ્રમ ઉત્પન્ન કરતા હતા. પણ આજે તો આપણા સમ્પ્રદાયના જ 'સુજાજનો' શ્રીમહાપ્રભુજીની વાણીનો વિપરીત અર્થ કરી રહ્યા છે. લોકોને પથભ્રષ્ટ કરી રહ્યા છે, દૈવીજીવોની સાથે ઘોર અન્યાય કરી રહ્યા છે. તેથી જ હાલમાં મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભીશના વંશજ પુષ્ટિમાર્ગીય યુવા આચાર્યોએ એક 'સંવાદસ્થાપકમણ્ડળ'ની સ્થાપના કરીને મુખ્યમાં ... ચાર દિવસ સુધી એક પુષ્ટિસિદ્ધાન્ત ચર્ચાસભાનું આયોજન કર્યું હતું. ... સભામાં ૩૫ મહાનુભાવ આચાર્યો ઉપસ્થિત હતા. ૨૮ ગોસ્વામી આચાર્ય મહાનુભાવોએ ગો.શ્રીશ્યામ મનોહરજી મહારાજશ્રી(કિશનગઢ-પાલી)ના 'સિદ્ધાન્તવચનાવલી'ના ભાવાનુવાદને સહમતિ આપી હતી. કેટલાક આચાર્ય મહાનુભાવોએ અસહમતિ આપી હતી અને કેટલાક મૌન રહ્યા હતા. અસહમતિ પ્રકટ કરવાવાળા પૂ.પા.ગો.શ્રીહરિરાયજી વ્રજભૂષણલાલજી મહારાજશ્રી, જામનગરવાળાએ પૂજ્ય ગોસ્વામી શ્રીશ્યામ મનોહરજી મહારાજશ્રીની સાથે તેમણે કરેલ ભાવાનુવાદના મુદ્દાઓ ઉપર ચર્ચા પ્રારમ્ભ કરી હતી. ... સમયના અભાવે ચર્ચા નિર્ણયપર પહોંચી ન શકી. પરન્તુ વર્તમાનમાં કેટલાક ચર્ચાસ્પદ, સંશયાસ્પદ મુદ્દાઓની સ્પષ્ટતા આ ચર્ચામાં પ્રાપ્ત થઈ તે ખરેખર એક મોટી સિદ્ધિ છે. એટલું જ નહીં પરન્તુ નીચે બતાવેલ મુદ્દાઓના વિશ્લેષણમાં પૂજ્ય શ્રીશ્યામ મનોહરજીની સાથે સહમત થઈને પૂજ્ય શ્રીહરિરાયજીએ આપણા સમ્પ્રદાયની ઉત્તમ સેવા કરી છે :

૧. પુષ્ટિમાર્ગીય સેવ્યસ્વરૂપ પૂર્ણપુરુષોત્તમ સ્વરૂપથી જ બિરાજે છે, તે સ્વરૂપ પછી ગુરુના સેવ્ય હોય કે શિષ્ય(વૈષ્ણવ)ના સેવ્ય હોય. બન્ને(સ્વરૂપો)માંથી કોઈમાં પણ પુરુષોત્તમપણું ન્યૂનાધિક હોતું નથી.
૨. પુષ્ટિમાર્ગીય સિદ્ધાન્ત અનુસાર કૃષ્ણસેવા કરવાનું સ્થાન ઘર જ હોઈ શકે છે, સાર્વજનિક(સ્થળ) નહીં.
૩. પુષ્ટિમાર્ગીય ભગવત્સેવાને ધનની પ્રાપ્તિનું સાધન બનાવવું ન જોઈએ.

૪. દેવલક વ્યક્તિ (= ભગવત્સેવ્યસ્વરૂપને ધનની પ્રાપ્તિનું સાધન અથવા આજીવિકાનું સાધન બનાવનાર) ની સેવા નિષિદ્ધ કક્ષાની હોવાથી (તે) સેવાનો અધિકારી નથી.

૫. શ્રીઠાકોરજીને માટે કોઈ પણ પ્રકારની દાન-ભેટ માંગવી અથવા સ્વીકારવી એ શાસ્ત્રદ્વારા નિષિદ્ધ છે. એટલું જ નહીં પરન્તુ લાભ-પૂજાના હેતુથી પોતાનામાટે દ્રવ્ય અથવા કોઈ વસ્તુને સ્વીકારવી તે શાસ્ત્રની દૃષ્ટિમાં ઋણાનુબન્ધી દોષને ઉત્પન્ન કરનાર હોવાથી બન્ધનકારક છે.

૫. પુષ્ટિમાર્ગના સિદ્ધાન્ત અનુસાર શ્રીઠાકોરજીને નિવેદન કરેલા પદાર્થનું જ સમર્પણ થઈ શકે છે અને સમર્પિત પદાર્થોનો જ ભગવદ્ ઉચ્છિષ્ટરૂપમાં પ્રસાદ લઈ શકાય છે. શ્રીઠાકોરજી માટે દાન અથવા ભેટ ના રૂપમાં આવેલ સામગ્રીને પ્રસાદના રૂપમાં લઈ શકાતી નથી કેમકે શ્રીઠાકોરજી માટે દાન અથવા ભેટ ના રૂપમાં પ્રાપ્ત થયેલ પદાર્થ(દ્રવ્ય)થી આવેલ સામગ્રીને પ્રસાદના રૂપમાં પાછી લેવાથી 'દત્તાપહાર'નું પાપ લાગે છે.

૬. સેવા તો શાસ્ત્રનો વિષય છે. તેથી સેવાના સમ્બન્ધમાં શાસ્ત્રથી દ્વંદ્વશ્રીમહાપ્રભુજીના ગ્રન્થોથી જ બધો નિર્ણય થઈ શકે છે, અન્ય કોઈ પ્રકારે નહીં.

(સંયુક્ત ધોષણપત્ર : અમદાવાદ, મિતિ ફાલ્ગુન સુદી ૭, શ્રીવલ્લભાબ્દ ૫૧૪, દિનાઙ્ક : ૧૧ માર્ચ ૧૯૯૨.

હસ્તાક્ષર :

નિ.લી.ગો.શ્રીવ્રજરાયજી મહારાજ,

પૂ.પા.ગો.શ્રીવ્રજેન્દ્રકુમારજી મહારાજ (અમદાવાદ);

પૂ.પા.ગો.શ્રીદેવકીનન્દનાચાર્યજી, ચતુર્થેશ(ગોકુલ-અમદાવાદ),

પૂ.પા.ગો.શ્રીવ્રજેશકુમારજી મહારાજ(કડી-અમદાવાદ)

પૂ.પા.ગો.શ્રીરાજેશકુમારજી મહારાજ(કડી-અમદાવાદ)

પૂ.પા.ગો.શ્રીવલ્લભલાલજી મહારાજ(કડી-અમદાવાદ);

પૂ.પા.ગો.શ્રીજયદેવલાલજી મહારાજ,

પૂ.પા.ગો.શ્રીમથુરેશજી મહારાજ,

પૂ. પા. ગો. શ્રીકન્હેયાલાલજી મહારાજ,

પૂ. પા. ગો. શ્રીહરિરાયજી (કામા-વીરમગામ-અમદાવાદ).

(૩૩) તનુજા સેવા ઔર વિત્તજા સેવા એક હી વ્યક્તિ કરે તબ કર્હી જાકર વહ માનસીકો સિદ્ધ કરતી હૈ. કેવલ તનુજા કરલી યા કેવલ વિત્તજા કરલી તો અહન્તા-મમતા દૂર નહીં હોગી. ... કેસે ? મેં આપકો એક ઉદાહરણ દેતા હૂં. ... જો ઘરસેવા કરતે હૈં ઉનકેલિયે તો કોઈ પ્રશ્ન નહીં હૈ. લેકિન યદિ કોઈ વિત્તજા સેવા કરેગા તો સમઝ લીજીયે કિ ઉસને મન્દિરમેં ભેટ દી. મનોરથ કિયા. ઉસકી આપ રસીદ લેંગે. ... તબ આપ કહેંગે “મેંને સેવા લિખાથી હૈ”. આપ કહતે હૈં “મેંને સેવા લિખાથી હૈ” તબ અહન્તા કહાં દૂર હુઈ ? અબ આપ મેહતાજીસે ક્યા માંગોગે ? “યે મેરી રસીદ હૈ, મેરા પ્રસાદ લાઓ”. તો દેખીયે, અહન્તા-મમતામેં હમ ઔર બંધ ગયે. તો ઐસી સેવા સંસારકો દૂર નહીં કરેગી, સંસારમેં બાંધેગી. કેવલ યદિ હમ વિત્તજા કરતે હૈં તો હમારે અહંકારકો બઢાતે હૈં. ઔર અહન્તા દૂર ન હોગી, મમતા દૂર ન હોગી તો માનસી કેસે સિદ્ધ હોગી ? ક્યોંકિ સભી બન્ધનકા મૂલ અહન્તા-મમતા હી હૈ.

(પૂ. પા. ગો. શ્રીદ્વારકેશલાલજી, કામવન-સુરત, સિદ્ધાન્તમુક્તાવલી પ્રવચન, ભરૂચ, જન્યુઆરી ૨૦૦૫)

(૩૪) અમે તો રાજના ખાસા ખવાસ મુક્તિ મન ન આવે રે” બ્રહ્મધિપનું સેવન કરનારા અમે મુક્તિ માંગતા નથી. છતાં પુષ્ટિમાર્ગી વૈષ્ણવો ભાગવત સપ્તાહ બેસાડીને પોતાના પિતૃઓને મોક્ષમાર્ગે મોકલે છે ! પિતૃમોક્ષાર્થે ભાગવત સપ્તાહ ! કોઈ એકસો આઠ ! કોઈ એક હજાર આઠ ! ... આપણા પિતૃઓ તો ગોલોકમાં જાય છે એમને પાછા મોક્ષમાં શા માટે મોકલો છો ? ... ભાગવત સપ્તાહ પૂરી કરીને પછી માળા પહેરામણી કરે અને કહે કે ગોલોકધામ... હવે ગોલોક ધામમાં મોકલવા છે ! એટલે પિતૃઓને અહીંથી ત્યાં દોડા-દોડી જ કરાવવી છે ! આપણું કોઈ ધ્યેય જ નક્કી નથી !! આપણે શ્રીમહાપ્રભુજીના ગ્રન્થો ખોલ્યા નથી એનું આ દુષ્પરિણામ છે કે જે આપણા પૂર્વજોને પણ ભોગવવું પડે છે.

(પૂ. પા. ગો. ચિ. શ્રીપુરુષોત્તમલાલજી, જુનાગઢ શ્રીયમુનાષ્ટક પ્રવચન, રાજકોટ, ૨૦૦૬)

(૩૫)...જ્યાં સુધી સિદ્ધાન્તના નિશ્ચિત સ્વરૂપ કે વ્યાખ્યાનો પ્રશ્ન છે, અમે બધા ધર્માચાર્ય, આપણા સમ્પ્રદાયના પ્રવર્તક મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય તથા પરવર્તી અન્ય પણ માન્ય બધા વ્યાખ્યાકારોના સન્દેહરહિત વિધાનોના આધારે આ સ્પષ્ટ શબ્દોમાં ઘોષિત કરીએ છીએ કે આપણા ધાર્મિક સિદ્ધાન્ત તેમજ પરંપરા અનુસાર ભગવત્સેવા - સેવાસ્થળ - સેવોપયોગિસમ્પત્તિ - સેવાકર્તા (ગુરુ કે વૈષ્ણવ) તેમજ ભગવત્સ્વરૂપનું ખાનગી અથવા પારિવારિક હોવું એક અનુલ્લંઘનીય ધાર્મિક અનિવાર્યતા છે. તેથી તેઓમાંથી કોઈને પણ સાર્વજનિક બનાવવું સર્વથા ધર્મવિરુદ્ધ હોવાના કારણે એક ધોર ધાર્મિક અપરાધ છે.

...વાલ્લભ સમ્પ્રદાયના સિદ્ધાન્ત પ્રમાણે પોતાના ધરમાં પોતાના ધનને તથા નિજ પરિવારજનોને ભગવત્ સ્વરૂપની સેવામાં ઉપયોગમાં લેવા એ જ આરાધનાનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ છે.

...આથી પોતાના ધરમાં પોતાના ધનના વિનિયોગ વિના તથા પોતાના પરિવારના માણસોના સહયોગ વગર કરાતી આરાધના, વાલ્લભ સમ્પ્રદાયની આરાધનાની પરિભાષા પ્રમાણે આરાધના છે જ નહિ. આવી સ્થિતિમાં અમારા ધરમાં આવતા લોકો દ્વારા અમારા સેવ્ય ભગવદ્સ્વરૂપના દર્શન કરવા કે ભેટ ધરવી વગેરે આચરણ આરાધનાની અન્તર્ગત માન્ય ક્રિયાકલાપ નથી.

...ભજન(સેવા) જો નિજ ધરમાં નથી કરાતું તો એવા ભગવદ્ભજનને પુષ્ટિમાર્ગીય પરિભાષામાં ભગવદ્ભજન જ નથી કહેવાતું. પુષ્ટિમાર્ગમાં નિજધરમાં રહીને ભગવદ્ભજન કરવાના પ્રકાર સિવાય બીજો કોઈ પ્રકાર છે જ નહિ.

...ભેટ ઘરેલા ધનથી ભોગ ઘરેલી સામગ્રીને પ્રસાદરૂપે ગ્રહણ કરવી અમારે ત્યાં બિલકુલ વર્જિત છે. ...સાર્વજનિક મંદિરમાં દર્શનાર્થી જનસમુદાયના પ્રતિનિધિના રૂપમાં સેવા કરવાની પ્રક્રિયાને ન તો વાલ્લભસમ્પ્રદાયમાં કોઈ અવકાશ છે અને ન એવું આચરણ સિદ્ધાન્તની દૃષ્ટિએ પ્રશંસનીય પણ છે. ભગવત્સેવાનું અનુષ્ઠાન ન તો નોકરી કે ન તો ધંધાના રૂપમાં કરી શકાય છે. ... વાલ્લભસમ્પ્રદાયમાં ગો. મહારાજોને ... ભગવત્સેવાની અવેજીમાં કે પુજારીની હૈસિયતમાં કંઈ પણ ભેટ સ્વીકારવી માત્ર વર્જિત જ નથી બલકે અધર્મ તથા અયોગ્યતા સંપાદક છે.

...શ્રીમહાપ્રભુ બધા પુષ્ટિમાર્ગીઓની સૈદ્ધાન્તિક નિષ્ઠા સ્વધર્માનુસરણનું સામર્થ્ય તથા પારસ્પરિક સૌમનસ્ય પ્રદાન કરે. ... બધા પુષ્ટિમાર્ગીઓના નિજધરોમાં

બિરાજમાન સેવ્યસ્વરૂપ હંમેશા ખાનગી જ રહે; ક્યારેય સાર્વજનિક ન બની જાય
! “બુદ્ધિપ્રેરક કૃષ્ણસ્ય પાદપદ્મં પ્રસીદતુ”.

હસ્તાક્ષર :

- ગો. શરદ્ અનિરુદ્ધજી (માંડવી-હાલોલ)
ગો. કિશોરચન્દ્ર (માંડવી-જુનાગઢ)
ગો. અજયકુમાર શ્યામસુંદરજી (મદ્રાસ)
ગો. મનમોહન (મુંબઈ)
ગો. શ્યામસુંદર મુરલીધરજી (બોરીવલી)
ગો. હરિરાય કૃષ્ણજીવનજી (મુંબઈ)
નિ.લી.ગો.શ્રીકૃષ્ણચન્દ્રજી શ્રીકૃષ્ણજીવનજી (મુંબઈ)
ગો. વલ્લભલાલ શ્રીગોવિંદલાલજી (કડી-અમદાવાદ)
ગો. હરિરાય શ્રીગોવિંદરાયજી (પોરબંદર)
નિ.લી.ગો.શ્રીવ્રજાધીષજી શ્રીકૃષ્ણજીવનજી (દહિસર)
ગો. વ્રજેશકુમાર શ્રીગોવિંદલાલજી (કડી-અમદાવાદ)
નિ.લી.ગો.શ્રીકૃષ્ણકુમાર શ્રીરમણલાલજી (કાંઠીવલી-કામવન)
ગો. રાજેશકુમારજી શ્રીગોવિંદલાલજી (કડી-અમદાવાદ)
ગો. વિજયકુમારજી શ્રીગોવિંદલાલજી (કડી-અમદાવાદ)
ગો. યોગેશ્વર મથુરેશ્વરજી (વડોદરા-સુરત)
ગો. રઘુનાથલાલ શ્રીરમણલાલજી (કામવન-ગોકુલ-પાલી)
ગો. દેવકીનન્દનાચાર્ય (ગોકુલ-અમદાવાદ)
ગો. નવનીતલાલ શ્રીગોવિંદલાલજી (કામવન-ભાવનગર)
ગો. મુરલીમનોહર શ્રીવ્રજાધીશજી (દહિસર)
નિ.લી.ગો.શ્રીમાધવરાયજી શ્રીગોકુલનાથજી (મુંબઈ-નાસિક)
ગો. રમેશકુમાર શ્રીગોપીનાથજી (મુલુંડ-નાસિક)
ગો. કલ્યાણરાય (કન્હૈયાબાવા) (વીરમગામ-અમદાવાદ)

- ગો. યોગેશકુમાર રઘુનાથલાલજી (કામવન-ગોકુલ-પાલી)
ગો. વ્રજપ્રિય મુરલીધરજી (બોરીવલી)
ગો. નીરજકુમાર શ્રીમાધવરાયજી (મુંબઈ-નાસિક)
ગો. શરદ્કુમાર (શીલૂબાવા) શ્રીમુરલીધરજી (પોરબંદર)
ગો. ચન્દ્રગોપાલ (ચંદુબાવા) શ્રીમુરલીધરજી (પોરબંદર)
નિ.લી.ગો.શ્રીનૃત્યગોપાલજી શ્રીકૃષ્ણજીવનજી (મુંબઈ)
પત્રદ્વારા સમ્મતિ :
નિ.લી.ગો.શ્રીબાલકૃષ્ણલાલજી શ્રીગોવિંદરાયજી (સુરત)
નિ.લી.ગો.શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ (જામનગર)
પચ્ચમપીઠાધીશ્વર નિ.લી.ગો.શ્રીગિરિધરલાલજી (કામવન-વલ્લભવિદ્યાનગર)
નિ.લી.ગો.શ્રીગોવિંદલાલજી (કોટા)

(“મહાપ્રભુ શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્ય વંશજ ગોસ્વામીઓનું સંયુક્ત ધોષણાપત્ર”
૧૯૮૬. પુષ્ટિસિદ્ધાન્તચર્યાસભા સંક્ષિપ્ત વિવરણ, પૃષ્ઠ ૪૯-૭૮)